श्रीः

स्वर्गीयकुसुम

वा

कुसुमकुमारी.

सत्य-घटना-समन्वित

एक अपूर्व सचित्र उपन्यास.

उपन्यास-रसिकों के मनोविनोदार्थ

श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-कर्तृक लिखित.

तथा—

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा प्रकाशित.

" यत्नेन सेवितव्यः

पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि ।

शोभा हि पणस्त्रीणां

सदृश-जन-समाश्रयः कामः ॥"

(मृच्छकटिकम्.)

श्रीसुदर्शनप्रेस में मुद्रित

श्री

समर्पण.

काशीनिवासी परिडतवर श्रीलश्रीयुक्त श्रीजगन्नाथ-प्रसादत्रिपाठी, (आरा-प्रवासी).

मित्रवर,

कदाचित् आप उस कार्त्तिकी पूर्णिमा को, जिस दिन कि आपने इस कहानी के बीज को हमारे हृदयक्षेत्र में बोया था, अभी तक भूले न होंगे ! तो फिर जब कि इस उपन्यास के लिखे जाने के मूल कारण आप ही हैं, तब इस पर किसी दूसरे व्यक्ति-विशेष का अधिकार कब होसकता है ? ऐसी अवस्था में केवल यह कहकर कि,—"अपनी प्रिय वस्तु आप ही अङ्गीकार कीजिये,"—इस पुस्तक को आपके अर्पण करके आज हम सुदीर्घ-काल के प्रतिज्ञा-पाश से अपने को मुक्त करते हैं ।

अभिन्न-हृदय,

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी ।

श्री

प्रथम संस्करण की भूमिका

"कुसुमकुमारी" के विषय में दोदो बातें।

समय जो चाहे, सो करे ! कहां तो यह उपन्यास सन् १८८६ ई० में लिखा गया था, और कहां आज बारह-तेरह वर्ष के पीछे पुस्तकाकार में छपने की इसकी पारी आई ! अब सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है कि,—'मेरे मन कछु और है, करता के कछु और ! ! !'

सन् १८८७ ई० की बात है,—'हरिहरक्षेत्र' में कार्त्तिक की पूर्णिमा के दिन सङ्गम पर स्नान करते समय हमारे एकान्त-मित्र पण्डितवर जगन्नाथ प्रसाद त्रिपाठीजी ने अपने एक बन्धु से यों पूछा कि,—"क्यों भाई ! उस घटना को तो आधी शताब्दी बीत गई होगी ?' इस पर उन बन्धु-महाशय ने यों कहा कि,—'हां, उस (आधी शताब्दी) में अब केवल दो ही तीन वर्ष और बाक़ी है।'

इन दोनों बन्धुओं की रहस्यमयी बातें हमने भी सुनीं, किन्तु इस विचित्र पहेली को न समझकर पण्डितजी से पूछा कि,—'क्यों भाई ! यह कैसी घटना है ?' इस पर उन्होंने हंसकर यों कहा कि,—'वाह, आपने खूब टोका ! एक बड़ी ही मज़ेदार और सच्ची कहानी है; परन्तु यदि उसे आप उपन्यासाकार में लिखने की प्रतिज्ञा करें, तो वह आपको बतलाई जाय !'

पण्डितजी की ऐसी अनोखी बात सुनकर हमारी बेचैनी उस कहानी के सुनने के लिये ऐसी बढ़ी कि हमने चटपट यों प्रतिज्ञा की कि,—'बहुत अच्छा, हम आपसे सुनी हुई कहानी पर एक उपन्यास अवश्य लिखेंगे !' यह सुनकर पण्डितजी ने कहा कि,—'बहुत अच्छी बात है, डेरे पर चलकर हम वह अजीब कहानी आपको ज़रूर सुनावेंगे !'

निदान, फिर हमलोगोंने स्नान कर और श्रीहरिहरनाथजी का दर्शन तथा पूजन कर और डेरे पर आकर ब्राह्मण-भोजन कराने के बाद खुद भोजन किया। फिर और कई आवश्यक कामों से छुट्टी पाने पर हमने पण्डितजी से यों कहा कि,—'बस, अब कृपाकर आप चटपट उस कहानी को कह डालिए ?' यह सुनकर उन्होंने अपने उन्हीं बन्धु-महाशय से यों पूछा कि,—'क्यों भाई ! उस घटना पर यदि कोई उपन्यास लिखा जाय तो आपको कुछ उज्र तो न होगा ?' इस पर उन बन्धु महाशय ने हंसकर कहा 'इसमें

मैं हर्ज तो कुछ भी नहीं समझता लेकिन इस कहानी में जितने लोगों के नाम आए हैं, वे यदि बदल दिए जायगे तो अच्छा होगा।' इस पर पण्डितजी ने उनसे यों कहा कि,—'मगर मुख्य पात्रों का नाम तो ज्यों का त्यों ही रहना चाहिए?' यह सुन उन बन्धु-महाशय ने कहा कि,—' खैर, अच्छी बात है; इसमें नुकसान ही क्या है! लेकिन यदि केवल इस कहानी की मुख्य पात्री "कुसुम" तथा मुख्य पात्र "बसन्त"—इन दोनों के नाम तो ज्यों के त्यों रहें, पर और और पात्रों के नाम अगर बदल दिए जांय तो और भी अच्छा हो।' इस पर पण्डितजी ने कहा कि,—'भला, यह कैसे होसकता है? जरा सोचिए तो सही कि चुन्नी और भैरोंसिंह के नाम कैसे बदले जा सकते हैं? और "गुलाब" का ही नाम कैसे छिपाया जा सकता है? इसके अलावे प्रातःस्मरणीय महानुभाव श्रीमान् बाबू कुंवरसिंह का ही नाम कैसे बदला जा सकता है? हां, इतना हम अवश्य ही उचित समझते हैं कि कुसुम और गुलाब के पिता तथा भ्राता का नाम कल्पित रख दिया जाय और उनकी राजधानी का नाम न प्रकट किया जाय,' इस पर उन बन्धु-महाशय ने प्रसन्नता के साथ यों कहा कि,—'खैर, जैसा आप और गोस्वामीजी मुनासिब समझें, वैसा करें; इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

यह सुनकर पण्डितजी ने यह अनोखी कहानी बड़ी ही रसीली भाषा में कह सुनाई, जिसे सुनकर हमारी तबीयत फड़क उठी! फिर हमने उस कहानी की सच्ची घटना पर यह उपन्यास लिखकर सन् १८८६ ई० में, अर्थात उसी सन में—एक महीने के अन्दर ही पूरा कर डाला और इसे सुनकर पण्डितजी और उनके बन्धु-महाशय बाग़ बाग़ हो गए। इस उपन्यास की कहानी बिलकुल सच्ची है, और कुसुम, बसन्त, गुलाब, और भैरोंसिंह को छोड़कर बाकी लोगों के नाम कल्पित हैं।

यह उपन्यास पूरा होते ही उसी सन में 'सारसुधा-निधि' में छपने लगा था, पर एक ही दो संख्या में छपकर रह गया था। फिर उसके बाद सन् १८८६ ई० में यह उपन्यास "विज्ञवृन्दावन" नामक मासिकपत्र में छपने लगा था, परन्तु कई कारणों से उसमें भी यह उपन्यास पूरा पूरा नहीं छप सका था; अस्तु!

बड़े ही आनन्द की बात है कि ईश्वरानुग्रह से आज यह उपन्यास छपकर उपन्यास के प्रेमी प्रिय-पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जाता है।

विनयावनत

ग्रन्थकार

श्री

द्वितीय संस्करण की भूमिका।

हिन्दी भाषा की सुप्रसिद्ध "उपन्यास" नाम की मासिक-पुस्तिका में छपकर सन् १९०१ ई० में यह उपन्यास पुस्तकाकार-रूप में प्रकाशित हुआ था। यह पन्द्रहवर्ष की बात है। यह उपन्यास हिन्दी के रसिक और उपन्यास-प्रेमियों को ऐसा रुचिकर हुआ था कि इसकी सब कापियां थोड़े ही दिनों में बिक-चुक गई थीं। इसके बाद उपन्यास-प्रेमियों की धड़ाधड़ मांग पर मांग आने लगीं, पर इसका द्वितीय संस्करण हम न निकाल सके; क्योंकि अपने वृन्दावनस्थ मन्दिर के ग्राम के दीवानी मामले में हम ऐसे उलझे हुए थे कि लाचार होकर हमें काशी से वृन्दावन आकर रहना पड़ा और उसी झमेले में "उपन्यास" मासिकपुस्तक का भी प्रकाशन रुक रहा। पर श्रीठाकुरजी की कृपा से अपने ग्राम का मामला हम जीत गए हैं, इसलिये अदालती झंझट से खाली होकर अब हम फिर "उपन्यास" नामक वही सुप्रसिद्ध "मासिक-पुस्तक" भी निकालने लगे हैं और इस "कुसुमकुमारी" का दूसरा संस्करण भी छाप डाला है; इससे आशा है कि उपन्यास के प्रेमी पाठक बहुत ही प्रसन्न होंगे और इस द्वितीय संस्करण के "कुसुमकुमारी-उपन्यास" को बड़ी ही रुचि के साथ पढ़कर आनन्द लाभ करेंगे।

पहिले संस्करण में "कुसुमकुमारी" उपन्यास का आकार तेईस फार्म का था और इसमें कुल "इकतालीस" परिच्छेद थे; परन्तु अब इस द्वितीय संस्करण में इस उपन्यास का आकार "साढ़े अट्ठाईस फार्म" का होगया है और इसमें अबकी बार "सत्तावन परिच्छेद" हुए हैं;—अर्थात् प्रथम संस्करण की अपेक्षा इस द्वितीय संस्करण में अब "साढ़े पांच फार्म" तो आकार की वृद्धि हुई है और "सोलह परिच्छेद" बढ़ाए गए हैं।

सुप्रसिद्ध बंगला-उपन्यास-लेखक बङ्किमबाबू ने कहा है कि,—'आकार के साथ ही साथ मूल्य की भी वृद्धि होती है।' इसीसे पहिले संस्करण में इस 'कुसुमकुमारी उपन्यास" का दाम बारह आने था, परन्तु इसके 'आकार' के बढ़ने के साथ ही साथ इसका मूल्य भी बढ़ाया गया है और अब इस दूसरे संस्करण में इस "कुसुमकुमारी उपन्यास" का दाम एक रुपया रक्खा गया है।

जो उपन्यास के प्रेमी सज्जन इस "कुसुमकुमारी उपन्यास" को पढ़ेंगे वे बहुत ही प्रसन्न होंगे परन्तु जिन रसिकों ने पहिले

संस्करण की "कुसुमकुमारी" पढी है वे यदि इस दूसरे संस्करण की "कुसुमकुमारी" पढेंगे तो उनके आनन्द की सीमा न रहेगी और वे यह देखकर बहुत ही चकित होंगे कि, 'अब इस द्वितीय संस्करण का "कुसुमकुमारी" उपन्यास एकदम बिल्कुल नया होगया है!!!" इसके पहिले संस्करण में जो जो त्रुटियां रह गई थीं, वे सब इस दूसरे संस्करण में दूर कर दी गई हैं और यह उपन्यास इस दूसरे संस्करण में इतना सुधारकर और बढ़ाकर छापा गया है कि अब यह उपन्यास "सर्वाङ्गसुन्दर" होगया है। इसलिये हमारा अनुरोध है कि जिन रसिकों ने पहिली बार छपे हुए "कुसुमकुमारी" उपन्यास को पढ़ा हो, वे फिरसे इस दूसरी बार के छपे हुए "कुसुमकुमारी" उपन्यास को ज़रूर ही पढ़ें; तब उन्हें यह बात जान पड़ेगी कि, 'पहिले संस्करण मे क्या क्या कमी इस उपन्यास में रह गई थी, और अब यह कैसी खूबसूरती के साथ सब कमी को दूर करके छापा गया है!!!'

सबसे बढ़कर तो अबकी बार यह बात हुईहै कि इस उपन्यास में "कुसुमकुमारी" का एक मनोहर चित्र भी देदिया गया है। एक रुपया तो क्या—इस चित्र पर लाख रुपया न्योछावर कर दिया जासकता है!!!

अन्त मे एक बात और लिखकर हम इस द्वितीय संस्करण की भूमिका को समाप्त करते हैं,—वह यह है, कि अबतक तो हिन्दी-वाले ही बङ्गला की चोरी किया करते थे, पर अब बङ्गलावाले भी हिन्दी की चोरी करने लगे हैं! बात यह है कि बङ्गला में एक बहुत ही छोटासा—केवल डेढ़ या दो फारम का कुसुमकमारी उपन्यास देखने मे आया है, जिसपर टाइटिलपेज नदारत है! यह बङ्गला का कुसुमकुमारी उपन्यास उस कुसुमकुमारी उपन्यास की छाया पर लिखा गया है, जो "विहृवृन्दावन" नामक मासिकपत्र में छपा था! अस्तु, जो कुछ हो, इससे हमारी कोई हानि नहीं है। सम्भव है कि हमने जिस सच्ची घटना का अवलम्बन करके यह "कुसुमकुमारी" उपन्यास लिखा है, बङ्गला-लेखक ने भी उसी घटना का अवलम्बन करके वह उपन्यास लिखा हो! लेकिन लिखावट के ढङ्ग का मिल जाना एक अनोखी बात है!

अस्तु, रसीले उपन्यास-प्रेमियों से इस द्वितीय संस्करण के कुसुमकुमारी-उपन्यास के एक बार पढ़ने का अनुरोध कर हम अपनी भूमिका सम्पूर्ण करते हैं!

उपन्यास-प्रेमियों का प्रेमी,
गोस्वामी

कुसुमकुमारी ।

गुलाबदेई ।

श्री

स्वर्गीयकुसुम

वा

कुसुमकुमारी

सत्य-घटना-समन्वित,

अद्वितीय उपन्यास.

पहिला परिच्छेद.

नाव डूबी.

"अघटितघटितं घटयति, सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति, यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥ "

(सूक्तिः

संवत् १८९७ वैक्रमीय (सन् १८४० ई०) से हमारे
उपन्यास की कथा प्रारंभ होती है ।

सारन ज़िले में, 'गंडकी' नदी के दाहिने किनारे प
'गंगा और गंडकी' के संगम के निकट, 'सोनपु
क एक छोटी सी बस्ती है । वहांपर 'मही' नाम की एक छो
नदी के निकट 'श्रीहरिहरनाथजी' का एक प्राचीन मंदिर
पर हरसाल कार्त्तिकी-पूर्णिमा पर 'हरिहरक्षेत्र' नाम का
सेद्ध मेला होता है जो कि सारे 'के मेलों में उत्तम अ

प्रसिद्ध है; परन्तु जिन्होंने इसको अपनी आंखों से नहीं देखा है, वे इसकी बहार कैसे जान सकते हैं !

आज कार्त्तिकी-पूर्णिमा है और पर्व या स्नान का प्रधान दिन है; इसलिए एक घड़ी रात के तड़के ही से गंडकी के किनारे,—विशेष कर सगमपर, स्नान करनेवालों की भीड़ का कोई वारापार नहीं है। नहाने-वाले भी ऐसे महापुरुष हैं कि वे डूबने से ज़रा नहीं डरते और एक दूसरे पर गिरे ही पड़ते हैं। पानी का तर्ख़ा ऐसा है कि नदी में पैर नहीं ठहरते, तिसपर भी नहानेवाले नहीं डरते और एक पर दूसरे भहराए ही पड़ते हैं। आजकल की भांति उस समय पुलिस का इंतज़ाम पूरी रीति से न था,—हां, कहीं-कहीं किनारे या नावों पर पुलिस के बर्कन्दाज़ दिखलाई पड़ते थे, पर आजकल के संप्रबंध की उत्तमता उस समय न थी। इतनी रेलापेली पर भी एकाएक कोई डूबता या बहता न था, इसका कारण यही था कि तीर से ज़रा हटकर बराबर, लगातार, नावें बंधी हुई थीं। इतने पर भी यदि कोई बहता या डूबने लगता तो नाव पर के मल्लाह झट उसे बचालेते और उस आदमी से इनाम के तौर पर कुछ पैसे वसूल करलेते थे।

सूरज का चक्का दो हाथ ऊंचा उठ आया था और नहाने-वालों की भीड़ खूब ठसाठस्स होरही थी। ऐसे समय में एक डोंगी, जो कि पटने से चली आरही थी और अब संगम में पहुंचकर तीर से लगभग तीस-पैंतीस हाथ ही दूर रही होगी, कि पास ही से जाती हुई एक बड़ी किश्ती से एकाएक टकराकर चट उलट गई। उस डोंगी पर तीन औरतें और मल्लाहों को छोड़कर चार मर्द भी थे। जब तक लोगों की निगाह उस डोंगी या उसपर के आदमियों पर पड़े, तबतक तो वह उलट ही गई ! यहांतक कि जो लोग उस पर सवार थे, उन बेचारों को चिल्लाने तक का मौक़ा भी न मिला। डोंगी के उलटते हीं उस किश्तीपर से, जिसकी टक्कर से वह उलटी थी, तुरंत एक नौजवान धड़ाम से नदी में कूदपड़ा और गोता लगाकर ज़ोर ज़ोर से हाथ-पैर फेंकता हुआ उस ओर तीर की तरह बढ़ा, जिधर या जहांपर वह डोंगी उलटी थी। डोंगी का उलटना और उस नौजवान का कूदना,—ये दोनों घटनाएं पलक गिरने के समान इतनी जल्दी हुईं कि जब वह नौजवान पानी में कूद गया तब लोगों का ध्यान डोंगी के टकराने या उलटने की ओर गया।

फिर तो खूब ही हल्ला मचा; पर जितना लोगों ने हल्ला मचाया, उसका चौथाई भी अपना कुछ कर्तव्य न दिखलाया और न कोई उन डूबते हुओं के बचाने के लिए ही आगे बढ़ा। बात की बात में यह खबर पुलिस के कानों तक पहुंची और चट उसने अपनी नाव उस उलटी हुई डोंगी की ओर तेज़ी के साथ बढ़ाई। तब तो और भी कई डोंगियां मल्लाहों ने भी खोलीं।

वह डोंगी, जो कि उलट गई थी और जल के ऊपर, बहाव की ओर, बही जारही थी, खींच-खांच-कर किनारे लाई गई; किन्तु उस पर जितने अभागे सवार थे, उन सभों का कुछ भी पता न लगा। यद्यपि पुलिस ने अपने भरसक पूरी कोशिश की और कई गोते-खोर मल्लाह भी कूदे, पर भयानक तरंगवाली गंडकी के संगम-वाले जल में डूबे-हुओं का पता लगाना असंभव होगया। यहांपर इतना और भी समझलेना चाहिए कि उस डोंगी पर के सब मल्लाह तैर कर निकल आए थे, जो कि उलट गई थी; किन्तु हां, उस व्यक्ति का भी कुछ पता न था, जो कि किश्तीपर से डोंगीवालों के प्राण बचाने के लिए कूदा था!

जिस बड़ी किश्ती से टकराकर वह डोंगी डूबी थी, उस किश्ती पर एक उदासीन बाबाजी बैठे हुए नीचे लिखा हुआ 'ध्रुपद' गारहे थे,—

> "देखि जग-चरित अचेत चित होत यार,
> घर औ दुआर तजि अनतहिं जाइए।
> आज-काल करत निकट नियरात काल,
> जनम-मरन सोच समुझि भुलाइए॥
> कहीं खुसी होय कहीं होय हाय-हाय अहो,
> सब तजि हरि भजि गरब गँवाइए।
> छोड़िए सकल भ्रमजाल या कराल काल,
> राधिका-गुपाल के चरन मन लाइए॥"

दूसरा परिच्छेद.

दो लाशें.

" न हि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति, यस्य हि भवितव्यता नास्ति॥ "
(सुभाषितम्)

उसी दिन तीसरे पहर के समय सोनपुर के थाने पर आकर एक चौकीदार ने यह ख़बर दी कि, ' यहांसे कोस-सवाकोस दूर, बहाव की ओर, नदी के कछाड़ में दो आदमी मुर्दे की हालत में पड़े हुए पाए गए हैं; उन में एक तो बीस-बाईस बरस का नौजवान है और दूसरी पंद्रह-सोलह बरस की हसीन औरत! दोनों के बदन पर कोई कपड़ा नहीं है।'

यह ख़बर सुनते ही थानेदार घोड़ेपर सवार होकर कई कानिस्टेबिलों के साथ उस सरज़मीन पर पहुंचा, जहां दो लाशें पड़ी हुई थीं और उनकी निगरानी कई चौकीदार कररहे थे।

लाश को देखकर थानेदार ने उन चौकीदारों मेसे एक से पूछा,-" यह लाश यहांपर कहांसे या क्योंकर आई ? "

चौकीदार ने कहा,-" साहब! यह तो हमलोग नहीं जानते कि यह कहांसे या क्योंकर आई, पर एक औरत ने यहां पर मुर्दे को देख गांव में जाकर हल्ला मचाया, जिसे सुन हमलोग दौड़े और मुर्दे को सूखी ज़मीन पर खींचकर एक आदमी को हुज़ूर के पास ख़बर के लिये भेजा। इसके अलावे इस लाश के बारे में हमलोग और कुछ नहीं जानते। "

और-और चौकीदारों ने भी उस चौकीदार की बात को सकारा, तब थानेदार ने उनसभों का इज़हार लिखकर रिपोर्ट के साथ जांच के लिये लाश का चालान सिविल सर्जन के तंबू (डेरे) पर कर-दिया और आप अपने सिपाहियों के साथ थाने पर लौट गया।

आगे चलकर यह देखना है कि ये दोनों लाशें अब क्या-क्या रंग लाती हैं और प्रेमी पाठकों को कैसा-कैसा आनन्द दिखाती हैं। पाठक जरा धीरज के साथ इस को धीरे धीरे पढ़ते चलें

तीसरा परिच्छेद.

सात में एक.

" द्वीपादन्यस्मादपि, मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति, विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥"

(रत्नावली.)

सबेरे के सात बजे होंगे,—ऐसे समय में साहब मजिष्ट्रेट अपने तंबू के आगे बड़े शामियाने के नीचे इजलास कर रहे हैं और करीने से पेशकार वगैरह अपनी-अपनी जगह पर बैठे हैं। साहब के आगे एक कुर्सी पर सिविल-सर्जन-साहब बैठे हैं, सामने अलग-अलग बेंच पर एक नौजवान लड़की और एक नौजवान मर्द बैठा है और जमादार कई बर्कंदाजों और चौकीदारों के साथ एक ओर अदब से खड़ा है।

मजिष्ट्रेट-साहब ने जमादार से पूछा,—" वेल ! टुमारा नाम ?"

जमादार,—" खुदावन्द ! ताबेदार का नाम करीमबख़्श है और यह फ़िदवी पांच बरस से यहां (सोनपुर) का थानेदार है। "

मजिष्ट्रेट,—" टुम बड़ा गफ़लट किया, जो डूबटे हुए मुसाफ़िर का बखूबी खबर नेइं लिया। टुम अगर फिर ऐसा गफ़लट किया, टो काम से मुअट्टल होगा।"

यों जमादार को झिड़ककर उन्होंने चौकीदारों की ओर घूम-कर कहा,—" पेहर कौन चौकीडार लाश को खैंचकर सूखे में रक्खा और ठाने पर खबर डिया ? "

उन चौकीदारों में से एक ने आगे बढ़ और झुककर सलाम कर के कहा,—" बंदे नेवाज ! इसी गुलाम ने।"

मजिष्ट्रेट,—" टुमारा नाम ?"

चौकीदार,—" गंगाराम। "

मजिष्ट्रेट,—" टुम किटने डिनों से काम करटा है ? "

चौकीदार ' ताबेदार को करते आज आठ बरस

ज़ेब से अभी पांच रुपया इनाम देता और एक रुपिया मुशाहरा तरक्की देकर चौकीदारों का हेड बनाया।"

यों कहकर साहब ने पांच रुपए उस चौकीदार को दिए और उसने लेकर बड़ा लंबा सलाम किया और कहा,-"हरिहरनाथ बाबा हुजूर को लाट बनावें।"

फिर मजिष्ट्रेट-साहब डाकृर-साहब से अंग्रेज़ी में बातें करने लगे, पर हम अपने हिन्दी-जानने-वाले पाठकों के सुभीते के लिये हिन्दी ही में उन-दोनों की बातें लिखते है।

मजिष्ट्रेट ने सिविलसर्जन से कहा,-"अब आप लाश पाने से लेकर मुर्दे के ज़िन्दह होने तक का हाल कह जाइए।"

सर्जन,-"शाम के वक्त दो लाशें मेरे तंबू में पहुंचीं, ग़नीमत हुई कि मैं उस वक्त मौजूद था; अगर ज़रा और देर हुई होती तो मैं हवा खाने निकल गया होता और अजब नहीं कि तब ये दोनों लाशें वाकई मुर्दों में ही शुमार की जातीं।

"मैंने फ़ौरन उन दोनों लाशों की जांच करनी शुरू की और पंद्रह मिनट की जांच मे उन लाशों में जान पाई गई; तब मैंने पूरे तौर से इलाज करना शुरू किया और आधी रात के वक्त इन दोनों को (उंगली से औरत और मर्द की ओर इशारा करके) होश हो आया। तब मैंने इन दोनों को दूध दिया, दवा के साथ शराब पिलाई और मुस्तैदी के साथ इलाज ज़ारी रक्खा। सुबह चार बजे के वक्त ये दोनों पूरे तौर से चंगे होगए, तब बड़े तड़के मैंने आपको खबर दी और आपकी मर्ज़ी के मुताबिक इन दोनों को आपके पास लेकर हाज़िर हुआ।"

मजिष्ट्रेट,-"मैं इस मुस्तैदी के लिये आपका बहुत बहुत शुक्रिया अदा करता हूं। बेशक, आपने अपने दर्ज़े के लायक काम किया। मैं आपकी तरक्की के लिये लाटसाहब को बहुत जल्द लिखूंगा।"

यह सुन डाकृर ने धन्यवाद (थैंक्स) देकर मजिष्ट्रेट की इज्ज़त की और फिर मजिष्ट्रेट ने उस नौजवान लड़की से कहा,-"अब तुम अपना बयान शुरू करो।"

लड़की,-(सलाम करके) "मेरा नाम कुसुमकुमारी है। मैं आरे की रहनेवाली हूं। हमलोग सात आदमी परसों शाम को पटने से डोंगी पर सवार हुए उनमें मैं, मेरी मा एक मजदूरनी दो नौकर

और दो साजिन्दह थे। हरिहरक्षेत्र मे पहुंचने के समय एक किश्ती से टक्कर खाकर मेरी डोंगी उलट गई, फिर कौन किधर गया, इसका कुछ पता नहीं। थोड़ी देर में मेरे सिर के बाल किसीने पकड़े, उस समय मैं उससे लपट गई; यहां तक कि उसी लपटा-झपटी में मेरे पैर के छड़े, कमर की करधनी, गले की सोने की सिकरी और बदन की साड़ी तक न जाने कहां की कहां गई! फिर मैं बेहोश होगई और होश में आने पर मैंने डाक्टरसाहब से सुना कि ये ही महात्मा (उस मर्द की ओर उंगली उठाकर) मेरे साथ बेहोश या मुर्दे की हालत में पाए गए, जिन्हें मैं अपनी जान बचाने-वाला समझती हूं।"

मजिष्ट्रेट,-"उन सबका नाम टुम बटला सकटी हो?"

कुसुम,-"जी हां! मेरी मां का नाम चुन्नी था—"

मजिष्ट्रेट,-(उसे रोककर) "क्या टुम इटाढ़ी की ज़िमीदारिन और मशहूर रंडी चुन्नी की लड़की है!"

कुसुम,-"जी हां, हुजूर!"

मजिष्ट्रेट,-"हमको यह सुनकर, कि 'चुन्नी डूब गई,' निहायट अफ़सोस हुआ! हम जब आरा का मजिष्ट्रेट था, तब हमारा इजलास में उसके इलाके का मुकद्दमा बराबर होटा ठा। हम उस को खूब जानटा है, वह बड़ी नेक रंडी ठी। अच्छा और कौन कौन डूबा?"

कुसुम,-"एक मज़दूरनी, जिसका नाम झारी था और दो नौकरों मे से एक का नाम उदित और दूसरे का नाम गनपत था। वह मज़दूरनी और वे दोनों नौकर कहांर थे। दोनों साजिन्दाओं में से एक का नाम भरोस और दूसरे का मिट्ठू था।"

मजिष्ट्रेट,-(जमादार की ओर घूमकर) "टुम बड़ा नाला-यक आडमी है! गज़ब खुडा का! छः छः रैयट डूबकर ला पटा होगया और टुम कुछ कोशिश नहीं किया! टुम नौकरी से अबी बर्टरफ़ किया गया। बस, चला जाव।"

यह सुनते ही बेचारे जमादार की मानों नानी मर गई! अगर वह काटा जाता तो उसके बदन मे से खून न निकलता! पर वह बेचारा क्या करता? लाचार, वह हटकर ज़रा दूर साहब के पीछे आ खड़ा हुआ

फिर साहब ने उस मर्द की ओर घूमकर कहा,– " टुम्हारा बयान बोलो । "

मर्द,–"फ़िदवी का नाम बसंतकुमार है और यह ज़िले शाहाबाद का रहनेवाला है । फ़िदवी किश्ती पर पटने से सवार होकर मेले में आता था कि डोंगी को उलटती देख एकाएक कूद पड़ा । फिर तावेदार के हाथ में इनके (कुसुम की ओर इशारा करके) बाल आए और निहायत कोशिश करने पर बहुत दूर बहकर कछाड़ तक गुलाम इन्हें लेगया; फिर वहां पहुंचकर बेहोश होगया । उसके बाद जो कुछ हुआ, उससे तो हुज़ूर आगाह हो ही गए हैं ।"

मजिष्ट्रेट,–" टुम बहाडुर आडमी है, क्योंकि अपनी जान पर खेलकर किसीका जान बचाना, सच्ची बहाडुरी है । हम टुम पर निहायट खुश हुआ । टुम कौन जाट है ? "

बसंत,–" क्षत्री ।"

मजिष्ट्रेट,—" टुम क्या काम करटा है ?"

बसंत,–" मैं अभी पढ़ना हूं । "

मजिष्ट्रेट,–" अंग्रेज़ी जानता है ? "

बसंत,—" जी हां, हुज़ूर ! "

मजिष्ट्रेट,–" अच्छा अगर टुम नौकड़ी करना चाहो टो हमसे छपरा में मुलाकाट करना । हम टुमारा नाम 'नोटबुक' में लिख लिया । अगर टुम मिलेगा टो हम टुमको नौकरी डेगा; टुम अच्छा आडमी है । "

यह सुन बसंतकुमार ने उठकर साहब को लंबा सलाम किया ।

फिर साहब ने कुसुम से कहा,—"टुमारा क्या नाम ? कुसुम ! हां ! टुमारे साथ किटने रुपए का अस्वाब नुकसान हुआ ? "

कुसुम,–" कुछ भी नहीं, हुज़ूर ! फ़क़त एक डब्बा ज़ेवरों का था, जिसमें हज़ार-आठ सौ के मामूली ज़ेवर थे; और मेरे बदन पर जो कुछ ज़ेवर थे, उनमें से गिरने से जो बचे, वे मौजूद हैं ।"

इतना समझ लेना चाहिए कि मुर्दे की हालत में कुसुम के बदन पर के ज़ेवर किसी चौकीदार या पुलिसवाले ने नहीं छूए थे ।

मजिष्ट्रेट,–"टुम डौलटचंड रंडी की लड़की है, टभी इटने माल को मामूली बटलाटी है; खैर अब हम खर्च डेटा है और अर्दली डेटा है, वह टुमको बख़्शी मारा पहुचा आवेगा

कुसुम,-(सलाम करके) "हुजूर की दुआ से खर्च की कमी नहीं है; बस, मुझे घर तक पहुंचा देने के वास्ते हुजूर का अर्दली काफ़ी है।"

मजिष्ट्रेट,-"टुमारे पास रुपया कहां है?"

कुसुम,-"जो बचे हुए ज़ेवर मेरे बदन पर मौजूद हैं, उनमें से एक के भी बेंचने से खर्च के लायक रुपए होजायंगे।"

मजिष्ट्रेट,-"नईं, टुमको ज़ेवर बेचना नहीं होगा, टुम बहुत सडमा उठाया। हम जो कहा, सो मानो।"

कुसुम,-"जो हुजूर की मर्ज़ी।"

यों कहकर वह हाथ जोड़कर साहब के आगे खड़ी होगई और बड़ी आजिज़ी के साथ कहने लगी,-"अगर इस लौंड़ी की एक अर्ज़ कबूल हो तो यह बयान करे।"

मजिष्ट्रेट,-(ताज्जुब से) "क्या बाट है?"

कुसुम,-"अगर हुजूर मंजूर करें!"

मजिष्ट्रेट,-"टुमारा डिल इस वक्ट सडमे में गर्क है, अगर किसी टरह टुमको खुशी हासिल हो टो बयान करो; अगर हमारे अख्टेयार के बाहर बाट न होगा टो करेगा।"

कुसुम,-"हुजूर को खुदा लाट बनावे; हुजूर! जमादार का कुसूर मांफ़ करें।"

मजिष्ट्रेट,-(ताज्जुब से) "एं! जिस नालायक की लापर्वाई से टुमारा सब लोग डूबकर ला पटा होगया, उस पर टुम इटना रहम क्यों करटी है!"

कुसुम,-"इसमें इस बेचारे का कोई कुसूर नहीं है। हुजूर! सितारे की गर्दिश के आगे इन्सान का कोई चारा नहीं चलता।"

मजिष्ट्रेट,-"अच्छा, फ़कट टुमारी खुशी का वास्टे हम उस नालायक का कसूर मांफ़ करटा (जमादार की ओर घूमकर) टुम फ़कट इस लड़की के कहने से मांफ़ किया गया. अगर आइंडः अपनी ड्यूटी में गफ़लट करेगा टो सख्ट सज़ा पाएगा।"

यह सुन मानो,जमादार की जान में जान आगई, पर उस नालायक ने कुसुम की ओर एहसानभरी आंखों से देखना तो दूर रहा, खोटी नज़रों से घूरकर देखा! कुशल यही थी कि उसके उस इशारे को किसी ने देखा नहीं। फिर मजिष्ट्रेट ने ताकीद करके एक अर्दली को कुसुम के घर तक पहुंचा आने के लिये हुक्म दिया और पचीस रुपए खर्च के लिये कुसुम के हाथ में दिए। फिर वह साहब को सलाम करके उनसे बिदा हुई उस समय भी उसके साथ था
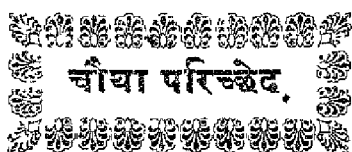
चौथा परिच्छेद.

प्रतिज्ञा.

" यन्मनोरथशतैरगोचरं, न स्पृशन्ति च गिरः कवेरपि।
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा, लीलयैव विदधाति तद्विधिः॥"

(सुभाषितम्)

उस दिन, वहीं, मेले से बाहर एक डेरा किराए पर लेकर कुसुमकुमारी रही। उसने अपनी एक अंगूठी उसी दिन पचास रुपए पर बेंच डाली थी। बसंत जिस किश्ती पर आया था, बहुत खोजने पर भी उसका पता उसे न मिला। तब वह कुसुम के डेरेपर लौट आया और उस की जो कुछ चीज़ थी, वह सब किश्ती ही पर रह गई।

दयावान सिविलसर्जन साहबने एक साड़ी कुसुम को पहिराई थी और अपने कोट, पतलून और टोपी बसंतकुमार को दी थी। अभी तक वे ही कपड़े उन बेचारों के बदन पर थे; पर अब कुसुम ने अपने और बसंत के लिये बीस-पच्चीस रुपए के ज़रूरी कपड़े ख़रीदे और एक अच्छी किश्ती किराए करके शाम के वक्त बसंत के साथ पटने की ओर वह चली।

उस समय नाव के भीतर निराला पाकर कुसुम को बसंत के साथ अकेले में बातचीत करने का मौका मिला।

उसने बड़ी प्यार-भरी आंखों से बसंतकुमार की ओर देखकर कहा,—"क्यों साहब! क्या अब मैं अपनी जान बचानेवाले का शुक्रिया अदा कर सकती हूं?"

बसंत,–(मुसकुराकर) "नहीं, इस फ़ज़ूल बात की कोई ज़ुरूरत नहीं है।"

कुसुम,–" अच्छा, न सही, जाने दीजिए और यह बात फ़ुज़ूल ही सही मगर क्या परमेश्वर के लिये आप मेरी एक अर्ज़ कबूल

करिए कि, जो मैं कहूँगी, उसे आप ज़रूर करेंगे ?"

बसंत,—" बिना यह समझे कि तुम क्या चाहती हो, मैं क्यों कर वादा करूं ? अगर तुम्हारा कहा मैं न कर सका, तो ?"

कुसुम,—"आपकी जान से बढ़कर भी कोई चीज़ है ? फिर जब उसीको आप मेरे लिये देचुके थे, तब अब एक ज़रा सी मेरी ख़्वाहिश पूरी करने के लिये इतना आगा-पीछा क्यों करते हैं ?"

बसंत,—" मैंने जान केवल तुम्हारे ही लिये नहीं दी थी,—और सच तो यों है कि तब तक मैंने तुम्हें देखा भी न था; क्योंकि डोंगी उलटते ही एकाएक मैं पागल की तरह जल मे कूद पड़ा था; परन्तु धन्य है, जगदीश्वर कि उसकी अपार दया से एक की जान मेरे हाथों से बच सकी।"

कुसुम,—" तब यह तो आप ज़रूर ही मानेंगे कि मेरी जान को आपके हाथ से बचाना नारायण को मंजूर था ?"

बसंत,—" बेशक, बेशक ! "

कुसुम,—"तो अब यह भी आपको मानना पड़ेगा कि दुबारे मेरी जान के लेनेवाले भी आप ही होंगे ! "

बसंत,—(ताज्जुब से) " इसका क्या मतलब ?"

इसपर कुसुम ने एक कटार निकालकर, जो कि मेले में ख़रीदी गई थी, भर-ज़ोर अपनी मुट्ठी में पकड़ी और तब बसंतकुमार की ओर देखकर कहा,—"क्यों साहब ! अगर मैं इस कटार को अपनी छाती में मारकर मरजाऊं, तो कैसा ?"

बसंत ने घबराकर उसका हाथ पकड़ना चाहा, पर वह ज़रा पीछे हट गई और बोली,—"बस, ख़बर्दार ! अगर ज़रा भी आपने कटार छीनने का कस्द किया तो यह मेरे कलेजे के पार ही नज़र आएगी !"

बसंत ने घबराकर कहा,—"अरे, यह किस लिये !"

कुसुम,—" इसलिये कि कहाँ तो आपने मेरी जान बचाई,— और कहां अब मैं एक भीख आपसे चाहती हूं, वह भी आपके दिए नहीं दी जाती; तो फिर मैं अब जी ही कर क्या करूंगी ?"

बसंत ने कहा,—" अच्छा, तुम क्या चाहती हो, कहो; पर इतना याद रक्खो कि मैं बहुत ग़रीब और मामूली आदमी हूं।"

कुसुम,—"अभी आपने मजिस्टर-साहब से मेरी जिमीदारी का हाल सुना है न ? बस, जान लीजिए कि मुझे दौलत की रत्तीभर भी

पर्वा नहीं है; सो, मैं आपसे एक फूटी कौड़ी भी नहीं चाहती; किन्तु हाँ ! एक चीज़ अवश्य चाहती हूँ, जिसके बिना इन्सान का जीने के बनिस्बत मरजाना कड़ोर दर्जे अच्छा है। इसलिए, सुनिए, वह चीज़ आप खुशी से देसकेंगे, क्यों कि उस चीज़ के बिना ज़िन्दगी बिल्कुल बेलज़्ज़त और फ़ज़ूल होजाती है।"

बेचारा बसंतकुमार कुसुमकुमारी की अजीब बातों से हक्का-बक्का सा हो, उसके मुंह की ओर निहारने लगा और बोला,—" अच्छा, अब दया करके कटार तो रक्खो,—और सुनो ! तुम मुझसे जो चाहोगी, वह मैं दूंगा।"

कुसुम,—" यों तो तब तक अब यह कटार हाथ से रक्खी जाती नहीं, जब तक कि आप उस चीज़ के देने की क़सम न खा लें।"

बसंत,—" अच्छा, मैं गंगा की गोद मे बैठकर प्रतिज्ञा करता हूं कि जो चीज़ तुम मुझसे चाहोगी, उसे अगर मैं देसकता होऊंगा, तो तुम्हे ज़रूर दूंगा।"

कुसुम,—" यों नहीं, इसे यों कहिए कि ज़रूर दूंगा।"

बसंत,—" और अगर न दे सका, तो ?"

कुसुम,—" तो यह लीजिए,"—यों कहकर उसने कटार को अपने कलेजे पर रक्खा।

यह देख बेचारा बसंतकुमार चिल्ला उठा और घबराकर बोला,—" हाय, कैसी आफ़त है ? अच्छा भई ! जो तुम चाहोगी, वही मैं दूंगा, इस बात की क़सम खाता हूं।"

यह सुनते ही कुसुमकुमारी ने अपने हाथ की कटार गंगा में फेंकदी और बसंत के पैरों पर गिर, और उसका पैर थामकर बोली,—" प्यारे, यह दासी आज आपके सरन में आई, इसलिये अपनी प्रतिज्ञा को याद करके अब जीते जी इसे अपने चरन से अलग न करिएगा।"

यह सुन बसंतकुमार ने उसे उठाकर गले लगाया और कहा,—"प्यारी, कुसुम ! तुम-सी त्रैलोक्यमोहिनी सुन्दरी जिस पर रीझे, उस आदमी से बढ़कर संसार में दूसरा कौन भाग्यवान होसकता है ! बस ! इतनी ही बात के लिये तुम भैरवी बनी थीं ?"

कुसुम—"हां प्यारे ! यह क्या थोड़ी बात है ! प्रेमरूपी राज्य का लेना हसीखेल नहीं है इसलिये इस राज्य पर फतह पाने के

लिये ही हथियार की ज़रूरत पड़ी थी। "

बसंत,—(मुस्कुराकर) " मगर इतना काम तो तुम्हारी मारु आंखें हीं कर डालतीं, फिर नाहक़ कटार के बोझ से अपनी नाज़ुक कलाई को क्यों इतनी तकलीफ़ दी ? "

कुसुम,—"मगर कल इन आंखों ने इतना पानी खाया था कि इनमें अभी वह काट-छांट नहीं आई है, इसीलिये कटार से काम लियागया।"

बसंत,—"पर इसकी कोई ज़रूरत न थी, क्यों कि मैं तो खुद तुम्हारे रूप पर पतंग होरहा हूं।"

कुसुम,—" पर ज़रा जलो तो सही, तब मेरा हिया ठंढा होय."

बसंत,—" हां ! इसीलिये तो क़सम खिलाकर 'चोटीकट' गुलाम बना लिया ! अब तो जलाओ गी ही; मगर ठहरो, अब मेरी पारी है,—सुनो, तुम भी इस बात की क़सम खाओ कि जन्मभर मुझे प्यार करोगी। "

यह सुनते ही कुसुम खिड़की के पास आ और गंगा में हाथ डालकर बोली,—" सुनो, प्यारे ! यद्यपि मैं रंडी के अन्न से पली और अब उसकी दौलत की मालकिन बनी हूं, पर मैं रंडी के पेट से पैदा नहीं हुई हूं; क्यों कि मैं भी एक अच्छे घराने की लड़की हूं, जिसका पूरा-पूरा हाल मैं तुमसे फिर कहूंगी; इसलिये सुनो,—यद्यपि मैंने रंडियों का सा नाचना-गाना सीखा है, पर सच जानो,—अभी तक मेरे ' पाक-दामन ' में किसी ग़ैर शख़्स का हाथ नहीं लगा है। बस, आज पहिले-पहिल इस तन को तुम्हीने अपने तन से लगाया। अब जब तक दम मे दम है, सपने में भी यह तन सिवा तुम्हारे किसी ग़ैर शख़्स के कलेजे से न लगेगा। "

उसकी बातों से बसंतकुमार के अचरज का कोई ठिकाना न रहा और उसने ताज्जुब से कहा,—" प्यारी कुसुम ! वेश्या-कुल में तुम देवी की भांति पूजी जाने योग्य हो। "

कुसुम,—" पर यह तो तुमने मुझे ही नहीं, बल्कि जिस कुल में मैं पैदा हुई हूं, उसे भी बड़ी भारी गाली दी ! प्यारे ! मैं वेश्या के घर पली तो बेशक हूं, मगर वेश्या-कुल में जन्मी नहीं हूं। "

बसंत ने लज्जित होकर कहा,—" प्यारी ! क्षमा करो; क्यों कि तुम्हारे मुखड़े को देखकर इस समय मैं अपने आपे में नहीं हूं। "
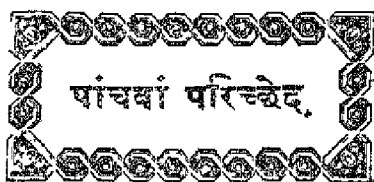
पांचवां परिच्छेद.

कामकाज.

महतोः सुवृत्तयोः सखि, हृदयग्रहयोग्ययोः समस्थितयोः ।
सज्जनयोः स्तनयोरपि, निरन्तरं सङ्गतं भवति ॥ ”

(सुभाषितम्)

कुसुमकुमारी राज़ी-खुशी तीसरे दिन अपने घर (आरा) पहुंच गई। घर जाकर पहिले उसने पचीस रुपए और एक शाल देकर मजिष्ट्रेट-साहब के अर्दली को बिदा किया और अपने आदमी के हाथ मजिष्ट्रेट-साहब और सिविलसर्जन-साहब को अलग-अलग मेवे की कई डालियां भेजीं। यद्यपि साहब का अर्दली रुपए या दुशाले को नहीं लेता था, पर कुसुम के बहुत आग्रह करने पर वह इन्कार न कर सका। यहां पर इतना और भी समझ लेना चाहिए कि अपने उसी आदमी के हाथ कुसुम ने सौ रुपए नक़द और कुछ कपड़े गंगाराम चौकीदार को भी भेजे थे, जिसने उसकी और बसंतकुमार की हिफ़ाज़त की थी और थाने में ख़बर भेजी थी।

फिर उसने अपनी मां का यथोचित क्रियाकर्म किया और जितने नौकर-मज़दूरनी या सपर्दाई लोग डूबे थे, उन सभोंके घर-वालों को पांच-पांच सौ रुपए दिए और दो हज़ार रुपये अपनी मां के काम में लगाए।

इन्हीं सब कामों में पंद्रह दिन बीत गए, तब उसने अपनी मां की कुल जायदाद पर अपना नाम चढ़वाया और बसंतकुमार की मदद से अपने दफ़तर का पूरा-पूरा इन्तज़ाम किया; इसमें भी दो महीने से ऊपर लगे।

कुसुमकुमारी के पास इस समय दस-बारह हज़ार रुपये नक़द मौजूद थे। इन्हीं रुपयों में से उसने इधर कई हज़ार ख़र्च भी कर डाले थे। उसके दो गांव आरे ही के ज़िले में थे. जिनसे आठ हज़ार रुपये की आमदनी थी और उसके एक लाख रुपये आरा

के प्रधान ताल्लुकेदार बाबू कुंवरसिंह के यहां जमा थे, जिसका सूद चार आने सैकड़े के हिसाब से बराबर हर तीसरे महीने उसे मिला करता था।

जिस समय की घटना पर यह उपन्यास लिखा गया है, उस समय आरा में बाबू कुंवरसिंह का (१) बड़ा दबदबा था। वे बड़े बीर, महादानी, परमदयालु, पूरे सत्यनिष्ठ और यथार्थ क्षत्रियों के गुणों से भूषित थे। बिहार में उनके समान महाराज डुमरांव आदि महाराजों का भी उस समय उतना दौरदौरा न था।

उनके समय मे आरा की बस्ती बहुत ही छोटी और साधारण थी, रईसों के मकान कच्चे थे और गाड़ी-घोड़ कोई नहीं रख सकता था। उस समय मे भी दो-एक रईस, जो कि बाबू कुंवरसिंह के बड़े ही कृपापात्र थे, उनके पक्के मकान भी थे और उनके यहां गाड़ी-घोड़े भी थे, पर इतने पर भी उन लोगो को यह मजाल न थी कि वे लोग बाबूसाहब के बसाए हुए खास बाज़ार (बाबूबाज़ार) मे गाड़ी पर चढ़ कर जासकें। उस समय यह दस्तूर था कि सर्वसाधारण में कोई भी टोपी पहनकर उस बाज़ार में नहीं जासकता था; चाहे कोई कैसा ही आदमी क्यों न हो, पर या तो वह नंगे सिर हो, या पगड़ी पहिरे हो, तब बाबूबाज़ार में जा सकता था।

उस समय बाबूसाहब की पूरी कृपा के कारण कुसुम की मां का मकान भी पक्का था और उसके यहां गाड़ी-घोड़ भी थे; और वह रंडी होने के कारण इतनी ढीठ भी होगई थी कि बाबूसाहब की ड्योढ़ी तक अपनी गाड़ी लेजाती थी। बाबूसाहब की कृपा ही के कारण वह पूरी निडर और ढीठ होगई थी, शहर और उसके गांववाले असामी भी, उससे थर-थर कांपते थे कि, 'जिसमें उसकी नज़र बदलने पर बाबूसाहब के कोप में किसीको जलना न पड़े।' इससे यह न समझना चाहिये कि बाबूसाहब से और कुसुम की मां से किसी तरह का गुप्त सरोकार था। नहीं, वे बड़े ही सच्चरित्र और साधुपुरुष थे। हां, कृपा उनकी उसपर

---

(१) " कुंवरसिंह " नामक उपन्यास में हमने बाबू कुंवरसिंह का पूरा पूरा हाल लिखा है

अवश्य थी और उसी कृपा के कारण वह इतनी दौलत दूसरों से पैदा कर सकी थी और गांव-इलाके-वाली भी हुई थी। इसका कारण यह था कि बड़े बड़े ज़िमीदार लोग बाबूसाहब की उस पर कृपा देखकर नाच-महफ़िल में उसे पहिले बुलाते थे और वह भी ऐसी खूबसूरत और चालबाज़ थी कि लोगों का दिल अपनी मुट्ठी में करके खूब माल भंसती थी।

निदान, कुसुम भी दिन पाकर अद्वितीय सुन्दरी, गाने-नाचने में बड़ी चतुर और लोगों को मोह लेने और माल ठगने में अपनी मां से भी बढ़ी-चढ़ी निकली, जिसके लिये लोग यों कहते थे कि,—

" मन हरिलेत जहान कों, अबहीं तें यह नार।
जोबन आएं, कौन कों, का करिहै ? करतार!" (१)

मां के कामकाज से छुट्टी पाकर वह बाबूकुंवरसिंह से मिली। बाबूसाहब ने भी उसकी मां की अकाल-मृत्यु पर खेद प्रगट किया और उसे ढाढ़स देकर बिदा किया। उनके यहां जो चुन्नी के एक लाख रुपये जमा थे, उनका काग़ज़ कुसुम के नाम कर दिया गया।

अबसे कुसुम जो कुछ काम था गांव-इलाके का कारबार करती, वह बिल्कुल बसंतकुमार की ही राय से करती थी; बरन यों समझना चाहिए कि अब सारा काम बसंत ही करता था और कुसुम आंख बंद करके काग़ज़ों पर सही भर करदेती थी।

रात के नौ बजे होंगे,—ऐसे समय में अकेली कुसुमकुमारी अपने सजे हुए कमरे में मसनद पर लेटी हुई तरह तरह के सोच-विचारों में डूबी हुई थी कि उसके ध्यान को एक करुणाभरी आवाज़ ने अपनी ओर खैंच लिया, जिसे सुनते ही उसका ध्यान उस आवाज़ की तरफ़ गया और वह उस आवाज़ पर ग़ौर करने लगी; किन्तु बसंतकुमार ने आकर उसका ध्यान भंग कर दिया और उसने बड़े प्यार से हाथ पकड़कर बसन्त को अपनी बगल में बैठा लिया।

---

(१) " इदानीमेव सा तन्वी जहार जगताम्मनः।
न जाने यौवनारम्भे कस्य किं वा करिष्यति।"
(सूक्ति)

छठा परिच्छेद.

पहिला हाल.

" यद्पि जन्म बभूव पयोनिधौ,
निवसनं जगतीपतिमस्तके ।
तदपि नाथ पुराकृतकर्मणा,
पतति राहुमुखे खलु चन्द्रमाः ॥"

(व्यासः)

माघ का महीना प्रारंभ हुआ था और सर्दी का ज़ोर पूरे तौर पर क़ायम था; ऐसे समय में रात को कुसुम अपने सजे हुए कमरे में बैठी हुई, बसंतकुमार से बातें कररही थी। बसंतकुमार मखमली मसनद पर गावतकिए के सहारे से लेटा हुआ था और उसीकी ओर मुंह किए, झुकी हुई कुसुम उससे हँस-हँस-कर बातें कर रही थी।

बसंत ने कहा,-" प्यारी ! महीनों पीछे आज घड़ीभर बैठकर बात करने की छुट्टी मिली है ! "

कुसुम,-" अच्छा, तो और बातों को छोड़कर आज मैं अपना पुराना हाल तुम्हें सुनाऊं ? "

बसंत,-" उसीके सुनने के लिये तो जान निकल रही है !"

कुसुम,—(हँसकर) " हां ! मर्दों की जान तो बात-बात में ही निकला करती है, इसमें अचरज क्या है ! ख़ैर, सुनो, आज दिन मैं सत्रहवें साल में हूं। अंदाज़न दस-ग्यारह बरस हुए होंगे, जिस समय मैं छः-सात बरस की थी और श्रीजगन्नाथजी के मन्दिर में खेला करती थी। वहां चुन्नीबाई से, जो कि उस समय वहां दर्शन के लिये गई हुई थी, मेरी जान-पहिचान हुई। प्यारे ! छः-सात बरस की लड़की की बिसात क्या ? बस, वह मुझे अच्छे-अच्छे खिलौने और मिठाई देती और इसी लालच से मैं पहरों उसके डेरे पर उसके पास खेला करती थी। हाय! उस सांपिन ने इतना प्यार दिखलाया कि जो मैं उसे एक दिन न देखती तो रो-रो-कर अपना बुरा हाल कर डालती और उसी मोह-माया में मैं दोनों जहान से गई !

" निदान ! वह राक्षसी दो महीने वहां रही और उतने दिनों मे उसने ऐसा प्यार मुझ पर झलकाया कि मैं उसे मां की तरह समझने और मां कहकर पुकारने भी लगी थी।

"मैं श्रीजगन्नाथजी के एक पंडा के घर रहती थी, उसी पंडे को उस हत्यारी ने कुछ रुपये देकर मुझे लेलिया और वहांसे अपना डेरा कूंच किया।

" वह पंडा, जिसे मैं अपना बाप समझती थी, मुझे बिदा करते समय अकेले मे लेगया और रोकर मुझसे बोला कि,-' बेटी ! छः महीने की जब तू थी, उस समय एक राजा तुझे जगन्नाथजी के द्वार पर चढ़ा गया था; तबसे आज तक तुझे मैंने पाला; पर मैं कंगाल हूं, इसलियें तुझ-सी भाग्यवान लड़की को अब मैं अपने घर नहीं रख सकता। जिसके संग आज मैं तुझे बिदा करता हूँ, वह बिहार की एक रानी है, इसलिए तू उसके घर राजकन्या बनकर रहेगी। अब एक बात और सुन,—जब तू स्यानी होइयो, तब इस यंत्र को तोड़कर अपना सच्चा हाल जान लीजो; क्यों कि इसके भीतर तेरा पूरा-पूरा हाल भोजपत्र पर लिखकर मैंने रख दिया है।' यह कहकर उस अर्थपिशाच पंडे ने एक चांदी का तावीज़, जो कि अंगूठे के बराबर मोटा, ' ढोलक की शकल का ' था, मेरे गले में पहिना दिया। फिर उसने एक चांदी की तख्ती, जो कि चार अंगुल लम्बी और चार ही अंगुल चौड़ी भी (चौखूंटी) थी और जिस पर कुछ अक्षर खुदे हुए थे, मेरे गले में डाल दी और कहा कि, ' इसमें भी तेरा कुछ हाल लिखा हुआ है; सो, जब तू समझदार होगी, तब आप ही सब बातें जान जायगी।' यों कहकर उस दुष्ट ने मुझे उस पिशाची के हाथ सौंपा ! "

बसंतकुमार, जो लेटा हुआ था, उठ बैठा और बोला,—" हे राम ! तीर्थ के पंडे भी ऐसे राक्षस और अर्थपिशाच होते हैं ! अच्छा फिर ? "

कुसुम,-" सभी फ़िर्क़े के लोगों में अच्छे और बुरे,-दोनों तरह के आदमी होते हैं। ख़ैर ! सुनो,-तुम अचरज मानोगे और है भी यह अचरज ही की बात, कि यद्यपि मैं उस समय निरी नादान बच्ची थी, पर मुझे बिदा करते समय उस पंडे ने जितने अक्षर कहे थे वे सब ज्यों के त्यों मानों मेरे कलेजे पर लिख गए थे और उस

दिन से आज तक की ऐसी कोई रात नहीं बीती होगी कि जिस रात को पलंग पर लेटने पर मैं उस पंडे की कही बातों को दो चार बेर याद न कर लेती होऊंगी।"

बसंत,—"मगर वह रंडी बड़ी ही हरामज़ादी थी कि उस कंबख़्त ने अपने को रानी ज़ाहिर करके तुम्हें उस पंडे से लेकर तुम्हारा धर्म, कर्म,—यहां तक कि जन्म तक बिगाड़ डाला!"

कुसुम,—"इसमें तो कोई शक नहीं कि वह बड़ी ही शैतान थी, मगर दुनियां के कारख़ाने देख-देख-कर यही बात दिल को धीरज देती है कि, 'अपने-अपने रोज़गार के लिये अक्सर लोग खोटे से खोटा काम भी कर गुज़रते हैं;' फिर उसे क्या दोष दिया जाय!"

बसंत,—"अच्छा, तब?"

कुसुम,—"फिर तो मैं उसके साथ यहां आई और कुछ दिनों में मैंने इस बात को बखूबी समझ लिया कि मैं किस जगह आई हूँ और मुझे अब कैसे-कैसे काम करने पड़ेंगे।

"यह बात मैं बेशक कहूँगी कि चुन्नी ने ऐसे लाड़, चाव, दुलार, प्यार और नाज़ोनख़रे से मुझे पाला और इस तरह मुझे रक्खा कि जैसे मैं राजा के घर ही रहती होऊं; और यह भी मैं मानती हूँ कि वह मुझसे दिल से मुहब्बत भी करती थी, पर यदि सच पूछो तो मैं उससे दिल से नफ़रत करती और उसे अपनी पूरी बैरिन समझती थी; पर मैंने अपना दिली हाल, उस पंडे की बात, या उन दोनों तावीज़ों का हाल उसे रत्तीभर भी नहीं बतलाया और न अपनी नफ़रत ही उस पर कभी-भूलकर भी ज़ाहिर की।

"यहां आने पर मेरी तालीम होने लगी, एक लाला मुझे हिन्दी और फ़ारसी पढ़ाने लगे और चार उस्ताद गाने, बजाने और नाचने की तालीम देने लगे।

"तुम यह बात सुनकर हँसना मत; क्यों कि, प्यारे! उम्रभर में आज ही मैंने अपने दिल का दर्वाजा फ़क़त तुम्हारे ही सामने खोला है, इसलिये जो-जो बातें सच्ची या मेरे दिल में भरी हुई हैं, उन्हें ज्यों की त्यों मैं तुम्हें सुनारही हूं।

"पढ़ने, लिखने, गाने, बजाने और नाचने में मेरा दिल खूब ही लगा —यहां तक कि कभी मैंने अपने उस्तादों की झिड़की या

मार न खाई। दो तीन बरस बाद, जब कि मैं नौ–दस बरस की हुई, उस समय मज़े में हिन्दी और फारसी पढ़–लिख लेती और बखूबी नाच-मुजरा भी करसकती थी। उस समय एक दिन बाबू कुंवरसिंह के यहा कोई जलसा हुआ था और दूर-दूर की रंडियां बुलाई गई थीं: उस जलसे में मैं भी चुन्नी के साथ गई थी। भाग्य तो मेरा चमका ही हुआ था, इसलिये मेरे नाचने और गाने को बाबू साहब ने और सभी रंडियों ने सराहा और बाबूसाहब ने ग्यारह सौ रुपये और एक मोती का सतलड़ा मुझे इनाम में दिया। उसी दिन बाबूसाहब के दर्बार में जाफ़रखां नाम के एक लखनऊ के बीनकार ने बीन बजाई थी, मुझे वह बाजा ऐसा अच्छा लगा कि डेरे पर आकर मैंने चुन्नीबाई से उस बाजे के सीखनेके लिये हठ किया। वह बेशक मुझे दिल से चाहती थी, इसलिए चट उसने दो सौ रुपये की एक बीन लखनऊ से मंगवाई और जाफ़रखां को पचास रुपये महीने मे रखकर बरस दिन तक मुझे बीन की तालीम दिल–वाई। मैं और भी बरस-छः महीने उनसे बीन सीखती: पर फिर वे न ठहरे और चले गए; मगर वे दिल के सच्चे मुसलमान थे क्यों कि उन्होंने जो कुछ मुझे बतलाया, वह साफ़ और सच्चे दिल से,—और कोई बात छिपाई नहीं। फिर तो मैंने बीन के साथ-साथ सितार, तबले, सारंगी और सुरबहार को भी सीखना शुरू किया यहां तक कि मैंने चौसर, गंजीफ़े, शतरञ्ज आदि खेलवाड़ के सीखने में भी सैकड़ों रुपये फूंके और चुन्नी ने खुशी से उन खर्चों को बर्दाश्त किया; यों हीं बारहवें बरस में मैंने पैर रक्खा।

"यह मैं पहिले ही कह आई हूं कि उस पंडे की बातों का ध्यान मुझे हरदम बना रहता था,—सो जब मैं बारहवें बरस में पैर रख चुकी थी, तब एक दिन मेरे जी मे यह धुन समाई कि उन तावीज़ों को पढ़ूं। सो, एक दिन मैंने निराले में अपने सोनेवाले ख़ास कमरे का दर्वाज़ा बंद करके उन दोनों तावीज़ों को अपने संदूक में से निकाला; क्योंकि उन दोनों को मैं जान से बढ़कर हिफ़ाज़त के साथ रखती थी।"

बसंतकुमार ने कहा,–"ज़रा मुझे तो उन यंत्रों को दिखलाओ?"

कुसुम ने मुस्कुराकर कहा "मगर उसकी दिखलाई क्या दोगे?"

इस पर बसंत ने उसके गालों को चूमकर कहा,—"यह लो !"

तब कुसुम ने हंसकर उसके गालों में दो गुलचे लगाए और कहा,—"अच्छा, सुनो,–तब मैंने ढोलक–सरीखे तावीज़ को तोड़कर और उसमें से एक भोजपत्र के परचे को निकालकर पढ़ा, पर उस चांदी की तख़्ती को आज तक मैं न पढ़ सकी कि उसमें क्या लिखा हुआ है ! तौ भी उस परचे के पढ़ने ही से मेरी बुरी हालत होगई, मारे रंज के पेट के दर्द का बहाना करके मैंने तीन दिन तक अन्न–जल न किया और उसी दिन इस बात की क़सम खाई कि,–'अब चाहे जान जाय तो भले ही जाय, पर जीते जी रंडी के नाक़िस पेशे को तो मैं कभी न करूंगी; और या तो यौंहीं मर ही जाऊंगी, या किसी ऐसे शख़्स के साथ आशनाई कर लूंगी, जिसके साथ सारी उमर कट जाय और दूसरे आदमी को यह तन न दिखलाना पड़े; लेकिन जो ऐसा न हुआ तो किसी न किसी तरह अपनी जान देकर इस पाप-रूपी–नरक-रूपी–गंदे नाले से अपने तईं बचाऊंगी।' इसी तरह मेरे दिन बीतने लगे।"

इतना सुनकर बसंत फड़क उठा और बोला,–" प्यारी ! तुम धन्य हो ! आज मैंने तुम्हारा मतलब समझा ! इसीलिये उस दिन नाव पर कटार लेकर तुमने मुझसे बरजोरी प्रेम किया था ? "

कुसुम,–" ख़ूब समझे ! प्यारे ! ज़रा सोचो तो सही कि एक तो तुमने मेरी जान बचाई, दूसरे इस तन को भी तुमने पानी में देखा; ऐसी हालत में अगर मैं तुम्हें छोड़ दूं, तो दो बातों में से एक ही होसकती है,–अर्थात् या तो मैं अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर दूसरे के हाथ अपना शरीर बेंचूं, या अपनी जान देदूं ! सो, अगर तुम मुझे क़बूल न करते तो यही होता कि अपनी सारी दौलत बर्बाद करके या किसी धर्म में लगाकर मैं अपनी जान देदेती; और याद रक्खो,–अगर कभी तुमने मुझे अपने क़दमों से अलग किया तो मेरी हत्या तुम्हारे सिर चढ़ेगी। "

बसंत ने मुस्कुराकर कहा,—" इस ज़बर्दस्ती का भी कुछ ठिकाना है ! "

कुसुम,–(उसे चुटकी) और नहीं तो क्या "
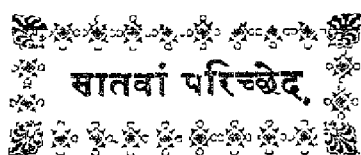
सातवां परिच्छेद.

दो यंत्र.

" अवश्य भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥"

(हितोपदेशः)

फिर कुसुमकुमारी ने उस भोजपत्र के टुकड़े को बसंतकुमार के हाथ में दिया, जिसे पढ़कर वह हक्का-बक्का-सा हो कुसुम की ओर देखने लगा !

कुसुम ने कहा,-"अब प्यारे ! तुम्हीं सोच सकते हो कि जब मैंने इस पुर्ज़े को पढ़कर अपना हाल जाना होगा, तब मेरे दिलपर कैसी बीती होगी ! हाय ! ऐसी चोट मेरे दिल पर बैठी है, कि उसकी दवा विधाता की सृष्टि में हई नहीं ! क्या ही अच्छा होता, अगर मैं पैदा होते ही मर गई होती; या जीती ही रहती तो इस हाल को न जानती । अब तुम्हीं बतलाओ कि मेरा जीना मरने से भी बदतर है या नहीं ? "

बसंत ने लंबी सांस लेकर कहा,-" प्यारी ! तुम्हारे कलेजे की जहां तक बड़ाई की जाय, थोड़ी है; सचमुच यह तुम्हारा ही काम था कि तुम इस हाल को जानकर भी अभी तक जीती हो; भई ! मैं तो इस सदमें की चोट खाकर कभी न जीता रह सकता ।"

इस उपन्यास के रसिक पाठक यदि उस भोजपत्र पर के लिखे हुए हालको जानना चाहें तो उनके लिये नीचे हम उसकी नकल ज्यों की त्यों कर देते हैं,—

" यह लड़की, जिसका नाम चंद्रप्रभा है, बिहार के राजा कर्णसिंह ने, जबकि यह छः महीने की थी, श्रीजगदीश की भेंट की; जिसे एक पंडे ने पाला । इसके गले में राजा कर्णसिंह ने एक चांदी की तख़्ती डालदी है, जिसमें उन्होंने इस कन्या को जगदीश की भेंट करनी स्वीकार की है । इस तख़्ती की पीठ पर

एक चक्र का जैसा चिन्ह है, वैसा ही चिन्ह इस लड़की की बांई ओर बगल के नीचे भी है। राजा को संतति नहीं होती थी, तब उन्होंने यह मन्नत मानी थी कि पहिले जो संतति होगी, वह जगदीश को भेंट की जायगी; इसलिए यह लड़की उन्होंने जगदीश को चढ़ाई।"

इस लेख को पढ़कर बसंतकुमार ने उस चांदी की तख़ती की पीठ को उलट कर देखा तो उसकी पीठ पर एक चक्र का चिन्ह बना हुआ दिखलाई दिया; जिसे देखकर उसने कुसुम से पूछा,—"क्या, ऐसा ही निशान तुम्हारी बगल में भी है?"

कुसुम,—"हां, हैं; इस निशान पर मेरा ध्यान तब गया था, जब कि मैंने इस भोजपत्र को पढ़ा था।"

यह कहकर उसने अपनी नीमास्तीन उतारकर वह निशान बसंत को दिखलाया और कहा,—"पर इस तख़ती की इबारत मुझसे नहीं पढ़ी गई कि इसमें क्या बात लिखी है!"

बसंत,—"अच्छा, ज़रा मैं इसे ग़ौर से देखूं तो सही कि यह पढ़ी जाती है या नहीं!"

यह कहकर वह एक घंटे तक ग़ौर से उस तख़ती को देखता रहा, फिर एकाएक फड़ककर बोल उठा,—"लो, प्यारी! मैंने इसे पढ़ डाला! पर, वाह! ये अक्षर शायद यंत्र के किसी ख़ास नियम के अनुसार रक्खे गए हैं!"

यों कहकर उसने कुसुम को उन अक्षरों का क्रम समझा दिया और कुसुम ने उस इबारत को पढ़ और बसंत का मुहं चूमकर कहा,—"क्यों न हो! मैंने तो तुम्हें रतन समझकर ही अपना दिल दिया है, कुछ पत्थर समझकर नहीं! वाह, प्यारे! ख़ूब पढ़ा! अलबत्ते, तुम्हारी जहां तक तारीफ़ कीजाय, थोड़ी है।"

हमारे प्यारे पाठक यदि उस तख़ती का नमूना देखना चाहें तो देखलें, हम उसकी नकल नीचे लिख देते हैं; पर इसकी इबारत के पढ़ने का क्रम हमसे न पूछकर पाठक लोग ख़ुद उसके समझने की कोशिश करें। हाँ! इतना हम अवश्य कहदेते हैं कि ये अक्षर किसी ख़ास नियम के अनुसार ही भरे गए हैं

वह यंत्र यह है—

ह	क	की	में
ट	ज	जा	क
न्या	सिं	ग	दी
श	को	र्ण	रा

ने कहा,—"वह पंडा भी बड़ा ही पाजी था, कि जिसने पत्र में अपना नाम तक न ज़ाहिर किया!"

न,—"लेकिन, अगर इन्साफ़ किया जाय तो उस बेचारे ने जान में मुझे एक रानी के सुपुर्द किया था!"

त,—"लेकिन, उसने कुछ रुपये तो ज़रूर ही लिए होंगे! उसे परमेश्वर कभी क्षमा न करेगा, क्योंकि कन्या का पाप है और देवता की सम्पत्ति के देडालने या बेंच- उसे अधिकार ही क्या था?"

ने कहा,—"अच्छा जो कुछ हो; अब मैं अपनी पुरानी पहिला हिस्सा आज यहीं पर पूरा करती हूं—और स्सा, जिसमें कि मेरे जीवन ने एक विचित्र पलटा खाया कहूंगी; क्यों कि रात ज़ियादह जाचुकी है, इसलिए चलो, "

;—"पर मेरी तो जान इस क़िस्से के अख़ीर तक लिये निकली जारही है!"

,—(मुस्कुराकर) "घबराओ मत; मेरे रहते, क्या मजाल री जान निकल जासके "

आठवां परिच्छेद.
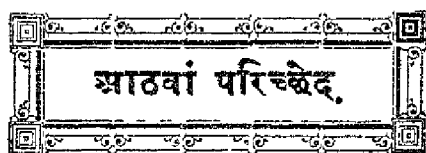
बस, अब नहीं.

" उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते ।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥ "

(नीतिरत्नावली)

दो पहर के समय भोजन करके कुसुमकुमारी अपनी मख़मली सेज पर लेटी हुई तुलसीकृत-रामायण पढ़रही थी, इतने में एक दासी ने आकर कहा,—" बीबीरानी ! सोनपुर के थाने थानेदार-साहब आपसे मिलने आए हैं ।"

कुसुम,—(कुछ सोचकर) " उनसे कह दे कि बीबी सोई ई हैं, इसलिए इस वक्त मुलाक़ात न होगी; अगर भेंट करना हो तो ााम को आवें ।"

टहलनी,—"जी ! मैंने बहुत कहा, पर वे टलते ही नहीं; बल्कि कहते हैं कि,—' उन्हें जगाकर मेरे आने की ख़बर करो, क्यों कि मेरा नाम सुनते ही मुझसे मुलाक़ात करेंगी । ' आगे आप जो क़ुम दें, वह मैं उनसे कहूं ?"

कुसुम,—(चिढ़कर) " वाहरे दिमाग़ ! मुंशी क्या अफ़लातून ा जाती है ! जा, कहदे कि उन्हें फ़ुर्सत नहीं है । "

यह सुनकर लौंडी चली गई और तुरत फिर आकर बोली,— ' हुज़ूर ! वह तो बड़ा ज़िद्दी आदमी है ! किसी तरह जाता ही नहीं और कहता है कि,—' मैं बग़ैर मुलाक़ात किए यहांसे न जाऊंगा, ाहे तमाम उम्र इसी दर पर खड़े-खड़े क्यों न गुज़र जाय;' इसलिए ब क्या कहूं ? "

कुसुम,—" अल्लाह ! मियां का दिमाग़ तो सातएं आसमान पर ढ़ा हुआ दिखाई देता है ! ख़ैर, तो मैं ज़रूर उससे दो-दो बातें रूंगी । तू दालान में उसके लिए चटाई डालदे और मेरी आराम- ुर्सी चटाई से अलग रखदे । मैं वहीं आती हूं, क्यों कि मुसल्मान को मैं अपने फ़र्श पर बैठाना नहीं चाहती "

निदान, कुसुम -कुर्सी पर आकर लिये हुए

आराम से बैठ गई। इसके बाद मियां-साहब ने आकर बड़े तपाक के साथ आदाबअर्ज़ की और चटाई पर पालथी जमाई। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, पर जब कुसुम उसकी ओर ज़रा भी रुजू न हुई, तब उस बेचारे ने आप ही अपनी ज़ुबान-शीरीं की बानगी दिखलाई। उसने कहा,—"आपका मिजाज़ तो अच्छा है?"

कुसुम,—(उसकी ओर बिना देखे ही) "बहुत ही अच्छा!"

थानेदार,—"जनाब! मुझे आपकी वालिदह-साहिबा के डूबने का सख़्त रंज है, लेकिन क्या करूं, लाचारी है! मेरे पैरवी करने में तो कोई कसर न थी, मगर आस्मानी गर्दिश से क्या चारा है?"

कुसुम,—"दुरुस्त!"

थानेदार,—"आप तो मुझे पहिचानती हैं न? मैं सोनपुर का थानेदार हूं और मेरा नाम करीमबख़्श- - - -"

कुसुम,—(उसे रोककर) "बख़ूबी! मजिष्टर-साहब ने आप ही को न काम से मुअत्तल किया था?"

थानेदार,—(शर्माकर) "जी हां, मगर आप ही की सिफ़ारिश से तो मैं फिर बहाल किया गया! पस, मैं इसका शुक्रिया अदा करने आया हूँ।"

कुसुम,—"ख़ैर, उसकी अब कोई ज़रूरत नहीं है, पस, आप अपने आने का कोई ख़ास सबब बतलाइए, क्यों कि मुझे फुर्सत नहीं है, इसलिए मैं बहुत जल्द आपसे रुख़सत होऊंगी।"

थानेदार,—"मगर क्यों बी-जान! मैं इतनी दूर से आपके दरे-दौलत तक दौड़ा हुआ आया और आप ऐसी बेमुरौवती ज़ाहिर करती हैं! क्या यही वफ़ादारी या यही शर्त्त-यारी है?"

कुसुम,—(चिटककर) "अच्छा, अब आप रुख़सत होइए।"

यह कहकर वह उठने लगी, पर थानेदार ने बड़ी ही आजिज़ी से उसे ज़रा ठहरने के लिये कहकर यों कहा,—"सुनिए, फ़क़त दो बातें मेरी और सुनकर तब आप उठिए।"

कुसुम,—"जल्द कहिए?"

थानेदार,—"आप कोई फुर्सत का निराला वक्त मुझे बतलावें, जिस वक्त मैं आकर आपकी कदमबोसी हासिल करूं?"

कुसुम,—' मुझे किसीसे मिलने या बात करने की

ज़रा भी फ़ुर्सत नहीं है।"

थानेदार,-"ख़ैर, तो दूसरी बात भी सुन लीजिए,-अगर कोई शख़्स आपकी ख़्वाहिश-बमूजिब पूरा मुशाहरा दे तो क्या आप नौकर रह- - - -"

कुसुम,-(भौंवें तानकर उठते-उठते) "बस, चुप रहो ! सोनपुर के एक नाचीज़ थानेदार का इतना बड़ा हौसला ! मियां ! तुम भले आदमी की तरह अभी यहांसे चुपचाप चले जाओ, वर न मैं बहुत बुरी तरह पेश आऊंगी और तुम्हारी सारी थानेदारी निकाल दूंगी। क्या तुमने यह भी किसी ख़ानगी का डेरा समझ लिया है ? "

थानेदार,-"हां ! यह दिमाग़ ! अच्छा, बीबी ! याद रखना ! जो मैं तुम्हारी इस शान को धूल में न मिला दूं, तो मेरा नाम नहीं !"

इतना सुनते ही कुसुमकुमारी ने ज़ोर से आवाज़ दी,-" कोई हाज़िर है ? "

इतना सुनते ही,-"जी हुज़ूर ! ! !"-कहते हुए पांच-सात प्यादे दौड़ आए और उन्हें देखकर कुसुम ने कहा,-" देखो, इस बदमाश मियां को फ़ौरन मेरी ड्योढ़ी के बाहर करदो और आज पीछे, ख़बर्दार ! यह मेरे दर्वाज़े पर न आने पावे ! "

यह सुन सभोंने कहा,-" जो हुक्म"-और फिर मियां-साहब को गर्दनियां देकर बाहर निकाल दिया।

उसके जाने पर कुसुम ने अपने दफ़्तर के मुन्शी को बुलाकर उससे एक ख़त मजिष्ट्रेट-साहब के नाम थानेदार की शरारत के बारे में लिखवाया और उसे अपने आदमी के हाथ छपरे साहब के पास भेजा। उस ख़त का नतीजा यह हुआ कि थानेदार जन्मभर के लिये नौकरी से अलग या आज़ाद कर दिया गया और फिर कभी वह कुसुम के घर की ओर न आया; मगर दूर ही से जो कुछ फ़साद उसने मचाया, उसका हाल आगे कहा जायगा।

कुसुमकुमारी मियांजी की बातों से क्रोध के मारे लहककर भूत होरही थी, इसलिये उसने अपना जी ठिकाने करने के लिये बीन उठाकर उसके तारों को मिलाना प्रारंभ किया।
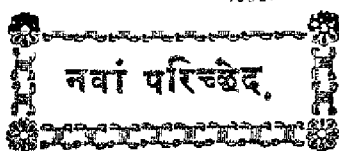
नवां परिच्छेद.

उस्ताद !

" खलः सत्क्रियमाणोऽपि ददाति कलहं सताम् ।
दुग्धधौतोऽपि किं याति वायसः कलहंसताम् ॥ "
(दृष्टान्तसमुच्चयः)

इतने ही में फिर एक टहलनी ने आकर डरते-डरते कहा,– सरकार ! उस्तादजी आए हैं । "

"आने दे"–यों कहकर वह बीन मिलाने लगी और उस्तादजी के आने पर उन्हे सलाम करके बोली,– " आओ, उस्तादजी ! आज कई दिनों पर किधर भूल निकले !"

वह उस्ताद जात का कत्थक था और उसका नाम झगरू था; उसने बचपन से कुसुम को तालीम दी थी । सो, कुसुम का सवाल सुनकर उसने रुखाई के साथ कहा,–"बेफ़ायदे आकर क्या करूं, बेटी ! जबसे चुन्नीबाई मरी हैं, तबसे तुम्हारा रंग–ढंग ही दूसरा हो रहा है ! अब न तो कोई सर्दार ही तुम्हारे डेरे पर आने पाता है और न तुम्हीं किसी अमीर–उमरा से मिलती-जुलती हौ; न डेरे ही पर मुजरा-उजरा करती हौ और न कहीं का बीड़ा ही लेती हौ; तो अब कि तुमने इस पेशे ही से अपने तईं हटा लिया, तब यहां मेरे आने की क्या ज़रूरत है ?"

कुसुम,—" ठीक है, मगर मैं तो तुमसे कह चुकी हूं कि जब तक मेरी ज़िंदगी है, तब तक तुम्हें बराबर हर-महीने पन्द्रह रुपए मिला करेंगे; फिर तुम नाराज़ क्यों होते हौ ?"

उस्ताद,—" मगर, बेटी ! यह क्या अच्छी बात है ? देखो,–'जो काछ-काछा, सो नाच नाचा !' तुम्हारी जमी हुई दूकान है, ऐसी तो बड़े भाग से किसीकी जमती है; पर न जाने तुम्हारी समझ को क्या होगया कि तुम रांडी से फ़क़ीरिन बनने पर उतारू हुई हौ! ऐसा बैराग तो कहीं नहीं देखा ! "

कुसुम,– (मुस्कुराकर) " उस्तादजी ! आज कल मेरा माथा खराब होगया है !"

उस्ताद "इसमें भी कोई शक है ! अच्छा, सुनो,–अब तलक

पन रहने दो; देखो—उस राजा के यहां बसंतपचमी की मजलिस है, दस दिन नाच होगा। कल दीवानजी ने तुम्हें बुलाया भी था, पर तुम न गईं और जब वे हां आने को तैयार हुए तो सिर-दर्द का बहाना करके उन्हें भी आने से रोक दिया। भला, यह भी कोई बात है ? दस दिन की मजलिस है, ढाई सौ रुपये रोज़ मिलेंगे और खर्च-वर्च, इनाम-एकराम और फर-फ़रमायश अलग ! ! ! "

कुसुम,—" उस्तादजी ! मुझे अब नाचना-गाना, या रंडी का पेशा करना मंजूर नहीं है।"

उस्ताद,—" सो तो लच्छन ही दिखाई देते हैं ! ख़ैर, जो अच्छा लगे, सो करो ! देखो, राजासाहब पांच हज़ार रुपए तक तुम्हारी सिर-ढंकाई का देना चाहते हैं, अगर वहां चलोगी और राजा को उल्लू बना लोगी तो पांच हजार क्या, पांच लाख भी लेसकोगी; और तब हमलोगों को भी चार पैसे मिल रहेंगे।"

कुसुम,—(झिड़ककर) " सुनो, उस्तादजी ! तुम मेरे बाप के बराबर हो, इसलिये मैं हाथ जोड़कर तुमसे बिनती करती हूं, कि बस ! अब आज से ये वाहियात बातें मेरे आगे मत करना। भाड़में जाय सिर और चूल्हे में जाय ढंकाई ! सुनो, अब मुझे यह सब कुछ भी नहीं करना है, क्यों कि रामजी की दया से खाने को बहुत है; बस ! मुझे अब और भी पाप की नाव पर बोझ लादना मंजूर नहीं है।"

उस्ताद,—"ख़ैर, जो भला जान पड़े, सो करो,—हमें क्या ! हाय, जबसे उस जादूगर छोकरे का साथ हुआ है तभीसे तुम्हारी समझ पर पत्थर पड गए हैं ! वह आफ़त का मारा कम्बख़्त आप तो कौड़ी का तीन हई है तुम्हें भी अपनी ही तरह जब भीख मगा लेगा, तब जी छोगा! "

कुसुम,—(भौंहें तानकर) " बस, उस्तादजी, बस ! ख़बर्दार, अगर आज पीछे कभी भी उनकी शान में मेरे आगे ज़बान खोल है तो अच्छा न होगा ! तुम मेरे उस्ताद हो, इसलिये मुझे चाहे हज़ार गालियां दे लो, या लाख जूती मार लो; पर जो उन्हें कुछ खोटी-खरी कहोगे तो मैं बहुत बुरी तरह पेश आऊंगी।"

यह सुनते ही वह सपर्दाई, जिसका नाम झगरू उस्ताद था, उठकर यह कहता हुआ चला गया कि,—' ले, आज से मैं तेरे दर्वाजे पर थूकने भी न आऊंगा।'

कुसुमने भी क्रोधसे कहा, "बहुत अच्छी बात है "
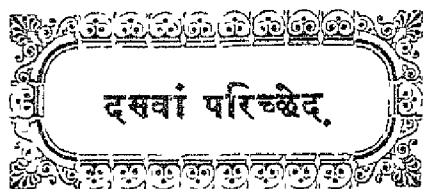
प्रेमयोगिनी.

"प्रियस्य दुःखमाकर्ण्य दुःखिनी भवति प्रिया ।
सुखिनी सुखमालोक्य प्रेम्णो हि गतिरीदृशी ॥"

(भामिनी-भूषणे)

रात के दस बजे होंगे, उस समय कुसुमकुमारी अपने कमरे में बैठी हुई अपने प्यारे की बाट जोह रही थी। जिस दिन से उसकी बसंत से प्रीति हुई थी, उस दिन से आज ही ऐसा हुआ था कि बसंतकुमार रात के दस बजे तक भी उसके पास नहीं आया था। ऐसा कभी नहीं हुआ था, इसलिये कुसुम उसके लिये बहुत सोच कर रही थी। केवल इतना ही उसके सोच का कारण न था, बरन उसकी उदासी इस लिये भी थी कि बसंतकुमार अपने डेरे पर भी न था। कुसुम ने उसे बहुत खोजवाया, पर जब कहीं भी उसका पता न लगा तो वह लंबी सांस लेकर गद्दी पर लेट आंसू बहाने लगी। थोड़ी देर के बाद उसने अपने कई आदमियों को दुबारे बसंत को खोजने के लिये चारों ओर दौड़ाया था और आप दर्वाज़े के सामने कुर्सी बिछाकर बैठी हुई उसके आने की राह तकने लगी थी।

योंहीं होते-होते आधीरात को बारह बजने के समय, उसका एक प्यादा घबराया हुआ आकर उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ा होगया।

उसकी वैसी हालत देखकर कुसुम बहुत ही घबराई और बोल उठी,-"क्या खबर है? भैरोंसिंह!"

उस प्यादे का नाम भैरोंसिंह था; सो उसने दबी ज़ुबान कहा,-"हुज़ूर! अगर आप घबराएं नहीं, तो ताबेदार सरकार (१) के बारे में कुछ अर्ज़ करे।"

---

(१) यह इशारा　　　　　　के लिये था

कुसुम इतना सुनते ही दोनों हाथों से अपने कलेजे को भर-ज़ोर दबाकर तेज़ी के साथ कुर्सी से उठ-खड़ी-हुई और बोली,-" तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे साफ़ साफ़ और बहुत जल्द कहो, क्यों कि इस वक़्त मैं सब कुछ सुनने और सहने के लिए तयार हूं।"

भैरोंसिंह,-" तो, सुनिए,-आपका हुक्म पाकर मैं सरकार को खोजता हुआ बाबा सिद्धनाथ(१)की ओर गया, क्यों कि मुझे यह बात मालूम थी कि वे रोज़ शाम के वक़्त वहां दर्शन करने जाया करते और वहांसे लौटकर यहां तशरीफ़ लाते थे।"

कुसुम,-(घबराई हुई) " भई, भैरोंसिंह ! तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे बहुत जल्द कहो, क्यों कि मेरा कलेजा इस वक़्त बैठा जा रहा है ! "

भैरोंसिंह,-" हुजूर, ज़रा सब्र करें और सुनें,-हां, तो फिर मैं उसी ओर गया और ज्यों ही मंदिर के पास पहुंचा कि उसके पासवाली एक घनी आम की बारी से कई आदमियों को निकलकर तेज़ी के साथ एक तरफ़ भागते मैंने देखा। यह ग़नीमत हुई कि उनमें से मैंने दो आदमियो को चांदनी के हलके उँजाले में पहि-चान लिया।"

कुसुम,—(कुर्सी पर बेबसी की हालत में बैठकर) " मगर, तुम अपना क़िस्सा जल्द पूरा करो ! "

भैरोंसिंह,—"लेकिन आप अपनी घबराहट को बराबर बढ़ाकर मेरी ज़बान को बोलने से खुद रोक रही हैं; इसलिये अब आप ज़रा सब्र को अख़्त्यार करें, तो मैं आगे कुछ अर्ज़ करूँ।"

कुसुम,-(कुर्सी पर हाथ पटककर) " हाय, जल्द कहो!"

भैरोंसिंह,—"वे सब कंबख़्त ऐसी घबराहट और तेज़ी से भागे जाते थे कि उनमें से किसीने पास तक पहुंच जाने पर भी मुझे न देखा। निदान, उन नालायकों के भागने पर मैं सिद्धनाथ-बाबा की प्रेरणा से उस झाड़ी में घुसकर क्या देखता हूं कि— — —"

इतना सुनते ही कुसुम घबराकर तेज़ी के साथ उठ खड़ी हुई और बोली,-" हां ! हां ! मैं मरने के लिये तैयार हूं, इसलिये तुम बेखौफ़ होकर अपनी बात पूरी करो ! जल्द, जल्द, जल्द; बहुत

(१) ये आरे के देवताओं में और प्राचीन शिवलिङ्ग हैं।

जल्द कहो.—कहो ! हां ! कहो ! ”

यों कहती हुई वह बेताब होकर कुर्सी पर बदहवासी की हालत में गिर गई और उसकी आंखों से चौधारे आंसू बहने लगे । उसने दोनों हाथों से अपने कलेजे को भर-ज़ोर दबा लिया और प्यादे की ओर घबराहट से देखने लगी ।

ज़रा ठहरकर उसने कहा—“ भैरोंसिंह ! अगर तुमको मेरे नमक का रत्ती भर भी ख़याल हो तो, मैं हुक्म देती हूं कि जो कुछ असल हाल हो, उसे जहां तक जल्द मुमकिन हो, तुम कह डालो ।”

भैरों सिंह,—“ मुझे हुज़ूर के नमक का कहां तक ख़याल है, इसका तो साक्षी नारायण है; पर मैं इसलिये उस जिगर पर चोट पहुंचानेवाले हाल के कहने में आगा-पीछा कररहा हूं कि आपकी हालत उस ख़बर के सुनने लायक़ तब तक नहीं है, जब तक कि आप अपने दिल को पत्थर से भी बढ़कर मज़बूत और पोढ़ा न बनालें !”

कुसुम,—“ तो तुम आख़िर कुछ न कहकर मेरी जान को दुविधा में डाल, हैरान करते रहोगे ? ख़ैर, मैं सब समझ गई; अच्छा, अब जो जुमला मैं कहती हूं, उसके जवाब में तुम फ़क़त ‘हां’-भर कह दो—बस इससे ज़ियादह कहने की कोई ज़रूरत नहीं है ।”

भैरों सिंह,—“ फ़रमाइए ? ”

कुसुम,—“ क्या उनके दुश्मनों ने इस दुनियां से कूच — — —”

इतना कहते-कहते उसकी बुरी हालत होगई, इसे देख भैरों सिंह ने चटपट कहा,—“जी, नहीं, उनका अनमोल जीवन अभी तक ज्यों का त्यों क़ायम है ।”

कुसुम,—“ तो फिर ? ”

भैरों सिंह,—“ ज़रा गहरी चोट उन्होंने बेशक खाई है ।”

इतना सुनते ही पागल की तरह घबराकर कुसुम उठ खड़ी हुई और भैरों सिंह का हाथ थामकर बोली,—“ जल्द मुझे वहां पहुंचाओ, जहां पर वे हों !”

भैरोंसिंह,—“ मगर यह बात मेरे अख़्तियार के बाहर है !”

कुसुम,—(बेतरह बिगड़कर) “क्यों ?”

ठीक इसी समय बाबू कुंवर सिंह के ख़ास डाक्टर ने उसके सामने पहुंचकर कहा कि,—“ बाबू साहब का ऐसा ही हुक्म है ।”
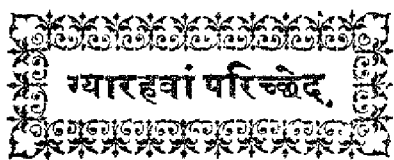
ग्यारहवां परिच्छेद.

विकलता.

हतास्मि क गच्छामि किं करोमि ब्रवीमि किम् ।
चराभि दीनाहं विलपामि स्मरामि कम् ॥
यार्थे जीवितेशस्य प्राणांश्चार्थानिमानहम् ।
त्सृजामि सोत्कण्ठ केचित्सञ्जीवयन्तु तम् ॥ "

(सावित्रीचरित्रे)

सुम ने डाक्टर को सिर से पैर तक देख और त्योरी
बदलकर कहा,—" मैं इस वक्त किसीका भी हुक्म
नहीं मान सकती; क्योंकि वह मेरा प्यारा है, इसलिये
मैं उसे अभी देखूंगी ! हाय ! क्या, दुनियां के सभी
रुस्त होगए कि मेरा प्यारा तो मौत के पंजे में गिरफ़्तार
सके पास जाने से रोकी जाती हूं ! "

—" मगर बाबूसाहब ने भी तो ऐसा हुक्म कुछ समझ-
दिया होगा ! "

—" पर इस वक्त मुझे इस हुक्म के मानने की कोई
है ।"

—" तो आप जान-बूझ-कर अपने प्यारे की जान लिया
? "

नते ही कुसुम कांपकर कुर्सी पर बैठ गई और बेबसी
से बोली,—" यह क्यों ? "

—"यही कि इस वक्त अगर आप उस ज़ख़मी आदमी के
ो तो ज़रूर ही रोना-चिल्लाना शुरू करदेंगी । अगर ऐसा
ा और उसकी बेहोशी ज़रा भी दूर हुई, तो फिर उसके
जाने में कोई शक नहीं रहेगा; लिहाज़ा आप तब-तक
ने पाएंगी, जब-तक कि उसके घाव के सब टांके मज़बूत
और वह भी इस क़ाबिल न होलेगा कि आपको बेक़रारी
कर सके । "

—(कुछ देर तक सोचकर) अगर यह बात है और आप

लोग मेरी भलाई चाहते हैं तो मुझे एक नज़र उन्हें दिखला दीजिए और ज़रा देर के लिए उनके पास लेचलिए । आप सच जानिए कि मैं आपके कहने के मुताबिक ज़रा सा ओठ भी न खोलूंगी।"

डाक्टर,—" मगर मुझे आपकी बातों पर यक़ीन नहीं होता कि आप रोगी की हालत देखकर चुप रह सकेंगी; क्यों कि अजब नहीं कि आप उसकी हालत देखते ही तड़पकर उसीके ऊपर गिर जांय!"

कुसुम,—(रोकर) " आपलोग बड़े निर्दयी हैं!"

डाक्टर,—" कभी नहीं, बल्कि आपके सच्चे हितू हैं।"

कुसुम,—" तो, मुझे ले चलिए!"

डाक्टर,—" अभी नहीं।"

कुसुम,—(बिगड़कर) " आप मुझे रोकनेवाले हैं, कौन? मैं खुद वहां जाती हूं,—देखूं, मुझे कौन रोकता है?"

डाक्टर,—" मैं रोकूंगा।"

कुसुम,—(क्रोध के मारे भभक-कर) " तुम हो, कौन? अभी मेरी ड्योढ़ी के बाहर चले जाओ!"

डाक्टर,—"बहुत खूब! मैं आपके सामने से हट जाता हूं, मगर उस रोगी के पास से तब तक न हटूंगा, जब तक कि बाबूसाहब की आज्ञा न होगी; और तब तक आपको भी उस रोगी के पास न जाने दूंगा।"

कुसुम,—" देखो, मैं जाती हूं कि नहीं?"

यह कहकर उसने भैरोंसिंह की ओर देखा, पर वह वहांसे डाक्टर के आते ही धीरे से सरक गया था। यह देख कुसुम ने चिल्लाकर उसे पुकारा, पर वह था कहां, जो जवाब देता, या सामने आता! यहां तक कि कुसुम ने अपने सब दाई-चाकरों का नाम ले-ले-कर पुकारा, पर किसीने जवाब तक न दिया, आना तो दूर रहा!

यह हालत देखकर उसने डाक्टर की ओर घूरकर और गुस्से से लाल होकर कहा,—" यह क्या बात है? मेरे सब नौकर मर गए क्या? यह किसकी शरारत है?"

डाक्टर,—" यह जो कुछ होरहा है, वह सब बाबूकुंवरसिंह के ही हुक्म से; क्यों कि वे अपनी प्रजा का पालन बेटे की तरह करते हैं। बस, आप यह बात सच जानें कि वे अपनी प्रजा की जिसमें भलाई होगी वही करेंगे आपके ऊपर उनकी बड़ी दया है, इसी

से उन्होंने जो कुछ किया है, वह सरासर आपकी भलाई ही के ख़याल से।"

कुसुम,-(तड़पकर) "मगर मैं तो मरी जाती हूं!"

डाक्टर,—"नहीं,-बल्कि अपने प्यारे के मारने का मन्सूबा कररही है!"

यह सुनते ही कुसुम मारे गुस्से के ताव-पेंच खाकर उठ खड़ी हुई। उस समय वह इतनी थरथर कांप रहीथी कि तुरत ही ज़मीन में गिरकर बेहोश होगई। डाक्टर यही तो चाहता था, सो चट उसने कोई दवा सुंघाकर उसे और भी बेहोश कर दिया और फिर कोई अर्क पिलाकर उसे पलंग पर जा लिटाया। फिर डाक्टर के इशारे से कुसुम के सब नौकर-चाकर अपने-अपने काम पर मुस्तैद होरहे और डाक्टर वहांसे बाग़ में आकर घायल और बेहोश बसंतकुमार के पलंग के पास जा बैठा। भैरोंसिंह कुसुम के पास से आकर वहांपर पहिले ही से मौजूद था, लेकिन डाक्टर के आजाने पर वह कुसुम के पास चलागया था।

पहिले परिच्छेद के अन्त में हम एक उदासीन बाबाजी की 'ध्रुपद' का हाल लिख आए हैं। अस्तु,-यहांपर पाठकों को यह समझना चाहिए कि पांचवें परिच्छेद के अन्त में जिस करुणा-भरी आवाज़ ने कुसुमकुमारी का ध्यान अपनी ओर खैंचा था, वह आवाज़ भी उन्हीं ध्रुपद-वाले बाबाजी ही की थी। आज वही करुणा-भरी आवाज़ फिर सुनाई देती है, जिसे तन्द्रावस्था में पड़ी हुई कुसुम कुछ-कुछ सुन रही है! वह आवाज़ कौन सी है? इसे तो हम नीचे लिख देते हैं, पर ये उदासीन बाबाजी कौन हैं? यह बात हम फिर कहेंगे।

"रात-दिना आपुनो परायो ही करत रहै,
रोजी-रोजगार में रहै यों चित्त लाय है।
दान दया सत्य तप आदि को कलाम नाहिं,
पापपंकपूरिन विसेष पुलकाय है॥
खूबी खूब खुसी की मनावै भरमावै नित्त,
खबरि न लावै अहो काल कबै आयहै।
दुनियां अजब अलबेली है सराय भाय,
कहीं खुसी होय, कहीं होय हाय-हाय है॥"

बारहवां परिच्छेद.

नमक-हलाली.

" मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतस्त्वप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ "
(हितोपदेशे)

भैरोंसिंह ने उस झाड़ी में घुसकर चांदनी के हलके उंजाले में क्या देखा कि बसन्तकुमार लोहू-लोहन हो मुर्दे की हालत मे पड़ा सिसकरहा है ! यह देखते ही,—होनी अच्छी थी, इसलिये,—भैरोंसिह को अच्छी धुन सूझी ! सो, चट उसने सिद्धनाथजी के मन्दिर से कई पुजारी-ब्राह्मणों को पुकारा और उन्हींसे एक खाट और शतरंजी ले उस पर कई आदमियों की सहायता से धीरे से बसन्तकुमार को सुला दिया। फिर उन आदमियों को बसन्त की चौकसी के लिये छोड़, आप तेजी के साथ दौड़ा हुआ बाबू कुंवरसिंह के डाक्टर के पास पहुंचा; पर वे डेरे पर न थे और बाबूसाहब की रात्रिवाली कचहरी में थे। तब भैरोंसिह वहीं पहुंचा और घबराहट से उसने डाक्टरसाहब से सारा हाल कह सुनाया।

उस समय बाबूकुंवरसिंह का यह हाल था कि वे अपनी सारी प्रजा का—चाहे वे गरीब हों, या अमीर—पुत्र के समान पालन करते और विपत् पड़ने पर हर-तरह से पूरी सहायता भी करते थे। उन्हें कुसुम और बसन्त के प्यार का हाल भरपूर मालूम होचुका था और वे कुसुम के मिज़ाज को भी पूरी परख रखते थे; इसलिये उन्होंने डाक्टर के साथ अपने और भी कई आदमी करदिए और इस बात की पूरी ताकीद कर दी कि, 'जब तक रोगी की दशा कुछ सुधार पर न आजाय, या कुसुम भी इस सदमे की धड़कन के रोकने में समर्थ न हो ले, तब तक वह (कुसुम) हर्गिज़ रोगी के सामने न लाई जाय [illegible] ने भी इस बात को पसन्द किया

और रोगी की चिकित्सा में पूरी स्वाधीनता की आज्ञा पाकर बाबूसाहब के दिए हुए कई आदमियों और भैरोंसिंह के साथ अपने डाक्टरी के सब समान और कई शागिर्दों को साथ लेकर उधर को ओर कूंच किया।

बाबूसाहब की यह नेम था कि अपनी प्रजा को किसी तरह की विपद में फंसी देखकर वे हर-तरह से उसकी मदद करते थे। उनके वैद्य, हकीम और डाकृर बिना कुछ लिये ही—गरीब और अमीर—सभीके घर जा-जा-कर चिकित्सा करते और बाबूसाहब भी गुप्त-रीति से इस बात की पूरी जांच किया करते थे कि,–'हमारे वैद्य, हकीम, या डाकृर ने किसीकी दवा-दारू में कुछ ढील तो नहीं की, या किसी से कुछ लिया तो नहीं!' यही कारण था कि उनके समय में आरे-वालों को ऐसा सुख प्राप्त था कि जिसका बखान नहीं किया जा सकता।

निदान, बाबूसाहब के कई आदमियों और डाकृर को साथ लिए हुए भैरोंसिंह उस जगह पहुंचा, जहां पर (सिद्धनाथजी के पास ही) कई लोग खाटपर मुर्दे की हालत में पड़े सिसकते हुए बसन्तकुमार की रखवाली कर रहे थे।

डाकृर ने रोगी की हालत देखकर उसे बेहोशी की कोई दवा पिलाई और फिर खाट उठवा कर भैरोंसिंह के साथ पैर बढ़ाया।

सिद्धनाथजी के पास ही गांगी (१) नदी के ऊपर कुसुमकुमारी का एक बहुत ही सजीला,–सुहावना और हराभरा बाग़ था, तथा अमीरों और ऐय्याशों के आराम की सभी चीज़ों से वह सजा हुआ था। डाकृर की सलाह से भैरोंसिंह उसी बाग़ में बसन्तकुमार को लेगया, तब डाकृर ने उसकी मरहम-पट्टी करनी प्रारंभ की।

भैरोंसिंह ने डाकृर से पूछा,–"आप इनकी कैसी हालत देखते हैं?"

डाकृर,—"बहुत ही ख़राब! यद्यपि इनके बदन पर लाठी और तल्वार के उन्नीस घाव लगे हैं, पर सबसे गहरा और जान लेनेवाला इनके सिर का घाव है, जो किसी मज़बूत लाठी की चोट से हुआ है,–पर हां! यदि टांके देने के बाद चौबीस घंटे तक इनका दम न निकला तो फिर मैं इनकी जान का बीमा लेसकूंगा।"

भैरोंसिंह,–"तो फिर तब तक बीबीसाहिबा को इनके पास तक आने देना ठीक नहीं है?"

---

(१) यह एक नाला है जिसमें बसात के दिनों में गंगा का जल है और नाव भी चलती है

डाक्टर,–" नहीं; मगर, वाह! बाबूसाहब भी कैसे बुद्धिसागर हैं कि उन्होंने पहिले ही से इस बात को समझकर ऐसी आज्ञा दी!"

भैरोंसिंह,–"वे देवता हैं; और सच पूछिए तो उनकी आज्ञा के बल से ही हमलोग बीबीसाहिबा को रोकने में समर्थ भी होंगे। अच्छा तो, यहां आप इनकी मरहम-पट्टी करिए और तब तक मैं वहां जा कर उन्हें बातों में उलझाऊं कि जिसमें मेरे जाने के पहिले ही उन्हें इस खबर के सुनने या यहां आने का मौका न मिले।"

इस बात को डाक्टर ने सराहा, तब फिर भैरोंसिंह ने कहा,—"मगर, जब तक आप खुद चलकर उन्हें एक बार बाबूसाहब का हुक्म सुनाकर न धमकावेंगे, तब तक न तो वह बिना आए मानेहीं गी, और न हमलोग उन्हें बरजोरी रोक ही सकेंगे।"

डाक्टर,—"हां! हम एक घंटे के अंदर आते हैं, तब तक तुम उन्हें बातों में उलझा रक्खो; पर वे उलझाने-वाली बातें कैसी होनी चाहिएं, यह तो तुम्हींको सोचनी पड़ेंगी।"

भैरोंसिंह,–"हां! वह सब मैं सोच लूंगा, पर फ़कत उन्हें रोक नहीं सकूंगा; तो भी एक घटे तक तो मैं ज़रूर ही उन्हें अपनी बातों के लच्छे में उलझा रक्खूंगा।"

यों कहकर भैरोंसिंह ने आकर पहिले तो धीरे से सब नौकर-दाइयों से बसंत का हाल कह सुनाया और फिर अपना, डाक्टर का और बाबूसाहब का मतलब भी समझा दिया; इसके बाद फिर कुसुम से उसने जिस ढंग से बातें कीं, उसे तो हमारे प्यारे पाठक पढ़ ही चुके हैं।

भैरोंसिंह बहुत दिनों से सुकुम के यहां रहता था; वह बहुत ही नेक, नमकहलाल चतुर और सच्चा आदमी था। वह कुसुम को बेटी की तरह प्यार करता था; और कुसुम भी उसकी बड़प्पन के साथ क़द्र और इज़्ज़त करती थी।

निदान, फिर कैसे अच्छे मौके पर डाक्टर ने कुसुम के पास पहुंचकर किस ढंग से बातें कीं, इसे भी हम ऊपर लिखही आए हैं।

यह बात सही थी कि यदि कुसुम यकायक बसंतकुमार की उस हालत को देखती तो अजब नहीं कि वह खुद अपनी जान दे बैठती, या ऐसा कुछ कर गुज़रती, जिससे जान जाने की बारी आजाती; बस, इसी ख़याल से डाक्टर ने इस ढंग से उससे बातें कीं कि जिससे बराबर उसे सदमें और गुस्से में ताव-पेच खाना पड़ा, जिसका नतीजा यह हुआ कि पहिले तो वह आपही बेहोश हुई थी और फिर पीछे कई घंटों के लिये औषधि पिलाकर जान बूझ-कर बेहोश करके पलग पर डाल दी गई थी।

तेरहवां परिच्छेद.

जान जाय तो जाय !

" कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी,
भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
धर्मेऽनुकूला क्षमया धरित्री,
भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा ॥"
(स्त्रीधर्ममङ्गले)

दूसरे दिन दस बजे के समय कुसुम की नींद या बेहोशी दूर हुई। उस समय उसकी सूरत देखने से यही जान पड़ता था कि या तो यह महीनों से बीमार है, या फ़स्त के ज़रिये से इसके बदन का सारा खून निकाल दिया गया है।

निदान, उसने पलंग से उठ और मुंह-हाथ धोकर अपनी तबीयत ठिकाने की और फिर अपनी एक दासी के साथ कुछ देर तक अकेले मे कोई मतलब की बातें कीं। फिर वह उसी लौंडी के साथ घर के पिछवाड़े-वाले दर्वाज़ो से निकलकर चुपचाप अपने बाग़ की ओर रवाना हुई !

जिस समय डाक्टर बेहोश बसंतकुमार की मरहम पट्टी दुरुस्त करके और उसे किसी दवा के साथ दूध पिलाकर उसकी चारपाई के पास बैठा हुआ ग़ौर से किसी किताब को देखरहा था, ठीक उसी समय दबे-पैर जाकर कुसुम उसके पीछे चुपचाप खड़ी हो, बसन्तकुमार की ओर आशा, निराशा, उदासी, बेबसी,—आदि भावों से भरी हुई आंखे गड़ाकर देखने लगी थी। वह इतना सन्नाटा मारे और दम बंद किये हुए वहां खड़ी थी कि आध घंटे के बाद किताब बंद करके जब डाक्टर ने पीछे फिरकर देखा, तब उसे कुसुम का आना जान पड़ा ! उसे देखते ही डाक्टर ताज्जुब से कुछ बोला ही चाहता था कि कुसुम ने अपनी नाक पर उंगली रख कर उसे चुप रहने का इशारा किया और जब उसने कुसुम से कुछ बात करने का इरादा किया, तब वह डाक्टर को साथ लिये हुए

दबे-पैर दूसरे कमरे में गई और वहां उन-दोनों-में यों बातें होने लगीं,—

डाक्टर,—" आपको यकायक यहां देखकर मेरे ताज्जुब का हद्द न रहा! आप क्योंकर यहां आई ?"

कुसुम,—" इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है; और सुनिये साहब! मेरी रूह तो यहां पर आपके कब्ज़े में पड़ी हुई है, फिर मैं क्योंकर यहां आने से बाज़ रह सकती थी!"

डाक्टर,—" मगर आपने बहुत जल्दी की, क्योंकि आपको ज़रा और सब्र करना था।"

कुसुम,—" जनाब! सब्र की भी कोई हद्द होती है! बस, अब आप मेरी ओर से बेफ़िक्र रहें और रोगी की सेवा-टहल के लिये मुझे भी अपना एक मातहत समझें। आप खूब सोच सकते हैं कि इस रोगी की जितनी और जैसी सेवा लाख रुपये देने पर भी दूसरे से न होसकेगी, उससे कहीं बढ़कर मुझसे होगी; लिहाज़ा आप मेरे आने से अब किसी ख़राबी का होना न समझें।"

डाक्टर,—(ताज्जुब से) " मगर साहब! कल आपने जिस घबराहट और जोश से भरी हुई बातें की थीं, आज उससे बिलकुल उलटा मैं देखता हूं,—यानी आज शान्ति और गंभीरता आपकी बातों से टपक रही हैं! यदि इसी तरह बराबर आप अपने दिल को मज़बूत करके उसे अपने कब्ज़े में रखसकें तो सचमुच रोगी की बहुत कुछ भलाई होसकती है।"

कुसुम,—" बेशक, आपने मुझसे जहां तक आशा की है, उससे कहीं बढ़कर पाइएगा; और कल का हाल आप न पूछिये, क्यों कि उस वक़्त नए सदमे की चपेट से सचमुच मैं बिल्कुल पागल और बदहवास होरही थी। ख़ैर आज जब मैं जागी, तो बहुत देर तक मन ही मन सोच-बिचार-कर अपनी किस्मत का फ़ैसला मैंने इसी ज़ख़्मी के हवाले कर दिया और तब मैं अपनी एक नमकहलाल लौंडी के साथ भेस बदल-कर पिछवाड़े के दर्वाज़े से निकलकर चुपचाप पैदल ही यहां चली आई; क्यों कि मुझे उस लौंडी से रोगी का बाग़ में रहना मालूम होचुका था। जनाब, सच तो यों है कि अब बिना दिल को मज़बूत किये काम न चलेगा: अगर मैं सब्र और दिलेरी म[illegible] करती तो शायद यहां तक आपकी मर्ज़ी-बग़ैर

कभी न आने पाती,–और जो कदाचित आ भी जाती तो अपनी बेवकूफ़ी से अपना ही काम चौपट कर बैठती! बस, इन्हीं सब बातों को खूब सोच-बिचार-कर मैंने अपने दिल पर पहाड़ रख लिया है और अब मैं आपकी मर्ज़ी-बमूजिब अपनी जान पर खेलकर हर-तरह से रोगी की सेवा-टहल करने के लिये तैयार हूं।"

डाक्टर,—"तो, अच्छी बात है; अगर बाबा सिद्धनाथ की दया हुई तो बाबू बसन्तकुमार को मैं बहुत जल्द आराम करदूंगा।"

कुसुम,—"ईश्वर करे, ऐसा ही हो।"

इसके बाद डाक्टर बसन्तकुमार के पास चला गया और कुसम दूसरे कमरे में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

उस समय भैरोंसिंह ने आकर कुसुम का पैर पकड़ लिया और कहा,—"हुज़ूर! मेरी रात की गुस्ताक़ी मांफ़ करें, क्यों कि लाचारी से मुझे वैसा करना पड़ा था।"

यह सुन कुसुम ने अपना पैर खैंच लिया और भैरोंसिंह को उठने के लिए कहकर यों कहा,—"नहीं, नहीं, भैरोंसिंह! कल की बात का ख़याल तुम बिल्कुल अपने दिल से भुलादो और इस वक़्त एक बार फिर कल की वार्दात का खुलासा हाल कहजाओ।"

यह सुन भैरोंसिंह ने उठकर उन हालातों को फिर से दुहरा-कर कहा, जिन्हें हम पिछले परिच्छेदों में लिख आए हैं।

इसके बाद कुसुम ने बाबासिद्धनाथ में पूजा-पाठ करने के लिए कई ब्राह्मणों को ठीक-ठाक करने के वास्ते भैरोंसिंह को हुक्म दिया और कई ब्राह्मणों को बाग़ में भी "महामृत्युंजय," "दुर्गापाठ" आदि जपानुष्ठान करने के लिए ठीक किया।

इतने में थाने के एक मुन्शी ने आकर रात की वार्दात के बारे मे पूछ-ताछ की, जिसपर भैरोंसिंह ने यह कहकर उसे बिदा किया कि,–"वार्दात की इत्तला तो रात ही को करादी गई है; रहा खुलासा इज़हार,–सो ज़ख़्मी के होश में आने पर होसकेगा।"

चौदहवां परिच्छेद

सेवा !

" सौख्यं तृणीकृत्य विहाय निद्रां,
सान्नं च पानीयमपास्य सम्यक् ।
नानोपचारेण वरेण रुग्णं,
पर्याकुला पर्य्यचरत्प्रियं सा ॥ "

(प्रणयपारिजाते)

हमारे प्यारे पाठक यह बात भली भांति जान गए होंगे कि कुसुमकुमारी वसन्तकुमार को कितना प्यार करती थी ! इसलिये अब यहां पर इस बात को बढ़ाकर लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है कि उसने अपने प्रानप्यारे की कैसी सेवा-टहल की । बस, यहांपर केवल इतना ही लिखना बहुत होगा कि वह बराबर रात-दिन बसन्त की चारपाई के पास कुर्सी पर बैठी हुई अपने प्यारे की ओर निहारा और रोया करती, समय-समय पर रोगी के मुंह में औषधि, जल और दूध अपने हाथ से डाल देती और डाक्टर के साथ-साथ मलहम-पट्टी भी करती थी । उसने अपना खाना, पीना, सोना और सारा आराम एक तरह से छोड़ दिया था और वह यह चाहती थी कि, 'क्योंकर, मैं अपने प्यारे पर निछावर होजाऊं !' उसके दास-दासी और डाक्टर भी उसे खाने, पीने, सोने और आराम करने के लिये बहुत समझाते, पर उनसभों को वह सिर्फ़ यही जवाब देती कि, 'अब तो जब नारायण वह दिन दिखलावेगा, तभी मैं अन्न-जल करूंगी ! नहीं तो अपने प्यारे पर न्योछावर होजाऊंगी । ' जब डाक्टर बहुत समझाता तो वह केवल ज़रा सा दूध पीलेती ! इसके अलावे उसने पानी तक त्याग दिया था । वह अपनी कुर्सी पर बैठी-बैठी ज़रा-बहुत नींद के झोंके झेल लेती, पर ज़रा भी खाट पर पीठ नहीं लगाती थी और न बिला-वजह रोगी की चारपाई छोड़कर हटती ही थी ।

यों हीं आठ दिन के कठिन-परिश्रम, पूर्ण-चिकित्सा और बड़ी सेवा-टहल से   कुछ होश में आया और उसने ज़रा सी

आंखें खोलीं ! उस समय कुसुम की खुशी का कोई वारापार न रहा ! उसने उसी समय सैकड़ों रुपये अपने प्यारे पर निछावर करके कंगलों को बांट दिये और एक सोने की ज़ंजीर डाक्टर को दी, जिसे यह कहकर उसने लेलिया कि,–'अगर बाबूसाहब की मर्ज़ी होगी तो इसे मैं लेसकूंगा।'

यह हम कह आए हैं कि कई ब्राह्मण बाबा सिद्धनाथ के मन्दिर में और बाग़ में भी कुसुम की ओर से पूजा-पाठ करते थे; सो उन लोगों को भी उस दिन बहुत कुछ दिया गया; और उसी दिन, जिस दिन कि उसके प्यारे ने ज़रा सी आंख खोली थी और डाकृर ने यों कहा था कि –'अब कोई चिन्ता की बात नहीं है,–' कुसुम ने स्नानकर और सिद्धनाथजी का पूजन तथा ब्राह्मण-भोजन कराकर कुछ अन्नजल ग्रहण किया था।

यों ही होते-होते पन्द्रह दिन में बसन्तकुमार इस योग्य होगया कि वह पड़े-पड़े बात-चीत कर सके। तब तो कुसुम उसके सो जाने पर सोती, उसके जागने की आहट पाते ही चट उठ बैठती और बीसों लौंडियों के रहते भी जीजान से उस की सारी सेवा खुद करती थी।

होशोहवास में आने पर बसन्तकुमार ने धीरे-धीरे कुसुम से एक दिन यों कहा,–"प्यारी, अगर तुम यह चाहती होवो कि,–'मैं जल्दी अच्छा होऊं.'–तो बीन बजाकर और गाकर मेरे दिल में ताक़त पहुंचाना शुरू करदो; क्यों कि रोगी के हक़ में "सङ्गीत" से बढ़कर फ़ायदेमन्द दूसरी दवा नहीं है।"

यह सुन कुसुम निहायत खुश हुई और फिर वह उस दिन से बराबर सुबह, दोपहर, तीसरे पहर, शाम, आधीरात और पिछली रात को बीन बजा और गा-कर बसन्त के दिलोदिमाग़ में ताक़त पहुंचाने लग गई थी।

'सङ्गीतविद्या' तो सर्व-दुःख-हारिणी हई है, अतएव इससे बसन्त को सचमुच बहुत ही आराम मिलने लगा था; पर वास्तव में उसका दिली मक़सद तो यह था कि,–'जिसमें गाने-बजाने में उलझी रहने के कारण कुसुम के दिलोदिमाग़ को भी कुछ आराम मिले और इतनी जाँफ़िशानी के साथ सेवा-टहल करने की हरारत बराबर दूर होती रहे।' आख़िर, हुआ भी ऐसा ही,–और गाने-बजाने से उन दोनों के दिलोदिमाग हर-वक्त हरे और ताजे बने रहने लगे

पन्द्रहवां परिच्छेद

लड़ाई की जड़ स्त्री,

" रामायणे जनकजा कलहस्य मूलम्,
श्रीभारते द्रुपदराजसुता बभूव ।
अन्याः पुराणनिचयेष्वपि चण्डिकाद्याः,
बह्व्यो बभूवुरबला रणहेतुभूताः ॥ "

(कलाधरः)

वसन्तकुमार दिन पर दिन, लेकिन जल्दी-जल्दी आराम होने लगा,—और ज्यों-ज्यों उसकी तबीयत अच्छी होने लगी, त्यों-त्यों कुसुम की खुशी—सच्ची और दिली खुशी बढ़ने लगी।

वसन्तकुमार ने होशोहवास दुरुस्त होने पर मजिष्ट्रेट के सामने जो इज़हार दिया था, उसे यहांपर हम नीचे लिख देते हैं, उसीसे पाठक-लोग इस वार्दात के सारे भेद को अच्छी तरह समझ जायंगे।

बात यह थी कि जब वसन्तकुमार अच्छी तरह होश में आया, तब एक दिन आरे के मजिष्ट्रेट पुलिस के बड़े साहब और कोतवाल को साथ लेकर बाग़ में आये; उस दिन जो इज़हार वसन्त ने दिया था, वह नीचे लिखा जाता है,—

वसन्तकुमार ने कहा,—" मेरा नाम वसन्तकुमार है, मेरे बाप का नाम अनन्तकुमार था, मैं जाति का क्षत्री हूं और रहनेवाला आरे का हूं। हरिहरक्षेत्र-वाली घटना के कारण, जो कि सब पर ज़ाहिर है, बीबी कुसुमकुमारी मुझपर बड़ी मेहरबानी रखती हैं, इस वजह से कई लोग मुझसे डाह रखते हैं।

" उस दिन, जिस दिन कि यह वार्दात हुई थी, मैं शाम को अपने डेरे से उठकर बाबा सिद्धनाथजी के दर्शन के लिये चला; क्यों कि मैं नित्य ही नियम से वहां दर्शन करने जाया करता था। वहीं, मन्दिर में झगरू मसरदाई से मेरी चार-आंखें हुईं! यद्यपि वह मुझसे बहुत खार खाता और कुढ़ता था, जिस सबब से कि मैं उससे बात नहीं करता था; तो भी उस दिन वह खुद मेरे पास आया और सलाम करके घुल घुल-कर बातें करने लगा मैं नहीं जानता

था कि इस मिठास के भीतर हलाहल भरा हुआ है! सो, मैं उस की लच्छेदार बातों में उलझकर बातें करता हुआ कुछ दूर तक निकल गया। ज्यों-ज्यों उसकी लच्छेदार बातों से,—जिनका मतलब यही था कि, 'कुसुम से उसका फिर मेल होजाय;—' मैं निकलना चाहता था, त्यों-त्यों वह जान-बूझ-कर अपनी बातों का चकाबू बनाता और मुझे उसमें फांसता हुआ आगे बढ़ता जाता था! निदान, लगभग नौ-दस बजे के समय, जब कि मैं उसके साथ चक्कर लगाता हुआ फिर बाबासिद्धनाथ के पासवाली एक घनी झाड़ी मे पहुंचा होऊंगा कि किसीने पीछे से मेरे सिर में लाठी की चोट की! उस मार से मैं तलमला-कर गिर गया; इसके बाद फिर कई लाठी और तलवार की चोटें मुझ पर बैठीं; पर उस समय मैं बेहोशी के दर्या में डूबता चला जाता था, इसलिये मैं नहीं कह सकता कि मुझे मारनेवाला कौन था! इसके अलावे मैं और कुछ नहीं जानता।"

इसके बाद भैरोंसिंह का इज़हार हुआ, जिससे यह साफ़ ज़ाहिर होगया कि,—'बसन्तकुमार को मारनेवाला वही पाजी-बेईमान सोनपुर का निकाला हुआ थानेदार करीमबख़्श था और उस का मददगार वही बदमाश झगरू साज़िन्दा था, इसके अलावे उन दोनों हरामज़ादों के साथ और भी दो-चार शोहदे थे।

बहुत सी बात कहने के बाद भैरोंसिंह ने अपने इज़हार में यह भी कहा था कि,—"मैंने उस झाड़ी में से निकलकर करीमबख़्श और झगरू को तेज़ी के साथ एक तरफ़ भागते हुए देखा था, इस लिए मुझे कुछ शक हुआ और मैंने झाड़ी के अन्दर घुसकर घायल और बेहोश बसन्तकुमार को मुर्दे की हालत में पाया।"

इस बात के ज़ाहिर होने पर उन दोनों हरामख़ोरों, अर्थात् झगरू और करीमबख़्श की बहुत कुछ खोज-ढूंढ़ की गई, पर जब उन दोनों का पता न लगा तो उन दोनों के नाम गिरफ़्तारी का वारंट निकाला गया। इसके बाद कुसुम ने अपनी तरफ़ से यह इश्तहार दिया कि,—'जो कोई करीमबख़्श और झगरू सपर्दाई का पता बतलावेगा' या उन दोनों को गिरफ़्तार करादेगा, उसे एक हज़ार रुपये इनाम दिये जायंगे।' अच्छा तो अब, जबतक वे दोनों दुष्ट न पकड़े जायं, तब तक इस मामले की बात यहीं पर छोड़कर आगे बढ़ना हम उचित समझते हैं

सोलहवां परिच्छेद.

इससे बढ़कर कौन सी खुशी है !

" अकृत्रिमप्रेमरसा विलासालसगामिनी ।
असारे दग्धसंसारे सारं सारङ्गलोचना ॥"

(भारविः)

तीन महीने के बाद बसन्तकुमार ने आरोग्य-स्नान किया। भला, उस दिन कुसुम की खुशी का क्या ठिकाना था! उसी दिन उसने भी विधि-पूर्वक स्नान करके नया जोड़ा पहिरकर अपने प्यारे को गले से लगाया। उस दिन द्वारपर नौबत बजने लगी; सब नौकर-चाकरों को कपड़े बंटने लगे, दान, पुण्य और खैरात की धूम मच गई; और ब्राह्मण-भोजन तथा कंगलों के कोलाहल का वारापार न रहा। उस दिन-दिन-भर कुसुम ने उपवास-व्रत किया, और सायंकाल के समय बड़े धूम-धाम से श्रीसत्यनारायण बाबा की कथा हुई।

निदान, बड़े उमंग के साथ तरह-तरह के आनन्द मनाए गए, डाक्टरसाहब को बहुत ही गहरी बिदाई दी गई और भैरोंसिंह को जन्मभर के लिये नौकरी से स्वाधीन कर दिया गया, तथा उसकी तनखाह दुचन्द कर दी गई।

उस दिन बड़ी उमङ्ग के साथ बसन्तकुमार ने कुसुम को प्यार से गले लगाकर कहा,—"क्यों, प्यारी! अगर मैं मर गया होता तो क्या होता?"

यह सुन कुसुम ने त्योरी बदलकर उसे दो गुलचे लगाए और कहा,—" पत्थर पड़े. इस बोली पर! हाय, प्यारे! अगर तुमने आज पीछे फिर कभी ऐसी खोटी बात मुंह से निकाली है तो मैं अपनी जान देडालूंगी।"

बसन्त,—(मुस्कुराकर) " परन्तु, मैं यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मरने पर तुम क्या करतीं?"

यह सुन और भौंवें तानकर वह वहांसे चली जाने लगी. पर बसन्त ने हंसकर उसका हाथ थाम लिया और कहा 'मेरी बात

का जवाब दिए बिना तुम यहाँसे ज़रा न हिलने पाओगी।"

कुसुम,-(बिगड़-कर) "हटो जी, वाह! अगर तुम मुझे ज़ियादह छेड़ोगे तो मैं अपना सिर पीट डालूंगी।"

बसन्त;—"मगर पहिले मेरी बातों का जवाब तो दे लो!"

आख़िर, कुसुम खिलखिलाकर हंस पड़ी और बसन्त के गले लगकर बोली,—"प्यारे! अब बस करो; क्यों कि इससे ज़ियादह मैं और क्या कहूँ क्यों कि भला काया के बिना कभी छाया ठहर सकती है! हाय, प्यारे! नारायण जानता होगा कि तुम्हारी हालत देख-देख-कर मेरे नन्हें से नाज़ुक दिल ने कैसी-कैसी कड़ी-कड़ी चोटें खा-खा-कर भी आज तक इस आशा से अपने पापी प्राणों को निकलने नहीं दिया था कि,-'नारायण करेगा तो फिर भी तुम्हें गले लगाना नसीब होगा; सो भगवान ने मेरी दिली मुराद पूरी की!"

यह सुन और शर्माकर बसन्तकुमार हंसने लगा।

कुसुम ने कहा,—"मैं तो यह समझती थी कि परमेश्वर ने तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी दी होगी, पर नहीं,-मेरा यह ख़याल ग़लत निकला और तुम निरे तोतेचश्म और बेमुरौवत निकले!"

बसन्त,-(शरमाकर) "प्यारी, बेशक तुम जो कुछ कहो, सो सब ठीक है; क्यों कि मैं तो उससे भी बढ़कर नालायक और खुद-ग़रज़ हूं, जैसा कि तुम मुझे समझती होगी; और सच्ची बात तो यह है कि प्यार तो तुम्हारा ही सच्चा है और प्यार करना तुम्हींसे कोई दुनियां में सीख ले! भला, मेरी क्या मजाल है कि मैं तुम्हारे सच्चे प्यार का मुकाबला कर सकूं, या उसका बदला चुका सकूं! मैं तो अगर अपने चाम की जूती भी बनाकर तुम्हें पहिराऊं, तौ भी तुम्हारे सच्चे प्यार का एवज़ न चुका सकूंगा; इसलिये, प्यारी, प्रानप्यारी, हे मेरी प्यारी कुसुम! तुम अब अपनी ओर देखो और मेरी नालायकी का ज़रा भी ख़याल अपने दिल में न करो।"

जबतक बसन्त ऊपर लिखी बातें कहता रहा, तब तक कुसुम मुस्कुराहट के साथ उसकी ओर देखती रही, पर जब वह चुप हुआ, तब उसका हाथ पकड़कर कुसुम उसे दूसरे कमरे में लेगई और यों बोली,-"बस, बस, बहुत हुआ; अब ज़ियादह सिर न चाटो और अपनी लियाक़त को तय कर रक्खो!!!"
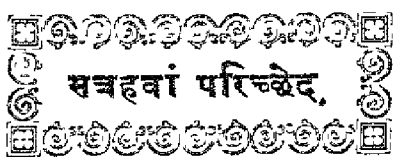
सत्रहवां परिच्छेद.

चित्त की एकता.

"एतत्कामफलं लोके यद् द्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव सङ्गमः ॥"
(भर्तृहरिः)

चैत्र मास की पूर्णिमा की चटकीली चांदनी में कुसुमकुमारी अपने मकान की छत पर गावतकिये के सहारे से उदास वैठी हुई किसी सोच-विचार मे गोते खा रही थी और उसकी हमदर्द लौंडी बिलसिया सामने वैठी हुई उसका पैर दाब रही थी।

थोड़ी देर में कुसुम ने चिहुंककर बिलसिया से कहा,—"तो क्या तू कुछ समझ सकती है कि उनकी नाराज़ी का क्या सबब है?"

बिलसिया,—"सरकार! भला, मियां-बीबी की लड़ाई का भेद मैं क्या जानूं!"

कुसुम,—"चल, चोचले रहने दे और ठीक-ठीक हाल बतला कि वे किस लिए मुझसे खफ़ा होगए हैं?"

बिलसिया,—"भला, मैं क्या नजूमी हूं कि उनके दिल का हाल बतलादूं! लेकिन खैर, आप उन्हें ख़त क्यों नहीं भेजतीं?"

कुसुम,—"अच्छा, जा, तू क़लमदान और शमादान ले आ।"

बिलसिया,—"और कल जो आपने दोहे लिखे हैं?"

कुसुम,—"उन्हें अभी रहने दे।"

निदान, क़लमदान के आने पर कुसुमकुमारी ने एक ख़त लिख कर बिलसिया को दिया, जिसे लेकर वह तुरंत बसन्तकुमार के घर चली गई।

हमारे पाठकों को यह सुनकर बड़ा ताज्जुब होगा कि इधर जबसे बसन्तकुमार खाट से उठा हैं, कुसुम से कुछ खिंच गया है; पर ऐसा क्यों हुआ? इस के जवाब में हमभी बिलसिया ही के कहने का अनुमोदन करते हैं कि — भला, मिया बीबी की लड़ाई का भेद हम
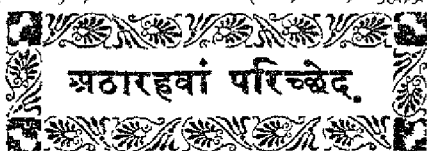
अठारहवां परिच्छेद.

प्रेम की बातें !

" दर्शने स्पर्शने ध्याने श्रवणे भाषणेऽपि वा ।
यत्र द्रवत्यन्तरङ्ग स स्नेह इति कथ्यते ॥ "
(कलाधरः)

खत लिखते समय कुसुम की बुरी हालत होगई थी,—यानी रोते रोते उसकी आंखें मिची जाती थीं, आंसुओं की धारा से ख़त तराबोर हुआ जाता था और कँपकँपी के सबब रह-रह—कर कलम हाथ से छूट-छूट-कर गिर-गिरजाया करती थी! हाय, प्रेम भी ऐसी बुरी बला है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं !

कुसुम का ख़त यह है,—

"स्वस्ति श्री सकल-गुण-निधान, मेरे प्रानप्यारे को मेरा बहुत तरह से गले लगा कर हज़ार-हज़ार प्यार पहुंचे । हे प्यारे! भला, मुझसे ऐसा कौनसा क़सूर हुआ है, जो ऐसी ख़फ़गी है? हे जान! आज तीन रोज़ होगया, पर आपसे मुलाक़ात नहीं होती ! हाय, प्रान! मेरा ऐसा जी घबरा रहा है कि कुछ अच्छा नहीं लगता ! नहीं मालूम कि आपकी तबीयत कैसी है, या क्या सबब है कि आप यों मुझसे रूठकर घर बैठे हैं ! ख़ैर, कुछ भी हो; लेकिन अगर इस लौंडी से कुछ खता हुई हो तो उसे माफ़ कीजिए, अपनी तबीयत का हाल लिखिए दयाकर दरसन भी दीजिए और बताइए कि मेरा क़सूर क्या है ? हाय ! प्रानप्यारे ! मेरे ऐसी नालायक तो आपको लाखों मिल-जायंगी, मगर फिर भी मुझ-सरीखी बेहया, बेग़ैरत, बेउन्स, बेमुरौवत, बेदर्द और बेसलीकी चाहनेवाली आपको दूसरी हर्गिज़ न मिलेगी; लेकिन प्यारे! अभी तो नहीं—मगर तब, जब कि मैं न रहूंगी, मेरी नालायकी आपको हरदम याद आवेगी ! अभी तो आप यों समझते होंगे कि, 'लाखों को चाहनेवाली और फ़क़त दौलत से ही मुहब्बत रखनेवाली बाज़ारू रंडी के प्यार की हक़ीक़त ही क्या है ! ' सो, सच है इसलिए कि प्यारे ! पहिले तो मुझे फुर्सत ही कहा है कि मैं आपको खत लिखूं क्यों कि लाखों खत मुझे रोज ही

लिखने पड़ते हैं न!!! मगर फिर भी अगर आपका हुक्म हो तो मैं खुद सिर-आखों के बल आपको मनाने के लिये आऊं! प्रानप्यारे! मुझे आपकी ज़ात से ऐसी उम्मीद नहीं थी कि इतनी जल्दी बिला-वजह आप अपना पल्ला छुड़ाकर मुझे दूध की मक्खी की तरह दूर करदेंगे और मैं तमाम-उम्र आपकी जुदाई की आग में जल-भुन-कर ख़ाक हुआ करूंगी! हाय, प्रियतम! इसमें आपका कोई दोष नहीं है, अगर कुछ है भी, तो वह मेरी फूटी किस्मत का है—कि मुझ बदनसीब को किसी बहाने भी कभी सुख न हो! प्रानप्यारे! हाय! जैसा दुःख मुझे होरहा है, या जो कुछ मेरे दिल पर गुज़र रहा है, सो तो मेरा दिल ही जानता है; या परमेश्वर जानता होगा! बस, इससे ज़ियादह और मैं क्या कहूं? हे प्रिय! ख़त लिखते समय मेरी छाती इसलिये फटी जाती है कि मुझे आपकी ख़फ़गी का बड़ा डर है; क्यों कि मेरा बुरा दिन है कि नहीं! इसीसे, जो मैं अच्छा भी लिखूंगी तो आप बुरा ही समझिएगा,—लेकिन दया करके इतना तो, भला, बतला दीजिए कि मेरा क्या क़ुसूर है और आपकी नाराज़ी का सबब भी क्या है? प्यारे! प्यारे!! प्यारे!!!

आपकी भुलाई हुई, एक बदनसीब चाहनेवाली,—"

हाय रे, प्रेम! तू बड़ा भारी भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस या शैतान की तरह है कि जिसके पीछे तू पड़जाता है, उसकी सारी दुर्गति करके तब उसका पीछा छोड़ता है! फिटकार है तुझे और धिक्कार है तेरे इस पाजीपन को!!!

निदान, जब तक बिलसिया लौटकर न आई, तब तक कुसुम बराबर पड़ी-पड़ी रोती रही; लेकिन ज्यों हीं बिलसिया आई, त्यों ही उसे देखते ही घबराकर कुसुम उठ बैठी और चट पूछने लगी,—"कह, क्या जवाब लाई?"

बिलसिया,—(मुस्कुराकर) "इस वक़्त तो मैं आपसे खूब गहरा इनाम लिया चाहती हूं!"

कुसुम,—"कंबख़्त, इस वक़्त शरारत न कर और जल्द बतला कि मेरे ख़त का क्या जवाब मिला?"

बिलसिया,—(मुस्कुराकर) "कुछ भी नहीं!"

कुसुम,—(त्योरी चढ़ाकर) "तो तू चूल्हे में जा!"

ठीक उसी समय　　　　　　　ने आगे बढ़कर हंसते-हंसते

पूछा,—"और मैं कहां आऊं ? प्यारी !"

अहा ! बसन्त को देखते ही कुसुम तेज़ी के साथ उठ और दौड़ कर उसके गले से लपट गई और बोली,—" निर्दई ! तुम अब मेरे सामने से कहीं मत जाओ !"

बसन्त,—"नहीं, नहीं, अब यह कभी नहीं हो सकता; इसलिए अब मैं भी वहीं जाता हूं, जहां तुमने बिलासिनी को जाने के लिये कहा है!"

कुसुम,—(दो गुलचे लगाकर) " हाय, तुम तो प्यारे, बड़े भारी नटखट हो !"

" मगर तुमसे तौल में कम ! ! !" यों कहकर उसने कुसुम के गले से सोने की इकलड़ी सिकरी उतार कर बिलसिया को दे दी और कुसुम के साथ मसनद पर बैठकर कहा,—" तुम्हारी आंखें इतनी सूज क्यों आई हैं ?"

कुसुम,— "क्या, मालूम !"

बसन्त,—" क्या तुम रोई थीं ? "

कुसुम,—"तुम्हे इन बातों से मतलब ?"

बसन्त,—" मतलब तो कुछ भी नहीं, यों ही पूछा था !"

कुसुम,—" इस वक्त, आधी रात को, इतनी तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी ?"

बसन्त,—" जी, कुछ भी नहीं; लेकिन फिर ख़त ही लिखने से क्या ग़रज़ थी ?"

कुसुम,—" यों हीं; जी में आया, लिख दिया !"

बसन्त,—" बस,—यों ही जी में आया, चला आया; कहो तो अब चला जाऊं ?"

कुसुम,—" तो रोकता ही कौन है ?"

बसन्त,—" बेहतर, रुख़सत होता हूं !"

यों कहकर जब वह उठने लगा, तब कुसुम ने उसका हाथ पकड़ कर बैठालिया और कहा,—"ख़ैर, जाते हो तो जाओ, लेकिन फ़कत मेरी एक बात का जवाब देते जाओ !"

बसन्त,—" ख़ैर, इतना और भी सही !"

कुसुम,—" तुमने गंगा की गोद में बैठकर किसी बात की कभी कोई क़सम भी खाई थी ?"

बसन्त 'कब ?"

कुसुम,—" ऐं! भूलगए क्या ? हाय रे, किस्मत !"

बसन्त,-" ख़ैर, मैंने किस बात की क़सम खाई थी ?"

कुसुम,—(लम्बी सांस लेकर) "अरे, जब कि याद ही न रहा तो फिर उसका कहना ही बेफ़ायदे है !"

बसन्त,-(मुस्कुराकर) "ख़ैर, फ़ायदा हो या नहो, मगर उसे मुंह से उगल तो दो !"

कुसुम,-" मेरा जी चाहता है कि इस वक़्त मैं अपना सिर पीट डालूं, या कलेजे में छुरी मार मरूं !"

बसन्त,-" अगर ऐसा इरादा है तो फिर देर क्यों कर रही हो? क्यों कि जो कुछ करना हो, उसे चट-पट कर डालो !"

कुसुम,-" हाय, राम ! कैसे हत्यारे से पाला पड़ा है ! ! !"

बसन्त,-(मुस्कुराकर) " वह कम्बख़्त हत्यारा कौन सा है ? ज़रा तुम उसका नाम तो बतलाओ ? फिर देखना कि मैं किस तरह उस नालायक हत्यारे को जहन्नुम-रसीदह करता हूं !"

कुसुम,-" तुम बड़े खोटे आदमी हो !"

बसन्त,-"बेशक, बेशक; मगर वह आफ़त का मारा "हत्यारा" कौन मुर्दा है ?"

कुसुम,-(दांत पीस-कर) " तुम्हारा सिर !"

बसन्त,-" तो इस मूज़ी को अभी काट डालो ! लाओ वह छुरी क्या हुई, जिसे तुम अभी अपने कलेजे में भोंकना चाहती थीं!"

कुसुम,-"अच्छा, ज़रा ठहरो और सुनो तो सही,-एक दिन तुमने किसी बात की क़सम खाई थी ?"

बसन्त,-(मुस्कुराकर) " किस बात की ?"

कुसुम,—(लाचार होकर) "प्यारे ! तुम जीते और मैं हारी ! अब दया करके यह तो बतलाओ कि मुझसे ख़फ़ा क्यों हो ?"

बसन्त,-" ऐ ख़ुश ! भला, जो मैं कुछ ख़फ़ा होऊं, तब तो बतलाऊं !"

कुसुम,-"तो इधर कई दिनों से तुमने यहां का आना क्यों छोड़ दिया ? और आना तो दरकिनार—बुलाने से भी यों जवाब दिया कि, 'जाकर क्या करेंगे !' सो, इन सब बातों का मतलब क्या है?"

बसन्त,-" मतलब मैं तुम्हें बतलाऊं ?"

कुसुम,-" ज़रूर बतलाओ !"

बसन्त,-" अच्छा तो सुनो—मुझे यहां आने से, सिवाय जलने

के, और फ़ायदा ही क्या है?"

कुसुम,-" जलना कैसा ? "

बसन्त,-" आह, बड़ी भोली ! गोया बेचारी कुछ जानती ही नहीं ! "

कुसुम,—" अय, प्यारे ! मैं तुम्हारे सिर की क़सम खाकर कहती हूं कि मैं तुम्हारी यह पहेली ज़रा भी नहीं समझी ! "

बसन्त,-" हाय, क्या मेरा सिर इतना सस्ता है, जो इसके खाने का इरादा करती हो ! "

कुसुम,—(आंसू भरकर) "हाय, प्रान ! आज ऐसी बातें क्यों होरही हैं ? "

बसन्त,-" इस लिये कि, जो जलने पर और कैसी बातें की जाती हैं !"

कुसुम,—" सोई तो मैं भी पूछती हूं कि इतनी जलन किसलिए पैदा हुई ? "

बसन्त,-" बराबर तुम्हारे साथ रहने से ! "

कुसुम,-(घबराहट से) " ऐं ! मेरे साथ रहने से तुम्हें जलन पैदा हुई? हाय, दई! मैं अब ऐसी हो गई! हाय, प्यारे! मैं अब जलानेवाली हुई !!! "

बसन्त,—" बेशक, अब तुम ज़रूर जलाने-वाली हुई हो; इस बात को मैं बहुत आसानी से साबित कर दूंगा—और उसमें शर्त यह है कि तब तुम भी उस बात से हर्गिज़ इन्कार न कर सकोगी; लेकिन ज़रा ठहरो और पहिले मुझे वह "प्रेमपत्रिका" तो दिखलाओ, जिसे तुमने मेरी ग़ैर-मौजूदगी में लिखा है? "

यह सुन और मुस्कुराकर कुसुम ने कहा,—" उस पत्रिका का हाल तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? "

बसन्त,-(हँसकर) " मैंने सपना देखा था ! "

कुसुम,-(मुंह चिढ़ाकर)" हूं! मेरा सिर देखा था ! यह सारी शरारत निगोड़ी बिलसिया की है !"

बसन्त,-" यह 'निगोड़ी' नहीं, बल्कि सगोड़ी है; क्यों कि इसके दोनों गोड़ (पैर) अभी कटे नहीं,-मौजूद हैं !"

यह सुन, कुसुम हँसने लगी और बिलसिया ने वह "प्रेमपत्रिका" कलमदान में से निकालकर बसन्त के आगे रख दी।

प्यारे पाठक वह " " आगे देखिए,

प्रेम-पत्रिका !!!

" द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं,
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्व
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तद्वपु-
र्ध्येयं किं नवयौवने सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥ "
(सुभा

प्यारे ! प्यारी बात यह, चित दै सुनहुँ सुजान ।
कब मिलिहौ सो अब कहौ, मेरे जीवन-प्रान ॥ १ ॥
प्यारे-प्यारे रटति हौं, निसि-दिन तेरो नाम ।
खान-पान भावै नहीं, बिसरि गए सब काम ॥ २ ॥
प्यारे बिन भेंटे कहौ, कैसे पूजे आस ।
हांजी-हांजी के कहे, मिटै न मदन-पियास ॥ ३ ॥
प्यारे दरसन देत नहिं, ऐसे भए कठोर ।
हौं हारी बिनती करत, बार-बार कर-जोर ॥ ४ ॥
प्यारे तेरे विरह में, पल-छिन गिनि-गिनि हाय ।
अँगुरिन में छाले परे, तऊ मिले नहिं आय ॥ ५ ॥
प्यारे हम जानी अबै, प्रीति इकंगी होय ।
एक न जानै नेह कछु, एक मरै दुख रोय ॥ ६ ॥
प्यारे हँसि-हँसि कै कबौं, नेक करत नहि बात ।
ऐसी प्यारी पाइ कै, क्यों इतने इतरात ॥ ७ ॥
प्यारे कब अपनाइहौ, लगि-लगि गरें सुजान ।
बातन तें मानत नहीं, दृग चञ्चल मन प्रान ॥ ८ ॥
प्यारे वह दिन कौन सो, ह्वै है सुख की खान ।
अंग-अंग अरुझाइ कै, सीतल करिहौं प्रान ॥ ९ ॥
प्यारे प्रीति लगाइ कै. मोहि परत नहि चैन ।
धन मरपन किया, तऊ मैन ॥ १०

प्यारे तेरे बिरह की, अगिनि जरावत गात।
हाय-हाय मुख तें कढ़ै, धीरज धर्‍यो न जात॥ ११॥
प्यारे बिकल बिहाल यह, चलन चहत अब प्रान।
मिलिहौ पुनि तुम कौन सों, समुझत नाहिं सुजान॥ १
प्यारे हिये लगाइकै, खोलि कंचुकी-बंद।
हँसि, अधरामृत पान करि, मन भरि लेहु अनंद॥ १३
प्यारे तेरे बिरह की, लगी करेजे तीर।
हँसि लपटाइ निकारि तेहि, कब हरिहौ हिय-पीर॥ १
प्यारे प्रीति लगाइ कै, जनि बिसरावहु पीर।
अबलौं तुमरी आस में, तजत न प्रान सरीर॥ १५॥
प्यारे अब तो बिरह की, भभकि उठी हिय आग।
छिपै छिपाए कौन बिधि, लगी लालची लाग॥ १६॥
प्यारे अब जिय लगत नहि, घर-बन पार-परोस।
कहुँ सबेरे, साँझ कहुँ, कहुँ रात कहुँ द्योस॥ १७॥
प्यारे तुम सीखे अबै, 'नहीं' 'नहीं' की बानि।
'हां' 'हां' जो कहिदेहु तो, कौन तुम्हारी हानि॥ १
प्यारे छल कीनो बड़ो, छीनि लियो मन मोर।
बे-मन करि अब तो हमैं, बात बनावत जोर॥ १९॥
प्यारे मन में आन है, मुख तें भाषत आन।
कहु सांची मनभावते, नतरु तजत हम प्रान॥ २०॥
प्यारे नेह-निवाह नहिं, कियो दियो दुख मोहि।
हाय अधिक अब का कहौं, हृदय सराहत तोहि॥ २१
प्यारे घूंघट-खोलि के, बिहँसि चितौनि चलाय।
बसीकरन जो कीन तौ, क्यों न मिलत मन-भाय॥ २२
प्यारे फांसी प्रेम की, डारि लियो मन छोरि।
अब वह तेरे कर पर्‍यो, कैसे छुटै बहोरि॥ २३॥
प्यारे रस की रीति है, जैसे ऊख-सुभाय।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, बिन गाँठहि रस पाय॥ २४
प्यारे निठुराई तजौ, हम गरीब लवलीन।
दरस-सुधा-रस पान बिन, ब्याकुल यह दृग-मीन॥ २५
प्यारे जल तें बिछुरि कै, मरत मीन अकुलाय।
तबौं दया जल के हिये नेकु न आवत हाय॥ २६॥

प्यारे चातक रटत है, स्वाति-बुंद की चाह।
पै स्वाती मेटत नहीं, चातक-चित की दाह॥ २७॥
प्यारे मरत चकोर ह्वै, चंदचाह में चूर।
पै चकोर की चाह कों, चंद न जानत क्रूर॥ २८॥
प्यारे चाहत हंस तौ, मान-सरोवर बास।
मानसरोवर कों नहीं, हंसहिं देखि हुलास॥ २९॥
प्यारे दीपक-जोति पर, जरि-जरि मरत पतंग।
पै दीपक नहिं देत है, वा पतंग को संग॥ ३०॥
प्यारे लखि घनघोर चहुँ, करत सोर बन मोर।
पै घन तनिक न देखई, हरषि मोर की ओर॥ ३१॥
प्यारे रस-बस ह्वै मरत, भौंर केतकी-माँहि।
पै वा केतकि के हिये, नेकु भौंर-दुख नाहिं॥ ३२॥
प्यारे सूनी सेज पै, लहर उठत जिय जोर।
जैसे मावस-रैन में, व्याकुल होत चकोर॥ ३३॥
प्यारे बिनु यह जामिनी, अतिहि तपावत अंग।
मनहुँ दुपहरी जेठ की, करत पथिक-सँग जंग॥ ३४
प्यारे तुमरे दरस बिन, तरफरात मन मोर।
ज्यों गरजन सुनि मेघ की, बिन तेहि देखे मोर॥ ३५
प्यारे यों तरस्यो करत, लहि मन मदन-झकोर।
ज्यों चकवा नित जामिनी,-माँहि चहत है भोर॥ ३६
प्यारे चकवा-जुगल नित, भेंटत बीते रात।
हमरे-तुमरे मिलन कों, कब ह्वै है परभात॥ ३७॥
प्यारे तो-बिन निठुर यह, मैन जरावत देह।
याके सीतल करन कों, बरसहु वारि-सनेह॥ ३८॥
प्यारे यों तरफत रहौं, ज्यों जल के ढिग मीन।
तबौं न लेत अँकोर भरि, यह सुभाव अब कौन॥ ३९
प्यारे नेह-बिहीन मन, तुव लखि मो-मन रंज।
ज्यों सूखे सरवर गये, फिरत निरासहिं खंज॥ ४०।
प्यारे तेरो प्रेम-रस,-सागर सुरस अथाह।
तन तैर्‌यो, मन बूड़िगो, पायो पार न थाह॥ ४१॥
प्यारे तेरे नेह की, नदी बिमल गंभीर।
मन अरु नैन पियासही, मरत न पावत नीर॥ ४२।

प्यारे तेरी प्रीति को, सरवर सुखद सुवेस ।
पै नेही-जन की कबौं, प्यास न मेटत लेस ॥ ४३ ॥
प्यारे तेरी चाह को, कूप गही यह टेक ।
खैंचत गुन, मन हारिगो, दई बूंद नहिं एक ॥ ४४ ॥
प्यारे छाले परि गये, मन के पायन-माहिं ।
तुव-लगि दौरत हारिगो, आदर पायो नाहिं ॥ ४५ ॥
प्यारे बिन तोसों मिले, गयो धीरहू भागि ।
कैसे दिल-बारूद में, छिपै इश्क की आगि ॥ ४६ ॥
प्यारे सुनि यह बात कों, करौ हिये अब गौर ।
रूप-दुपहरी-छाहँ कहुँ, ठहरानी इक ठौर ॥ ४७ ॥
प्यारे रूप अनूप यह, पाइ करौ जनि मान ।
सूम समीप न जांचई, जाचक जे मतिमान ॥ ४८ ॥
प्यारे भिच्छा दरस की, झोली पलक पसार ।
मागत जोगी नैन ये, करु इनकों सतकार ॥ ४९ ॥
प्यारे बिरवा प्रेम कों, तुम हिय रोप्यो लाय ।
सींचत रहियो प्रेम-जल, नेकु नहीं कुम्हिलाय ॥ ५० ॥
प्यारे तोसों मिलन कों, अस जिय आवत मोहि ।
पंछी ह्वै उड़िकै मिलहुँ, कंठ लगावहुँ तोहि ॥ ५१ ॥
प्यारे बिकल बिहाल अति, रैन दिना नहिं चैन ।
देह जरावत बिरह, अरु, मनहिं तपावत मैन ॥ ५२ ॥
प्यारे तेरे बिरह में, प्रान अधिक अकुलाय ।
मन तेरे मन सों रम्यों, बिन मन रह्यो न जाय ॥ ५३ ॥
प्यारे तेरे दरस कों, तरसत प्यासे नैन ।
तारे गिनत बितीत निसि, देत चैन नहिं मैन ॥ ५४ ॥
प्यारे तुव-बचनावली,-सुधा चहत मम कान ।
दरसन चाहत नैन जुग, मिलन चहत हैं प्रान ॥ ५५ ॥
प्यारे हाय दुराय मुख, भली दिखाई चाह ।
तुमरी ऐसी चाह को, भलो भयो निरवाह ॥ ५६ ॥
प्यारे पल-छिन जुग भयो, काटे कटत न रात ।
हाय कबै धों होइगो, मिलन-अवधि को प्रात ॥ ५७ ॥
प्यारे मन तुव-नाम की, माला जपत हमेस ।
छोडि सबै जंजाल कों, लिया फकीरी भेस ॥ ५८ ॥

प्यारे तेरे ध्यान में, मगन रहत मन डूब ।
प्रगट होइ कब देहुगे, मन-मनसा महबूब ॥ ५९ ॥
प्यारे तेरे रूप कौं, देखन चाहत नैन ।
देहु दरस मनभावते, बिकल करत मन मैन ॥ ६० ॥
प्यारे प्रीति लगाइकै, भली करी दुख दीन ।
तन मन धन अपनाइ कै, कियो सबै बिधि हीन ॥ ६१
प्यारे बिन दिलदार के, प्रीति सराहै कौन ।
ज्यों तुम पै हौं मरत हौं, त्यों तुम धारत मौन ॥ ६२ ॥
प्यारे जिय अकुलात है, तापै तुम अब रंज ।
तो-बिन खिलै न सुमन-मन, ज्यों सूरज बिन कंज ॥ ६३
प्यारे टूटे मनहिं बरु, दीजे मोहि लौटाय ।
छोड़ी भीख फकीरनी, वह ठिकरा मिलजाय ॥ ६४ ॥
प्यारे निठुराई करी, भली करी सब खूब ।
अरु जो चाहौ सो करौ, हम तयार महबूब ॥ ६५ ॥
प्यारे तजि तिहुं-लोक कौं, तेरो ध्यान लगाइ ।
मैन-मंत्र कौं जपत मन, जोगी-भेस बनाइ ॥ ६६ ॥
प्यारे बरजोरी लियो, तुम मेरो मन छीन ।
अब अपनो मन देत नहिं, हाय गजब छल कीन ॥ ६७ ॥
प्यारे प्रीति लगाइ कै, सबै गवाँई साँक ।
मो-मन सिगरो लेइ कै, निज नहिं देत छटाँक ॥ ६८ ॥
प्यारे ऊपर एक है, मन में दूजो आँक ।
कपटी-जन की रीति यह, ज्यों खीरा की फाँक ॥ ६९
प्यारे क्यों मुख हेरि कै, दै नैननि की चोट ।
मन ललचाय दिखाय छबि, दुरि बैठे कित ओट ॥ ७०
प्यारे नैना मद-भरे, तेरे तीरंदाज ।
तान-बान हनि मारहीं, सूधे मन-मृग आज ॥ ७१ ॥
प्यारे मेरो मन रम्यो, तुमरे मन सौं जाय ।
तुम ह्वै-मनवारे भये, मन-बिहीन हम हाय ! ॥ ७२ ॥
प्यारे नैन उदार सौं, बिहँसि निहारहु मोहि ।
काम हमारो होइ अरु, हृदय सराहै तोहि ॥ ७३ ॥
प्यारे अब कित जाहिं हौं, केहि बिधि छाड़ौं साथ ।
बिना मोल की मापुदी बिकी तिहारे हाथ ॥ ७४ ॥

प्यारे मन लीनो कहा, जान हमारी लीन।
जीवतहूं कबहूँ सुन्यो, ख्वै मनि फनि कोउ दीन ॥ ७५
प्यारे तेरे सामुहैं, राख्यो मन उपहार।
चाहै चकनाचूर करु, चाहै करु हियहार ॥ ७६ ॥
प्यारे जदपि गुमान कै, रूठे रहत हमेस।
तदपि दरस दीबो करौ, सुंदर सुखद सुवेस ॥ ७७ ॥
प्यारे बिरह-बिथा बुरी, काहू कौं नहिं होय।
लगै आंख तें आंख जब, लगै आंख नहिं रोय ॥ ७८ ॥
प्यारे करवट लेत, नहिं, बीतन रैन असीव।
तुबक्रि-छुरे जनु नीद कौं; आवत नीद अतीव ॥ ७९ ॥
प्यारे मग-जावत थके, नैन अमाने रोय।
तौहू दरसन ना मिल्यो, मरत पियासे दोय ॥ ८० ॥
प्यारे तेरी नवल छवि, नैनन रही समाय।
रात दिना खटक्यो करै, नींद न आवत हाय ॥ ८१ ॥
प्यारे कहौं सु कौन बिधि, कहन देत नहिं मैन।
अपनो अमल जमाइ कै, निकसन देत न बैन ॥ ८२ ॥
प्यारे दिल के दरद की, देहु औषधी चाहि।
जातें मनसिज-रोग यह, जनम-जनम कौं जाहि ॥ ८३ ॥
प्यारे चाह-निवाह की, बड़ी अनोखी रीति।
जल में कमल अकास रबि, तौहू निबहत प्रीति ॥ ८४ ॥
प्यारे रस की गांठहूं, देत सुधारस खूब।
गांठ गँठीली ऊख जिमि, रस को गाठ अजूब ॥ ८५ ॥
प्यारे रस नहिं गाँठ जहँ, यहै कहत सब कोय।
गँठजोरे की गांठ मैं, देखु अधिक रस होय ॥ ८६ ॥
प्यारे प्रेम सबै करैं, प्रेम न जानत कोय।
जो जानै करि प्रेम तौ, मरै जगत क्यों रोय ॥ ८७ ॥
प्यारे दिल की चोट कौं, देखहु नैन उघार।
पैनी नैन-कटार जेहिं, करी करेजे वार ॥ ८८ ॥
प्यारे हिय के घाव पर, मरहम-नेह लगाइ।
बिथा बिरह की हरहु अब, लाइ गरें, हरखाइ ॥ ८९ ॥
प्यारे करिबो चाह कौं, सहज कहैं सब कोय।
पै करिबो निरवाह कौं, अतिहि कठिन जग होय ॥ ९०

प्यारे चाह कियो सबै, पै न कियो निरवाह।
होय चाह-निरवाह तौ, किमि निकरै मुख आह ॥ ९१ ॥
प्यारे तो-बिन जामिनी, भई द्रौपदी-चीर।
घटै न नेकहु, थकि रह्यो, बिरह-दुसासन-बीर ॥ ९२ ॥
प्यारे भूख मिटाइ दै, चुंबन-कंद खवाइ।
मेटहु बिरह पियास सब, सुंदर रतिरस प्याइ ॥ ९३ ॥
प्यारे तुम तो बसत हौ, हमरे मन के माँहि।
पै तुमरे मन बसत को, जातें चितवत नाँहि ॥ ९४ ॥
प्यारे प्रेम-प्रभाव तें, जल-पय संग बिकाय।
कपट-खटाई परतही, बिलग होइ रस जाय ॥ ९५ ॥
प्यारे अब हौं का कहौं, जैसे बीतत रात।
कहिहै सब तुमरो हियो, हमरे हिय की बात ॥ ९६ ॥
प्यारे अस जिय होत है, लिखौं सबै निज हाल।
बिरह लिखन नहिं देत है, दृग-आंसुन कों ढाल ॥ ९७ ॥
प्यारे बिरह-बिथा लिखत, भरि-भरि आवत नैन।
कोटि जतन कीनों तऊ, मुख सों कढ़त न बैन ॥ ९८ ॥
प्यारे पाती लिखन मैं, कलम गहत थहराय।
आंसुन की सरिता उमड़ि, कागद देति भिगाय ॥ ९९
प्यारे नैन-प्रवाह में, मसि कैसें ठहराय।
बिरह-हिलोरनि तें अहो, बचन-रचन छितराय ॥ १००
प्यारे मन तुव पास है, बिन मन कहा बसाय।
सोच-समुझ कछु परत नहिं, लिखौं कहा अकुलाय ॥ १
प्यारे पाती प्रेम की, केहि बिधि लिखौं सहेत।
बिनहि पढ़े अनखाई तेहि, टूक-टूक करि देत ॥ १०२ ॥
प्यारे तुमहु लिख्यो न कछु, भलो कर्‍यो यह काज।
क्यों बिसरायो हाय मोहि, प्रेम-पंथ तें भाज ॥ १०३ ॥
प्यारे पाती ना मिले, प्रान होत बेहाल।
अबहीं तो ऐसी करी, आगे कौन हवाल ॥ १०४ ॥
प्यारे कागद मिलत नहिं, कै भई कलम अमोल।
रतन मोल कै मसि भई, जौ न लिख्यौ द्वै-बोल ॥ १०५
प्यारे बिनती कान दै, सुनहु हजार-हजार।
हँसि मुसुकाइ लगाइ हिय, मिलिये ॥ १०

प्यारे तुम जामें सुखी, यहै हमैं सुख-मूल।
पै निवाह या नेह कों, तजहु न चित तें भूल ॥ १०७ ॥
प्यारे अब अपनाइ कै, सुखी करहु सुख-मान।
मन की कसक मिटाइ हँसि, राखि लेहु मम प्रान ॥ १०८ ॥
प्यारे तुमरे नैन में, सोहै सदा सनेह।
अब हम-तुम दोऊ भए, एक-प्रान द्वै-देह ॥ १०९ ॥
प्यारे तेरे गुन-गुही, प्रेम-पुष्प की माल।
याकों निज उर धारि कै, मोकों करहु निहाल ॥ ११० ॥
प्यारे तुम में नित रहै, गंभीराशय प्रेम।
प्रेमी-जन नित नेह तें , गावहिं एहि करि नेम ॥ १११ ॥

(और भी)

प्रेम करि काहू सुख न लह्यो। सब तजि जाके हाथ बिकानी, सोउ न बाँह गह्यो॥ हाहा खात जात निसिवासर, नैनन नीर बह्यो। तबौं अमानो यह मन पापी, मानत नाहिं कह्यो॥ बिरह-बिथा तन ब्यापि रही अति, जात सरीर दह्यो। रसिककिसोरि बिना नेही के, दुख नहिं जात सह्यो॥ १ ॥

प्रीत की रीत निराली देखी। ज्यों-ज्यों बिछुरन होत मीत सों, त्यों-त्यों बढ़त बिसेखी॥ जानि न परत भेद कछु याकों, याकी गति अनपेखी। रसिककिसोरी यह सोइ जानत, जाके हिय अवरेखी॥ २ ॥

प्रीत को पंथ किधौं तरवार। सीधी चाल चले बिन यापैं, काटत पैनी धार॥ किधुँ न बनत बाँकपन यामें, देखहु नैन पसार। रसिककिसोरी सोइ सुख पावत, जो जानत करि प्यार॥ ३ ॥

प्रेम को मारग अतिहि भयावन। भूलभुलैयाँ में फँसि बरबस, अपने मनहिं फँसावन॥ अरुझि गयो जो कोऊ यामें, कठिन होत सुरझावन। बार-बार कर मीजि-मीजि वह, करत महा पछितावन। पहिले ही चेत्यो नहिं जाने, पाछे का समुझावन। रसिककिसोरि लालच में फँसि, नाहक जनम गवाँवन॥ ४ ॥

प्रीत की गैल न कोऊ जैये। क्यों नाहक या मारग पग धरि, अपने मनहिं फँसैये॥ याके डगर-बगर दुख बगरयो, सुख को खोज न पैये। रसिककिसोरी क्यों इतनो हठ करि पाछें पछितैये॥ ५ ॥
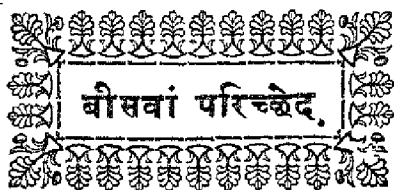
बीसवां परिच्छेद,

प्रेम-पुत्तली !

" अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनामुक्तं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं,
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति भुवि ॥"

(अभिज्ञान-शाकुन्तले)

कुसुमकुमारी की विचित्र प्रेमपत्रिका को, जिसमें शुरू से अख़ीर तक हरएक शब्द में सच्चा और शुद्ध प्रेम-रस भरा हुआ था, और जिसमें से सच्चे प्रेम के अमृत की बूंदें टपकी पड़ती थीं,—पढ़कर बसन्तकुमार का शरीर, हृदय, प्राण और रोम-रोम फड़क उठा और वह मारे प्रेम के पुलकित हो कुसुम को गले लगा और उसके गालों को बड़े प्यार से चूमकर कहने लगा,——

"आहा, प्यारी ! इस पत्रिका ने तो सचमुच मुझे अपना ज़र-ख़रीद गुलाम बना लिया ! प्यारी, प्यारी, मेरी प्रानप्यारी ! ऐसा अजीब और दिल को फड़का-देनेवाला प्रेम तुमने कहांसे सीखा ! आहा ! प्यारी ! तुम्हारी ही चाह सच्ची है और दुनियां की सभी प्यार-करनेवालियों की सिरमौर बनने लायक भी तुम्हीं हो!"

कुसुम ने भी बसन्त को गले लगाकर उसके चुम्बन का बदला चुका लिया और हँसकर कहा,—" बस, बस, बस; अब रहने दो और ज़ियादा ख़ुशामदी बातें न बनाओ !"

बसन्त,—" नहीं, प्यारी ! इस वक़्त मैं ख़ुशामदी या बनावटी बातें नहीं करता, बल्कि सच्ची बातें कररहा हूं कि,—इस फड़कती-हुई " प्रेमपत्रिका " ने मुझे सचमुच मोह लिया ! प्यारी, तुम धन्य हो और तुम्हारा ही चाहना सच्चा है ! "

कुसुम ने सच्चे अनुराग से बाग-बाग होकर कहा, "बस, बस,

बसन्त,—"नहीं, प्यारी ! मैं तहेदिल से इस बात को सकारता हूं कि चाहना तुम्हारे ही हिस्से में पड़ा है !"

कुसुम,—"लेकिन, निबाहना तो तुम्हारे ही हाथ है !"

बसन्त,—"बेशक,—और मैं तो इस बात की क़सम ही खा चुका हूं!"

कुसुम,—"आह, वह बात अब याद आई !"

बसन्त,—"उसे मैं भूला कब था?"

कुसुम,—"तो फिर इतना प्रपंच क्यों रचा था !"

बसन्त,—"सिर्फ़ तुम्हें जलाने के लिए!"

कुसुम,—"एँ, यह बात है !"

बसन्त,—"बेशक, यही बात है !"

कुसुम,—"तो मुझे जलाने से तुम्हें कुछ सुख मिलता है !"

बसन्त,—"सुख-दुःख की बात तो मैं नहीं जानता, लेकिन, हां—इतना तो मैं ज़रूर कहूँगा कि जैसा मज़ा मुझे जलाने से तुम्हें मिलता होगा,—तुम समझ लो कि तुम्हें जलाने से वैसा ही मज़ा मुझे भी मिलता होगा !"

कुसुम,—"आह, तुमने फिर वही शर निकाला ! ख़ैर, बतलाओ तो सही कि मैंने तुम्हें क्या जलाया ?"

बसन्त,—"बतलाऊं ?"

कुसुम,—"ज़रूर बतलाओ !"

बसन्त,—"देखो, मैं अभी, कुछ देर पहिले तुमसे यह बात कह आया हूं कि, मैं यह बात साबित करदूंगा, कि तुम मुझे इस कदर जलाया करती हो कि उसकी ज्वाला से बचने के लिए मैंने तुमसे दूर ही रहना अख़्तियार किया है !"

कुसुम,—"तो, उस जलानेवाली बात को तुम साबित तो करो ?"

बसन्त,—"कहूं ?"

कुसुम,—"कहो !"

बसन्त,—"अच्छा, सुनो—"

कुसुम,—"कुछ कहोगे भी !"

बसन्त,—"अच्छा, अब सुनो, प्यारी ! घी और आग का एक साथ रहना किसको हानि पहुंचाता है ?"

कुसुम,—"घी को।"

बसन्त,—"तो बस, अब तुम्हीं इन्साफ़ करो कि तुम्हारे साथ रहने से मुझे जलन पहुंचती है या नहीं ?"

कुसुम,—(मुस्कुराकर और उसकी पीठ में एक थप्पड़ जड़ कर) "दुष्टशिरोमणि ! तुम्हारी दुष्टता अब मैं समझी! दर-हक़ीक़त तुम पूरे कसाई हो ! सचमुच, तुम बड़े खोटे हो ! अरे, जो बात सीधी तरह से होसकती थी, उसके लिये इतने जंजाल की क्या ज़रूरत थी ! "

बसन्त,—(प्यार से उसे सीने से लगाकर) " इसीलिये कि तुम तो अब तक सन्नाटा ही खैंचे हुई थीं ! अच्छा, जो कुछ हुआ, सो तो हुआ, पर अब तो बतलाओ कि आगे तुम्हारा इरादा क्या है? बस जो कुछ तुम्हारा बिचार हो, उसे अभी तय कर डालो !"

कुसुम,—" प्रानप्यारे, सुनो—मेरी यह प्रतिज्ञा थी कि पहले तुम सवाल करो; सो नारायण की दया से मेरी मनोकामना आज पूरी हुई ! ख़ैर, अब सुनो,–तुम इतने घबराते क्यों हो ? अरे, मैं तो अब तुम्हारी बिना मोल की दासी बनही चुकी हूं, तो फिर मुझ से पूछने की क्या ज़रूरत है ? इसलिए अब जो दिल में आवे सो करो क्यों कि मैं तो तुम्हें अपना तन, मन और धन अर्पन कर ही चुकी हूं! सो, प्यारे! मैं जब अपने को तुम्हारे अख़्तियार से बाहर समझती तब तो ख़ुद कोई बात कहती? अजी, मैं तो यह समझे हुए थी कि,– ' जब कि मैं प्यारे की लौंडी हूं, तो, जो प्यारे के जी में आवे, सो वह करे । ' किन्तु हे दुष्ट–शिरोमणि! तुम्हें तो बिना–बात एक झूठ-मूठ का टंटा खड़ा करना था ! ख़ैर, प्यारे ! प्यार की लड़ाई में भी मिठास होती है ! ख़ैर, तो बस, हुआ न ! या अभी लड़ाई की कुछ और हवस जी में बाक़ी है ! ! ! "

बसन्त,–" अच्छा, तो प्यारी अब तुम यह बताओ कि हमारा–तुम्हारा सरोकार क्योंकर कायम हो ? "

कुसुम,–" जिस तरह तुम्हारा दिल चाहे । "

बसन्त,—" नहीं, जैसा तुम पसन्द करो ! "

कुसुम,—" मैं तो तुम्हारे हुकुम के ताबे हूं । "

बसन्त,–" लेकिन, यह मामला मैं तुम्हारी मर्ज़ी पर छोड़ता हूं।"

कुसुम,—" तो क्या मेरी बात मानोगे ? "

बसन्त,–" ज़रूर मानूंगा । "

कुसुम,–" तो देखो,–फिर नाहीं-नुकर मत करना ! "

बसन्त, ' नहीं, प्यारी कभी नहीं "

विवाह-व्यवस्था ।

"शयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा, यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
ा हि सन्देहपदेषु वस्तुषु, प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥"
(अभिज्ञान-शाकुन्तले)

ह सुन कर कुसुमकुमारी ने बसन्त की ओर मुस्कुराकर देखा और उसके हाथ को अपने हाथ मे लेकर कहा,-"तो, सुनो, प्यारे! मैं भी क्षत्रिय की लड़की हूं, और तुम भी क्षत्री-जाति के हो, इसलिये— — — —"

इतना कहते कहते कुसुम रुक गई, पर उसकी उस तलब समझ कर बसन्त ने हँसकर कहा,—"तो फिर क्या हो कि मै तुम्हारे साथ शादी करलूं!"

न कुसुम ने बड़े प्रेम से बसन्त को गले से लगा और उसके बड़े चाव से चूमकर कहा,—"वाह, प्यारे! तुम धन्य हो मेरी दिली आरजू समझ ली! बेशक मैं भी यही चाहती ो मेरी इच्छा भी है कि जब मैं एक ही शख्स के साथ अपनी कादा चाहती हूं तो फिर तुम्हारे साथ तुम्हारी रंडी बनकर लक जोरू बनकर रहूं!"

न बसन्त ने बड़े प्यार से उसे अपने हृदय से लगा लिया —"प्यारी कुसुम! जो सच पूछो तो मैने भी दिल ही दिल " इरादा कर लिया था कि अगर तुम मानोगी तो मैं तुम्हारे ो करके जोरू-खसम की भांति अपने दिन बड़े ही आरामो- थ बिताऊंगा; क्योंकि मैं यह बात पहिले ही मे समझे हुए . तुम्हारे ऐसे अच्छे ढंग है और तुम इतनी पाक-साफ़ हो ुम मेरी ब्याहता जोरू बनने के काबिल हो; क्योंकि अगर त्रियकुमार के ब्याहने लायक न होतीं तो मेरा पवित्र मन ारी तरफ न खिचता।"

त सुनकर　　　　बहुत ही खुश हुई और मुस्कुराकर

बोली,—" प्यारे तुमने सच कहा, सचमुच बात ऐसी ही है यदि तुम सच्चे प्रेमी न होते और तुम्हारा मन पवित्र न होता तो मेरा मन भी कभी तुम्हारी तरफ़ न खिचता; इसलिये अब, जब कि हमारे-तुम्हारे दोनो मन आपस में खिचकर एक हो रहे है तो फिर ऐसीअवस्था मे ये दोनों तन भी अब एक होजाने चाहिएं।"

कुसुम की बात सुन कर बसन्तकुमार ने कहा,—"ठीक है, अब देर करने का कोई काम नहीं; पर यह बात तुम मेरी मर्ज़ी पर छोड़ दो कि विवाह किस भांति का होगा और उसका अंजाम किस तरह किया जायगा!"

कुसुम,—"किन्तु यह बात मेरी समझ में न आई कि तुम किस तरह पर ब्याह किया चाहते हो!"

बसन्त,—"प्यारी! तुम घबराओ मत! क्योंकि मैं न तो कृस्तान हूं-और न मुसलमान; इसलिये तुम इस बात का यकीन रक्खो कि मैं जो कुछ करूंगा, वह अपने हिन्दूमत के अनुसार ही करूंगा।"

कुसुम,—"लेकिन फिर भी मैं यह जानना चाहती हूं कि तुम किस तरीके पर शादी किया चाहते हो?"

बसन्त,—(हंसकर) "खूब धूमधाम के साथ!"

कुसुम,—"मगर, मैं चुपचाप शादी किया चाहती हूं, यहां तक कि घर की मज़दूरनी तक भी यह न जाने कि हमलोगों का ब्याह हुआ है!"

बसन्त,—"यह क्यों?"

कुसुम,—"इसलिये कि चाहे मैं कैसी ही पाक-साफ़ क्यों न होऊं, पर हूं तो रंडी की लड़की ही न; ऐसी हालत में अगर यह बात ज़ाहिर होजायगी और लोग हमारी-तुम्हारी शादी का हाल सुनेंगे तो तुम्हें ताना मारेंगे कि 'इसने एक रंडी के साथ शादी की'!!!"

यह सुनकर बसन्तकुमार बहुतही खुश हुआ और कुसुम के हाथ को अपने हाथ मे लेकर कहने लगा,—"अहा, प्यारी! तुम धन्य हो, इसलिये दुनियां की प्रेमिनी औरतों को तुमसे प्यार करना सीखना चाहिए! आहा! दूसरा कोई तुम्हारे प्यारे (मुझे) ताना मारे, यह भी तुम नहीं सह सकतीं! सो, प्यारी! तुम्ही धन्य हो और तुम्हारा ही चाहना सच्चा है।"

कुसुम "खैर बहुत बढ़ावा देकर तुम मेरे मिजाज को न गरकाओ और अब यह [illegible] कि शादी किस तरह हो?"

बसन्त,—"मैं तो किसीकी पर्वा न करके खूब धूमधाम के साथ तुमसे ब्याह किया चाहता था, पर जब कि तुम्हे यह बात नहीं रुचती तो—खैर, चुपचाप ही शादी करली जाय।"

कुसुम,—"हां, प्यारे! बस, ऐसाही होना चाहिए, क्योंकि यद्यपि प्रेम के आगे विवाह का बन्धन कोई चीज़ नहीं है, मगर नहीं प्रेम के बन्धन मे परस्पर मन के बँध जाने पर भी विवाह के बन्धन मे तन को भी आपस में बाँध लेना चाहिए, जिसमे धर्म से पतित न होना पड़े।"

बसन्त;—"आह, प्यारी तुम्हें और तुम्हारे इस पवित्र धर्मभाव को धन्य कहना चाहिए!"

कुसुम,—"खैर, तो अब यह बताओ कि ब्याह क्यों कर हो और कब हो?"

बसन्त,—"सुनो बताता हूं—देखो, प्यारी, हिन्दू शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह लिखे हैं।"

कुसुम,—"ऐसा! तो वे कौन कौन से हैं?"

बसत,—"सुनो, उनके नाम ये हैं—ब्राह्म, दैव आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, राक्षस, पैशाच और गान्धर्व!!!" (१)

कुसुम,—"इनमें से गान्धर्व विवाह का हाल मुझे मालूम है, इसलिये मैं समझती हूं कि तुम्हारा इरादा इन विवाहों में से गान्धर्व विवाह के करलेने का है!"

बसन्त,—"वाह प्यारी, तुम धन्य हो! खूब समझी!"

कुसुम,—"तो, बस, अब झटपट गान्धर्व विवाह होजाना चाहिए।"

बसन्त,—"ज़रूर होजाना चाहिए और अभी होजाना चाहिए; क्योंकि इसमें समय या और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती और कुमार-कुमारी के मिलाप होने पर परस्पर इतना कह देने सेही यह विवाह, सम्पूर्ण होजाता है कि 'तुम मेरी भार्या हुई, और तुम मेरे पति हुए'।" (२)

यह सुनकर कुसुमकुमारी बहुत ही प्रसन्न हुई और फड़क कर बोली कि,—"वाह, वाह! तब तो प्यारे! हम-तुम बहुत सस्ते छूटे!"

---

(१) ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजाप-यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मतः॥

(२) त्वं मे भार्या त्वं मे पतिरिति गान्धर्वः।
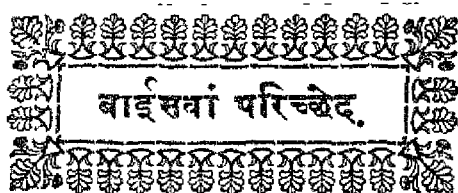
बाईसवां परिच्छेद.

विवाह।

"त्वं मे भार्या प्रिया नित्यं, त्वं मे नित्यं प्रियः पतिः।
यत्रेत्थं कथनं सोऽयं, गान्धर्व इति कथ्यते॥"

(विवाह-विवेके)

इस तरह आपस में सलाह कर के कुसुमकुमारी बसन्त को एक सजे हुए कमरे में ले गई, जो इत्रों और फूलों की उमदा खुशबू से भरा हुआ था और कई साजमिले हुए करीने से एक तरफ़ रक्खे हुए थे;

वहां जाकर उसने बड़े प्यार से बसन्तकुमार को मसनद पर बैठाया और उसके बगल में खुद बैठकर यों कहा,—"अब कहो, प्यारे! गान्धर्व-विवाह में किन किन चीज़ों की ज़रूरत हुआ करती है?"

बसन्तकुमार ने मुस्कुराकर कहा,—"केवल पवित्र मन और सत्य वचन की!"

कुसुम,—"बस, इतना ही!"

बसन्त,—"हां, इतना ही; यह बड़ा उत्तम विवाह है और पुराने समय में इसका बहुत प्रचार था; पर समय के फेर से इस देश की जहां और और बातें जाती रहीं, वहां इस विवाह का भी चलन बन्द होगया। मुसलमानों का निकाह और अङ्गरेज़ों का ब्याह इसी गान्धर्व विवाह की कुछ कुछ नकल है। इस विवाह में वर्ष, अयन, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, लग्न, मुहूर्त आदि किसी की भी आवश्यकता नहीं पड़ती और इसी विवाह के लिये महर्षियों का वचन है कि 'विवाहः सार्वकालिकः'।"

यह सुन कुसुमकुमारी बहुत ही खुश हुई और कहने लगी,—"तो, प्यारे! पवित्र मन और सत्य वचन की तो न तुम्हारे ही पास कमी है, न हमारे पास,—परन्तु फिर भी आपस में अंगूठी और माला की बदलौवल भी मैं किया चाहती हूं।"

यों कहकर उसने एक बक्स खोलकर उसके अन्दर से एक हीरे की

दो बेशकीमत मानिक की अँगूठियां निकालकर बसंत के आगे रख दी और फिर फूल की मालाओं का चँगेर उसके आगे सरकाकर कहा,—"अब ब्याह होजाना चाहिए।"

यह सुनकर बसन्त ने एक माला अपने गले में डाल और एक अंगूठी खुद पहिरकर कुसुम से कहा,—"अब तुम भी एक माला अपने गले में डालकर एक अंगूठी पहिर लो।"

यह सुनकर कुसुम ने वैसाही किया, इसके बाद पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा, दीपक, अग्नि, ग्रह, नक्षत्र, वायु, आकाश, दशदिग्पाल और परमेश्वर को साक्षी मानकर आपस में अँगूठी और माला बदल करली; अर्थात् बसन्त ने अपने गले की माला कुसुम के गले मे डाल कर अपनी अँगुली की अँगूठी उसकी अँगुली में पहिराई और कुसुम ने अपनी माला बसन्त के गले में डालकर अपनी अँगुली की अँगूठी उसकी अँगुली में पहिराई। फिर श्रीगणेशजी का नाम लेकर उन दोनों में से प्रत्येक ने यों कहा,—

बसन्त,—"लो, प्यारी! तुम मेरी पत्नी हुई?"

कुसुम,—"हां, प्यारे! धर्म की साक्षी मानकर मैं तुम्हारी इस क्षण से धर्मपत्नी हुई और तुम मेरे प्यारे पति हुए।"

बसन्त ने कहा,—"और मैं भी धर्म की साक्षी मानकर इस घड़ी से तुम्हारा प्रिय पति हुआ और तुम्हें मैंने अपनी प्यारी पत्नी बनाया।"

इसके बाद उनदोनों ने एक दूसरे को अपने हृदय से लगाकर कपोलों का बड़े प्रेम से चुम्बन किया।"

फिर कुसुम ने बसत के साथ एक ही थाल में भोजन किया और कुछ गाने-बजाने के अनन्तर दोनों प्रेमी चटक चाँदनी में रँगीली सेज पर जा बिराजे।

बस, इसके आगे हमें और कुछ लिखने का, या पाठकों को सुनने का अधिकार नहीं है; इसलिये हम अपने प्रेमी पाठकों के साथ कुसुम के शयनमंदिर से बाहर निकलते हैं और अपने पाठकों को यह बात समझाए देते हैं कि आज के पहिले कुसुम और बसन्त में सिवाय पवित्र प्रेम और पाक मुहब्बत के, स्त्री-पुरुष का सा सरोकार नहीं हुआ था, जैसा कि आज हुआ।

अस्तु, अब हम अपने रसीले पाठकों को आगे की रहस्यमयी घटना का हाल सुनावेंगे।

तेईसवां परिच्छेद.

यह क्या ?

"साधौ सदैव साधुत्वं, शठे शाठ्यं समाचरेत् ।
ये कुर्वन्ति यथा कर्म, भुञ्जन्ते ते फलं तथा ॥
(व्यासः)

यह बात हम ऊपर लिख आए हैं कि बसन्तकुमार के मारनेवाले करीमबख्स और झगरू उस्ताद की गिरफ़्तारी के लिये वारंट निकाला गया गया था। बसन्त कुमार के आराम हो जाने पर भैरोसिंह एक महीने की छुट्टी लेकर अपने घर गया। उसका घर आरे ज़िले के बक्सर कस्बे में था। लोगों ने तो जाना कि भैरोसिंह घर गया, पर, नहीं, वह घर न जाकर किसी दूसरी ही धुन में कहीं पर अँटक गया। पन्द्रह दिन के बाद एक दिन वह चुपचाप आधी रात के समय कुसुम के बाग की दीवार लाँघकर अपने को अँधेरी रात की स्याह चादर से छिपाए हुए धीरे धीरे उस कमरे की दीवार से जा चिपका, जिधर सायबान के नीचे कुसुम अपने प्यारे के साथ लेटी हुई धीरे धीरे प्यार की बातें कर रही थी।

भैरोसिंह को उम्मैद न थी, कि वह इतनी रात तक कुसुम को जागती हुई पावेगा, पर उसके भाग्य से अभी तक कुसुम जाग रही थी। भैरोसिंह चाहता तो तभी उससे मिल लेता, पर किसी ख़ास वजह से वह इस तरह चोर की भांति छिपकर आया था कि सिवाय कुसुम के और किसीका सामना करना उसे मंजूर न था; और यदि केवल बसन्तकुमार ही जागता हो, ऐसा न था, वरन एक खवासिन कुसुम का पैर दाब रही थी और दूसरी फ़राशी पंखा चला रही थी। यही कारण था कि भैरोसिंह कुसुम के आगे न जा सका। वह खड़ा खड़ा उकता रहा था, जिसकी उतावली से यह साफ़ ज़ाहिर होता था कि इस वक़्त वह अपने बहुमूल्य समय में से एक पलभर भी नहीं बर्बाद कर सकता।

निदान, आधे घंटे के अंदर पैर दाबने वाली खवासिन ने छुट्टी पाई और पंखेवाली अपनी जोड़ीदारिन को जगाने चली गई। इस समय बसन्तकुमार को नींद आ गई थी और कुसुम की भी आंखें ढपी जाती थीं। इसी अवसर में भैरोसिंह ने जाकर कुसुम के कान में धीरे से कहा,—"भैरोसिंह!"

यह सुनते ही कुसुम चिहुंक उठी, और कुछ बोला ही चाहती थी कि भैरोसिंह ने झुककर धीरे से कान में कहा,—"चुप रहिए, बहुत ज़रूरी बात है, ज़रा चुपचाप धीरे से उठकर अकेले में चलिए।"

कुसुम भैरोसिंह की कहां तक क़दर करती थी, या भैरोसिंह कुसुम को कैसा मानता था, यह बात हम ऊपर के परिच्छेदों में लिख आए हैं। इसी सबब से भैरोसिंह का इशारा पाते ही कुसुम धीरे से उठ बैठी और बोली,—"ऐसा है तो तुम हम्मामवाली कोठरी में चलो, मैं अभी आई।"

यह सुनकर वह उस ओर चला गया, और कुसुम धीरे से पलग के नीचे उतरी, पर बसन्त को नींद ने ऐसा चाँपा था कि उसे कुसुम का उठना न जान पड़ा।

इतने ही में पंखा खैंचनेवाली दूसरी मज़दूरनी भी आ पहुंची, उसे देख कुसुम बोली कि "तू पंखा हांक, मैं ज़रूरी काम से निपट कर अभी आती हूं।" और फिर वह हम्माम-घर में पहुंची।

फिर पाव घंटे तक भैरोसिंह ने कुसुम के साथ क्या क्या बातें कीं, यह तो समय पर मालूम होही जायगा, पर उस समय ज़ाहिरा तौर से देखने में यही आया कि कुसुम घबराई हुई बसन्तकुमार की सेज के पास पहुंची और चट-पट उन्हें जगाकर अपने साथ लिये हुई उसी हम्मामवाली कोठरी में पहुंची। उन दोनो के पहुंचने पर भैरोसिंह ने हम्माम-घर का दर्वाज़ा भीतर से लगा लिया और फिर मोमबत्ती जलाकर उस कोठरी के बीचोबीच जो हौज़ बना हुआ था, उसकी टोंटी को ऐसे ज़ोर से ऊपर खैंचा कि कोठरी के संगमर्मर के फर्शवाली एक चौखूंटी पटिया हलकी आवाज़ के साथ नीचे की ओर झूल गई और उसमें उतर जाने लायक सीढ़ियां नज़र आईं। तब भैरोसिंह ने उन दोनों को उतर जाने का इशारा किया और जब वे दोनो उसके अन्दर चले गए, तब भैरोसिंह ने उस टोंटी को भरज़ोर नीचे की ओर दबाया जिससे सीढ़ीवाली, अर्थात् सुरंगवाली पटिया ज्यों की त्यों बराबर होगई।

चौबीसवां परिच्छेद.

और फिर यह क्या !!!

" खला विवेकहीनाश्च, कुर्वन्ति मलिनां कृतिम् ।
"तथैव विमलं कर्म, साधवः समदर्शिनः ॥
(व्यासः)

तब भैरोसिंह बत्ती बुझाकर हम्माम से बाहर हुआ और चारो ओर देखकर चुपचाप बाग़ की दीवार लांघकर बाहर हो गया ! यह सब हुआ, पर न तो किसी दाई चाकरों ने जाना कि मियां-बीबी किधर गायब हुए, और न यही जान पड़ा कि भैरोसिंह ने यह क्या किया, और क्यों जीते जी कुसुम और बसन्त को कब्र में ठूंस दिया ! ! !

कुसुम के बाग से निकलकर भैरोसिंह तेज़ी के साथ पैर बढ़ाता हुआ उस झाड़ी में पहुंचा, जहां पर एक दिन बसन्तकुमार मुर्दे की हालत में पाया गया था । वहां पर दस-बारह आदमी हर्बे-हथियारों से लैस बैठे हुए थे ।

भैरोसिंह के पहुंचते ही उन में से एक ने उठकर जल्दी से पूछा,-"कहो, सब ठीकठाक है न ? "

भैरोसिंह,—"आप जानते ही हैं कि भैरोसिंह जिस काम में पैर रखता है, उसमें नाकामयाब कभी होता ही नहीं । "

वही आदमी जिसने भैरोसिंह से अभी सवाल किया था, या जो इस गरोह का सर्दार मालूम होता था, बोला,-"तो तुम्हारा इनाम भी, जितना कहा गया है, उसका दूना मिलेगा,—मगर अभी नहीं; जब मैं उस पाजी लौंडे को मारकर कुसुम को अपने अड्डे पर लेआऊंगा, तब तुम्हारा इनाम दिया जायगा । "

भैरोसिंह,-"मगर, साहब ! आप अपने एकरार से ज़रा चूकते हैं । वादा तो यही न था, कि बाग़ में जाकर सब ठीक-ठीक ख़बर लाने और आप को वहां पहुंचा देने पर मैं दो हजार रुपए की थैली पाऊंगा ! "

सर्दार, 'ठीक है, मगर अब यह सलाह हमारे साथियों की

हुई है कि उस परीजमाल के पाने पर तुम्हारा इनाम दुचन्द, यानी चार हज़ार रुपए दिए जायं; लिहाज़ा अब तुम वहांका हाल मुख़्तसर तौर पर बयान करके आगे बढ़ो और हम लोग तुम्हारे पीछे चलें।"

भैरोसिंह,—"मगर साहब! यह तो अच्छी बात नहीं है! क्यों कि आपने जो वादा किया है, उसी पर आप कायम रहिए। बस, दो हज़ार की थैली तो आप अभी मेरे हवाले करिए, और अगर फिर आप दो हज़ार और दिया चाहें, जैसा कि अभी आपने दुचंद इनाम की बात कही है, तो वह, न हो तो पीछे ही देदीजियेगा।"

सर्दार,—"मगर, पेश्तर तो हम कुछ न देंगे।"

भैरोसिंह,—"तो फिर आप काम निकल जाने पर पीछे से क्या देंगे?"

सर्दार,—"नहीं, नहीं; उसके लिये वादा करते हैं।"

भैरोसिंह,—"और इसके लिये भी तो वादा ही न किया था?"

सर्दार,—(झल्लाकर) "तो, तुम अपना काम करोगे, या नहीं?"

भैरोसिंह,— (हंसी रोककर) "अपना या आपका?"

सर्दार,—"चे खुश! मज़ाक रहने दो और यह कहो, कि वहां का क्या हाल है? क्यों कि दो बजा ही चाहते हैं; बस, यही मौका है, देर करने से काम न चलेगा।"

भैरोसिंह,—"मगर देर तो आप खुद कर रहे हैं! बस, हमारे दो हज़ार रुपये आप हमारे हाथ रखिए और चलकर फ़तहयाबी हासिल करिए!"

निदान, जब भैरोसिंह उसकी बात में न आया, तब सर्दार ने अछता-पछता-कर दो हज़ार का तोड़ा उसके हवाले किया।

तोड़े को अपने कंधे पर रखकर भैरोसिंह ने कहा,—"बस, अब आप लोग सन्नाटा मारे और तेज़ी के साथ कदम बढ़ाते हुए मेरे पीछे-पीछे चले आइए।"

यों कहकर वह आगे बढ़ा और उसके पीछे बारह-तेरह हथियारबंद चले। बाग के पिछवाड़े पहुंच कर उसने ऐसी तेज़ी के साथ तोड़े को उछाला कि वह उछल कर बाग की चारदीवारी के अन्दर कीचड़ में जाकर छप्प से गिर गया। फिर कमंद लगा कर वह बाग के अन्दर गया और उसके बाद एक एक कर के सब के

सब बाग के भीतर पहुंच गए।

उन सभोंको लिये हुए भैरोसिंह ने उसी हम्माम-घर में जाकर भीतर से दर्वाज़ा बंद कर लिया और कहा,—"क्या आपलोग समझ सकते हैं कि यहां पर मैं आपलोगों को क्यों लाया हूं ?"

उन सभोंमें से उसी सर्दार ने कहा, जिसके साथ अभी थोड़ी देर पहिले भैरोसिंह की बात-चीत हुई थी,—"यही तो हम भी पूछा चाहते थे!"

भैरोसिंह,—"तो सुनिये, यहां पर एक तहखाना है और कुसुम की सारी दौलत, याने ज़र व जवाहिर यहीं पर हैं; सो उन्हें भी ले ही लेना चाहिए।"

यह कहकर उसने पहिले की भांति हौज की टोंटी खैंचकर सुरंग का रास्ता खोला और फिर मोमबत्ती लिये हुए सबसे पहिले वह उसमें घुसा।

उसे उतरते देख सर्दार ने कहा,—"मगर, भैरोसिंह!"

भैरोसिंह,—"घबराइए मत, बेखौफ चले आइए; अगर मैं दग़ा करूं तो आप फ़ौरन मुझे मारडालियेगा; क्योंकि मैं अकेला हूं और आप इतने जने हैं फिर आगा-पीछा क्यों करते हैं!"

यह सुनकर फिर तो भैरोसिंह के पीछे एक एक करके सब के सब उस सुरंग में उतर गए और सबके उतने पर भैरोसिंह ने नीचे एक चौखूटी कोठरी में पहुंचकर न जाने कौन सा खटका दबाया कि सुरंग का दर्वाज़ा खट्ट से बंद होगया!

सर्दार ने कहा,—"एं, यह क्या हुआ ?"

भैरोसिंह,—"डर क्या है ? मैं तो अकेला हूं और आपके साथ इतने आदमी हैं!"

सर्दार,—(उसे रोककर) "यह नहीं, अब यह बतलाओ कि वे ज़रो-जवाहर कहां हैं ?"

भैरोसिंह,—"ज़रा इस मोमबत्ती को लीजिए।" (यह कहकर सर्दार के हाथ में उसने मोमबत्ती दे दी और कहा—) यह एक छोटा सा अजायबघर है:! भला, आप बतला सकते हैं कि इस कोठरी में दूसरी राह कहां पर है ?"

सर्दार—(चारोंओर अच्छी तरह देखकर) "एं यह तो संगीन स्याह पत्थरों से बनी हुई मजबूत दीवार मालूम होती है और इसमें

जिधर से मैं उतरा हूं, उसे छोड़ और कोई दूसरी राह नहीं दिखलाई देती ! ”

भैरोसिंह,—“मगर, नहीं; यहीं पर वह खज़ाना है ! अच्छा, मैं उसे खोलता हूं, आप ज़रा मोमबत्ती-वाला हाथ ऊंचा करिए ! ”

यह सुन सर्दार ने हाथ ऊंचा किया और भैरोसिंह ने न जाने कौन सा खटका दबाया कि सुरंगवाली सीढ़ी के दर्वाज़े के ठीक सामनेवाली दीवार का एक पटिया हल्की आवाज़ के साथ भीतर जा रही और फुर्ती के साथ भैरोसिंह उसके अन्दर कूद गया। उसके कूदते ही वह पटिया ज्यों की त्यों बंद हो गई और सर्दार साहब अपने गरोह के साथ मोमबत्ती लिये हुए जहां के तहां ही खड़े रह गए ! ! !

इस तरह बेईमान सर्दार और उसके साथियों को हम्माम वाली कोठरी में कैद कर के भैरोसिंह दूसरी राह से बाहर हुआ और कुसुमकुमारी के पास झूमता और गाता हुआ चला।——

(रागिनी बिहाग)

“ गुरु कों न मानै, गुरु-बन्धु हूं तें रारठानै,
निपट अमाने, मनमाने करैं मन मैं ।
मानै कुलदेव नाहिं, आन देव सनमानै,
अति भरमाने, लोक-लाज मेटि छन मैं ॥
बनत सयाने, तापै सार नाहिं जानै जानै,
नार घर आनै जे कुनार प्यार मन मैं ।
कुपढ़, कुजात, कुलबोरन, कसाई, क्रूर,
कायर, कलंकी, ते कपूत कलिजन मैं ॥ ”

पच्चीसवां परिच्छेद.

असामी गिरफ़्तार हुए !

" खलानां कण्टकानां च, द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभङ्गो वा, दूरतो वा विसर्जनम् ।"
(सुभाषिते)

इस परिच्छेद में हम भैरोसिंह की चालाकी का हाल खोलकर बहुत सी बातों के गुप्त भेद को बतला दिया चाहते हैं ।

सुबह के पांच बजे मजिष्ट्रेट साहब अपने दलबल सहित कुसुमकुमारी के बाग में दाखिल हुए । उस समय कुसुम, बसन्त, भैरोसिंह आदि सब लोग बाग में मौजूद थे । मजिष्ट्रेट साहब के सामने भैरोसिंह ने हम्माम की सुरंग का दर्वाज़ा खोलकर उसमें बंद किये हुए लोगों को गिरफ़्तार करवा दिया ।

बात की बात में वे सब बदमाश उस सुरंग में से निकाले जाकर बांध लिये गए और उन सभोंको बेड़ी-हथकड़ी डाल दी गई । फिर कुसुम की प्रार्थना पर कि, 'मेरा इज़हार यहीं ले लिया जाय'—और बाबू कुंवरसिंह के अनुरोध पर कि, 'यह लड़की इज़हार के लिये कचहरी तक न घसीटी जाय',—न्यायवान मजिष्ट्रेट साहब ने वहीं—बाग में—बैठकर सभोंका इज़हार लिया ।

सबसे पहिले भैरोसिंह ने इस प्रकार अपना इजहार दिया,—

"मेरा नाम भैरोसिंह, मेरे बाप का नाम हीरासिंह, मैं जाति का क्षत्री और रहनेवाला बक्सर का हूं । मैं मुद्दत से बीबी कुसुमकुमारी की मां की तावेदारी में रहता आता हूं और अब बीबी कुसुमकुमारी की ख़िदमत में हूं । उस दिन जिस दिन कि मैंने बाबू बसन्त कुमार को खोजने जाकर बाबा सिद्धनाथजी के पासवाली झाड़ी से निकल कर करीमबख़्श और झगरू को भागते देखा और उस झाड़ी के अंदर बाबू बसन्तकुमार को ज़ख़्मी और मुर्दे की हालत में पाया था; उसका हाल मैं हुज़ूर के इजलास में पहिले जब कि बाबू बसन्तकुमार के आराम होने पर उनका इजहार लिया गया था अर्ज़ कर चुका हूं

इसके बाद करीमबख्श और झगरू पर गिरफ्तारी का वारंट निकाला गया और सर्कार इष्ट इंडिया कंपनी और बीबी कुसुमकुमारी की ओर से मुजरिम के पकड़ने या पकड़ा देनेवाले को इनाम देने का इश्तिहार दिया गया। ईश्वर की दया से आज ये सारे (उंगली से दिखाकर) मुजरिम हुजूर के रूबरू हाज़िर हैं। इन्हें मैंने पकड़ा और गिरफ्तार करवाया है, इसलिये इष्ट इंडिया कम्पनी और बीबी कुसुमकुमारी के इश्तिहार के मुताबिक उस इनाम के पाने का मैं हकदार हूं।"

मजिस्ट्रेट,—"टुम किस टरह सबको पकड़ा ?"

भैरोसिंह,—"मुझे किसी तरह मालूम होगया था कि करीमबख़्श, झगरू वगैरह अपना दल बांध और भेस बदल कर डकैती करते फिरते और पुलिस की आंखों में धूल झोंकते हैं। तब मैं कुछ दिन की छुट्टी ले और घर जाने का बहाना कर इन लोगों से जा मिला और बीबी कुसुमकुमारी के यहांसे बेआबरू होकर निकाले जाने और उससे इस बात का बदला लेने की पट्टी पढ़ाकर इन सभोंको मैंने अपने ऊपर यकीन दिलाया। फिर इनके साथ दो बार डकैती करने भी मैं गया, पर धीरे से इन सभोंसे अलग होकर दोनों बार मैंने गांववालों को होशियार कर दिया और जब वे लोग इनके गरोह को पकड़ने के लिये छूटे तो इन सभोंके साथ भाग कर इन सभोंकी जानें भी मैंने बचाई, इस कार्रवाई से ये लोग मुझ पर विश्वास करनेलगे

"पीछे, धीरे धीरे इन सभोंका सारा भेद मुझे मालूम होगया। ये मियां करीमबख़्श बीबी कुसुमकुमारी पर आशिक हैं, और उनसे फिटकारे जाकर बाबू बसन्तकुमार को इन्होंने ही उस झाड़ी में अपने भरसक मार ही डाला था। और ये झगरू ओस्ताद हैं, ये भी बीबी कुसुमकुमारी से फिटकारे जाकर उनसे बड़ी खार रखते है। इन्होंने भी उस दिन बाबू बसन्तकुमार के मारने में करीमबख़्श की सहायता की थी। और ये सब इनके गरोहवाले बनारस, मिर्ज़ापुर और भोजपुर के छंटे हुए बदमाश हैं। इनमें से भी कई लोगों ने उस दिन बाबू बसन्तकुमार के मारने मे करीमबख़्श की मदद की थी।

"ये सब हाल मुझसे करीमबख़्श, झगरू और इन बदमाशों से मालूम हुए। फिर करीमबख़्श ने यह ख़ाहिश ज़ाहिर की कि, 'किसी तरह बसन्तकुमार को मार डालना और कुसुम को उड़ा लाकर उसको

इज़्ज़त बिगाड़ डालना चाहिए; फिर उसको भी खपा कर और एक जाली दस्तावेज़ बना कर उसकी कुल मिलकियत पर दावा करना कुछ कठिन न होगा।'

"इन लोगों की ऐसी नीयत जानकर कल रात को, जब कि बीबी कुसुमकुमारी अपने घर पर थीं, मैं इन सभोंको भुलावा देकर इस बाग में ले आया और फिर मैंने इन सभोंको हम्माम वाली कोठरी में बंद कर हुज़ूर को इत्तिला दी। बस, यही इन सभोंके बारे में मैं जानता हूं; इसके अलावे और कुछ नहीं जानता।"

मजिष्ट्रेट,—"वेल! भैरोसिंह! हम टुमारी कार्रवाई पर निहायट खुश हुआ। टुम बेशक कुल इनाम पावेगा।"

फिर कुसुम का इज़हार हुआ, उसने कल का रहना बाग में न बतला कर, घर पर बतलाया और इस मामले में अपने को सब तरह से अनजान बताया फिर भैरोसिंह की नमकहलाली, ईमानदारी आदि को सराहा और अपने इश्तिहार से दूने इनाम देने की ख़ाहिश ज़ाहिर की।

इसके अनन्तर बसन्तकुमार का इज़हार लिया गया। उसने उतनी ही बातें अपने इज़हार में कहीं, जितनी कि उसने पहिले अपने इज़हार में कही थीं।

फिर करीमबख़्श वगैरह का इज़हार लिया गया, जिसमें उन सभोंने अपना अपना कसूर कबूल किया और भैरोसिंह के इज़हार की कुल बातों की ताईद की। फिर करीमबख़्श ने भैरोसिंह को दो हज़ार रुपये की थैली देने और हम्माम में से एकाएक दूसरी सुरंग में जाकर भैरोसिंह के गायब होने की बात छेड़ी, पर भैरोसिंह के इनकार करने से मजिष्ट्रेट ने करीमबख़्श की बातों को निरी झूठी समझा, इसलिये दो हज़ार रुपये भैरोसिंह के पेट मे ही रह गए और उस अजायब-घर की अनूठी बात भी दबी ही रह गई।

निदान, फिर तो मजिष्ट्रेट साहब ने सब असामियों को कचहरी में चलान किया और अपने इजलास में बैठकर उनका फैसला किया।

करीमबख़्श और झगरू जन्मभर के लिये काले पानी भेजे गए और उनके सब साथी सात सात बरस के लिये जेल में ठूंसे गए। भैरोसिंह ने सरकार से और कुसुम से भी अपने इनाम के कुल रुपये पाए

छब्बीसवां परिच्छेद.
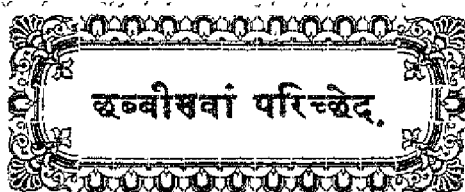
यह लड़की देवी है!

" महानुभावा मृदुलस्वभावा,
साध्वी सदाचाररता मनोज्ञा।
शुचिर्विनीता मितभाषिणी या,
शान्ता सुशीला गृहिणी हि देवी ॥"

(भामिनी-भूषणे)

उसी दिन दो पहर के समय, जब कुसुमकुमारी खाने पीने से छुट्टी पाकर अपने बाग-वाले कमरे में बसंत कुमार के साथ बैठी-बैठी गप्प हांक रही थी, एक टहलनी ने आकर खबर दी कि,—"भैरोसिंह हाज़िर हैं।"

यह सुन कुसुम और बसंत, दोनों करीने से बैठ गए और तब भैरोसिंह के हाज़िर होने का हुक्म दिया गया।

यहां पर इतना हमारे पाठकों को और समझ रखना चाहिए कि इस हम्माम-वाली सुरंग का हाल कल के पहिले कुसुम को कुछ भी मालूम नहीं था। बस, इसी भेद के बतलाने और वहांसे चुप-चाप कुसुम को टाल देने के लिये ही भैरोसिंह कुसुम से अकेले में मिला था और उसने उसे उस हम्माम में ले जाकर वहांकी सुरंग का सारा भेद बतलाया था, जिसे उस समय के पहिले कुसुम कुछ भी नहीं जानती थी। फिर भैरोसिंह ने उन पाजियों को उसी सुरंग में फांस कर के खुद सुरंग से बाहर निकल और बाग के सब नौकर-चाकरों को बटोर कर बहुतों को कुसुम के घर भेज दिया और बाकी लोगोंको यह समझा दिया था कि, 'कोई भी आज को रात को कुसुम का यहां रहना या यहांसे यकायक गायब होना किसी पर ज़ाहिर न करे।' इन सब कामों से छुट्टी पाकर पहिले उसने बाबू कुंवरसिंह से इस वार्दात या खुशखबरी की खबर की थी और वहांसे साहब मजिस्ट्रेट के नाम की चिट्ठी

लेकर, जिसमें यह लिखा हुआ था कि, 'यह लड़की कचहरी तक न घसीटी जाय,' साहबमजिष्ट्रेट से मिलकर इस अमर की इत्तिला की थी और साहब के आने के साथ ही साथ कुसुम और बसंत को भी बाग में लाकर मौजूद रक्खा था।

भैरोसिंह ने आते ही कुसुम के आगे दो हज़ार की थैली, जो कि कीचड़ में लथपथ थी, पटक दी और कहा,—"मुझे क्या हुक्म है?"

कुसुम ने इज्ज़त के साथ भैरोसिंह को बैठाया और कहा,— "मैंने बहुत सी बातों का भेद जानने के लिये इस निराले और फ़ुर्सत के वक्त तुम्हें बुलाया है। और सुनो—आज से तुम मेरे यहांकी नौकरी से आज़ाद किए गए। सो, अब से तुम्हें बराबर घर बैठे एक रुपए रोज मिला करेंगे।"

भैरोसिंह,—" मगर, मुझे घर बैठना मंजूर नहीं है, इसलिये अगर आपकी इतनी मेहरबानी है तो मेरेलिये यह हुक्म दिया जाय कि मैं चुपचाप बैठा बैठा आप लोगों की हिफ़ाज़त किया करूं और आपके यहांके सब नौकर-चाकरों पर नज़र रक्खूं।"

कुसुम,—" अगर तुम्हारी ऐसी ही ख़ाहिश है तो मुझे यह बात मंजूर है। अच्छा, अब पहिली बात तो यह है कि कीचड़ में लथपथ यह तोड़ा कैसा है?"

इस पर भैरोसिंह ने करीमबख़्श से उसके पाने का सारा हाल कहकर यों कहा,—"उस हरामज़ादे. बेईमान, पाजी, सूअर के बच्चे से मैंने इतना ठग लिया तो क्या पाप किया? मगर अब यह आपके आगे है, इसलिये आप जो चाहें, सो करें।"

कुसुम,—" तो मैं जो कहूंगी, सो मानोगे?"

भैरोसिंह,-" बेशक, बेशक, फ़र्माइए?"

कुसुम,-"तो सुनो-इनमें से एक हज़ार रुपए करीमबख़्श के घर वालों और एक हज़ार रुपए झगरू उस्ताद के बाल-बच्चों को तुम दे डालो, क्योंकि तुम्हें नारायण बहुत कुछ देगा।"

भैरोसिंह,-"मैं आपसे क़सम खाकर कहता हूं कि यही बात मैंने उससे रुपये ठगतीबार सोच ली थी, सोई आपने भी हुक्म दिया बस पैसा ही किया "

[illegible] क्यों कि [illegible]

और झगरू के घरवालों के लिये दो हज़ार रुपये मैं अपने पास से दूंगी; और हां ! तुम उन बेचारों के घर-द्वार की दशा की भी जांच करो, जो सात-सात बरस के लिये कैद हुए हैं ; अगर उनके घर में कोई कमाई करनेवाला न हो तो उनके नातेदारों से यों कहदो कि जबतक वे कैद से न छूटेंगे, तबतक उन कमबख्तों के वारिसों की परवरिश यहांसे बराबर होती रहेगी । "

भैरोसिंह,—"मगर, ये ठगों के रुपये मैं नहीं लूंगा ।"

कुसुम,—"अच्छी बात है, इन्हें तुम उन दोनों के घरवालों को दे दो, फिर मैं तुम्हें समझा दूंगी । "

भैरोसिंह,—" तो क्या आप मुझे अपने पास से इसके बदले में कुछ दिया चाहती हैं ? "

कुसुम,—"हां; फिर ? तुम इसमें उज्र करनेवाले कौन हो ? "

भैरोसिंह,—"मगर, हुजूर ! यह बात भैरोसिंह की शान के खिलाफ़ है ! "

कुसुम,—(मुस्कुराकर) "रंडी के नौकर की शान ही क्या !"

यह बात यद्यपि कुसुम ने साधारण भाव से कही थी, पर भैरोसिंह के कलेजे में मानो वह तीर सी जाकर लगी ! वह बोला तो कुछ भी नहीं, पर उस वीर आदमी की आंखें पसीज आईं ।

यह देख कुसुम बहुत ही शर्माई और बोली,—"भैरोसिंह ! तुमने मुझे बेटी की तरह खिलाया है और उसी तरह मानते भी हो, इस लिये अगर मेरे मुंह से तुम्हारी शान में कोई बात खोटी निकल गई हो तो उसे अपनी लड़की की नादानी समझ कर उस पर कुछ ख़याल न करो ।"

अहा ! यह सुनते ही भैरोसिंह का चेहरा खिल उठा और उसने मन ही मन यों कहा कि, 'यह लड़की देवी है !'

इसके बाद उस दिन नावक्त हो जाने के सबब भैरोसिंह को कुसुमकुमारी ने बिदा कर दिया ।

फिर तो वे रुपये करीमबख्श और झगरू के घरवालों को दे दिये गए और कुसुम ने भैरोसिंह को उन रुपयों के एवज में कुछ न दिया क्यों कि वह कुछ भी लेना नहीं चाहता था ।

सत्ताईसवां परिच्छेद.

अजायब-घर।

"दृष्टं निर्माण-नैपुण्य-प्राचुर्य-परमर्द्धिमत्।
रमणीयतरं रम्यं, महाश्चर्यमयं गृहम्॥"

[वास्तु-विनोदे]

फिर दूसरे दिन दो पहर के बाद, जब कुसुमकुमारी और बसन्तकुमार भोजन आदि से छुट्टी पाकर अपने कमरे में बैठे तो भैरोसिंह की बुलाहट हुई और उस के आने पर कुसुमकुमारी ने कहा,—

मैं यह जानना चाहती हूं कि परसों रात को मेरा यहां पर का रहना तुमने क्यों छिपाया था?"

भैरोसिंह,—"इसीलिये कि जिसमें मुकद्में में किसी तरह का खलल न पड़े। इसके अलावे और कोई बात न थी।"

कुसुम,—"और सुरंग की बात तुमने बड़े मज़े में उड़ा दी!"

भैरोसिंह,—"सोचिये तो सही कि जो बात आजतक खुद आप पर ज़ाहिर नहीं हुई थी, वह दूसरों पर ज़ाहिर कैसे की जाती? इसी लिये उन बेईमानों को उल्लू बनाया गया, और इसीसे रुपये की बात भी उड़ा दी जा सकी।"

कुसुम,—"मगर जो कहीं, मजिस्टर साहब इस सुरंग का भेद जानना चाहते, तो?"

भैरोसिंह,—"साहबलोग ऐसे ओछे दिल के आदमी नहीं होते कि छिछोरों की तरह बात की जड़ खोदने लगें! और अगर वे देखना ही चाहते तो फकत सुरंग तक मैं उन्हें ले आता और जहां उन पाजियों को मैंने कैद किया था, वहीं तक साहब को दिखाकर राह बताता।"

कुसुम,—"अच्छा, मैं इस वक्त तुम्हारे साथ उस अजायबघर की सैर किया चाहती हूं और यह जानना चाहती हूं कि यह सुरंग कब बनी और इसका भेद कौन कौन लोग जानते हैं?"

भैरोसिंह इसके भेद जाननेवालों में से अब फकत मैं ही ज़िन्दा [illegible] जानेंगे और यह कब बनी इसका

हाल मैं फिर किसी समय अर्ज़ करूंगा। अच्छा तो अब आप उसकी सैर करने चलें !"

फिर तो कुसुम और बसन्त को साथ लिये हुए भैरोसिंह उस हम्माम में पहुंचा और अन्दर से उस घर का दर्वाज़ा बन्द करके उसने मोमबत्ती जलाई।

वह कोठरी बीस फुट लम्बी और उतनी ही चौड़ी (चौखूंटी) पत्थरों से बनी हुई थी और उसके ऊपर गुम्बज बना हुआ था। उसके बीचोबीच कोठरी के चौथाई हिस्से में एक गोल हौज बना हुआ था और एक ओर दीवार में छोटा सा जल भरने का टांका बना हुआ था, जिसमें जल भरने से वह भीतर ही भीतर उस हौजवाली टोंटी के रास्ते से हौज में भर जाता और यदि उस टोंटी में हज़ारा लगा दिया जाता तो सारी कोठरी में उसकी धारा गिरती और कोठरी का पानी मोरी के रास्ते से बाहर निकल जाता। हां, यदि हौज का पानी साफ़ करना होता तो उलच उलच कर वह निकाला जाता। बस, इतना हाल तो उस कोठरी या हम्माम का सब लोग जानते थे, मगर इसके अलावे वहां का और जो कुछ हाल था, वह नीचे लिखा जाता है।

उस टोंटी में एक ताला भी था, इसलिये जब तक वह ताला न खोल दिया जाता, टोंटी ऊपर को न खिचती और सुरंग का दर्वाज़ा भी न खुलता। उसी टोंटी में एक गोल छेद था, जिसमें ताली लगाई जाती थी और वह ताली भैरोसिंह के कब्ज़े में थी।

निदान, ताला खोलने पर टोंटी को ऊपर की तरफ़ खैंचते ही हम्माम के फर्श की एक संगमर्मर की पटिया हलकी आवाज़ के साथ नीचे झूलगई और सीढ़ियों से उतरकर तीनों आदमी उस स्याह पत्थर से बनी हुई चौकोर कोठरी में पहुंचे, जिसमें भैरोसिंह ने करीमबख़्श आदि को लाकर कैद किया था। जिस दर्वाज़े से वे लोग उस कोठरी में पहुंचे थे, वह दर्वाज़ा उत्तर की ओर, अर्थात् दक्खिन रुख का था।

उस कोठरी में पहुंच कर भैरोसिंह ने बसंतकुमार और कुसुम-कुमारी की ओर देखकर यों कहा,—

"देखिए, यद्यपि यह कोठरी स्याह पत्थरों से बनी हुई है और इसमें किसी ओर भी अभी कोई दर्वाज़े का निशान नहीं मालूम होता

मगर नहीं; इस कोठरी मे चारों ओर चार दर्वाज़े है। इनमें से एक यह दर्वाज़ा तो उत्तर की ओर हई है, जिधर से अभी हमलोग इस कोठरी में पहुंचे हैं बाकी के तीन दर्वाज़े तीन तरफ़ हैं। अच्छा अब इस दर्वाज़े को मैं बन्द कर दूं!"

यों कहकर भैरोंसिंह ने उस कोठरी के बीचो बीच एक पटिया पर ज़ोर से लात मारी, जिससे एक हलके तड़ाके की आवाज़ के साथ हम्मामवाली पटिया और उत्तर-ओर-वाले दर्वाज़े की पटिया खट्ट से बन्द होगई और तब यह नहीं जान पड़ता था कि यहां कहीं पर कोई दर्वाज़ा भी है!

भैरोंसिंह ने कहा,-"हां, यह बात मैं कह चुका हूं कि इस कोठरी मे चारों ओर चार दर्वाज़े है, जिनमें से एक दर्वाज़े से तो हमलोग इस कोठरी में आए ही हैं, बाकी तीन ओर एक एक दर्वाज़े और है। इनमें से सामने, अर्थात् दक्खिन ओर वाले दर्वाज़े से होकर आपके महल, अर्थात् सोनेवाले कमरे तक भीतर ही भीतर राह गई है। इसके अलावे अगलबगल जो दो दर्वाज़े हैं, उनमे से दहिनी ओर वाले दर्वाज़ों से इस बाग़ के कुंए के भीतर सुरंग गई है और बाईं ओर वाले दर्वाज़े से गांगी नदी के किनारे एक टीले पर बनी हुई एक नकली कब्र तक!"

ये सब हाल सुनकर कुसुमकुमारी और बसन्तकुमार के आनन्द, आश्चर्य और कौतुक का वारापार न रहा!

कुसुमकुमारी ने कहा,—"तो पहिले कुएं के ओर वाले दर्वाज़े को खोलो!"

यह सुन और "बहुत खूब" कहकर भैरोंसिंह ने पूरब ओर वाली दीवार के बीचोबीच ज़ोर से एक घूंसा मारा, जिससे वहांकी एक छोटी सी पटिया भीतर की ओर धंस गई और उसकी कार्नीस में एक गोल छेद नज़र आया! उस छेद में उसी ताली को डालकर भैरोंसिंह ने कल दबाई, जिससे एक तड़ाके की आवाज़ के साथ वहांकी पटिया हट गई और एक आदमी के घुसने लायक राह बन गई तब मोमबत्ती हाथ में लिये, रोशनी दिखलाता हुआ भैरोंसिंह आगे आगे चला और कुसुमकुमारी तथा बसन्तकुमार उसके पीछे पीछे। बीस कदम सीधे चलने पर एक सीढ़ियों का सिलसिला नज़र आया, जिसको तय करते हुए तीनों आदमी नीचे उतरने लगे।

तीस दर्जे सीढ़ियों के उतरने पर पानी मिला, जिसे देख भैरोसिंह ने कहा,— "बस, अब आगे जाना बेफायदे है। पर हां इतना आप जान लीजिए कि बराबर पानी ही में उतर जाने पर एक जञ्जीर मिलेगी, उसे खैंचने पर एक दर्वाज़ा खुल जायगा और उस रास्ते से कुए के अन्दर पहुंचना होगा, फिर वहां जाने पर दर्वाज़ा आप से आप बन्द हो जायगा। यदि कोई कुएं के अन्दर से यहां आना चाहे तो उसे भी कुएं के ओर वाली जञ्जीर को उसी तरह खैंचना चाहिए, जैसे कि इधर से जाने के समय खैंचना मैंने अभी बतलाया है।"

निदान, यह सब देख-सुन-कर वे सब उधर से वापस आकर उसी चौखूंटी कोठरी में पहुंचे और भैरोसिंह ने उधर का दर्वाज़ा उसी रीति से बन्द करके बाईं ओर, अर्थात् पच्छिम ओर वाला दर्वाज़ा भी उसी भांति खोला और सब कोई उसके अन्दर घुसे। कुछ दूर सीधे जाकर फिर कई बार दाहिने-बाएं घूमने पर सुरंग ख़तम हुई। तब भैरोसिंह ने वहांकी दीवार में भी घूंसे मारकर और छेद में ताली लगाकर उसी तरह एक राह पैदा की, जिस तरह का हाल ऊपर लिखा जा चुका है। दर्वाज़ा खुलते ही सीढ़ियां नज़र आईं और एक एक करके तीनों आदमी ऊपर चढ़ गए। ऊपर एक छोटी सी तंग कोठरी फ़कत दोही हाथ ऊंची थी। उसमें पहुंचकर बैठे बैठे भैरोसिंह ने छत में लटकती हुई एक जञ्जीर को झटका देकर खैंचा, जिससे एक पटाखे की सी आवाज़ हुई और साथ ही एक पत्थर की पटिया नीचे की तरफ़ झूल पड़ी, तब भैरोसिंह ने खड़े होकर उसके बाहर सिर निकाला।

वहां पर गांगीनदी के किनारे धोबी लोग कपड़े धोया करते थे। सो एक धोबी उसी टीले पर कपड़े फैलाकर एक इमली के पेड़ की छाया में बैठा हुआ था। बस, ज्यों ही उसने कब्र से मुंह निकालकर भैरोसिंह को बाहर की ओर झांकते देखा, त्यों हीं बड़े ज़ोर से चीख मार और टीले से लुढ़ककर वह नीचे नदी में जा गिरा! उसकी यह हालत देख उसकी जोरू भी दौड़ी, पर ज्यों ही कब्र से झांकते हुए भैरोसिंह पर उसकी नज़र पहुंची, त्यों ही उसकी भी बुरी दशा होगई अर्थात् वह भी चीख मारती हुई लुढ़ककर टीले के नीचे आ गिरी फिर तो वे दोनों ज़रा सम्हल और उठकर ऐसे

तेज़ी से शहर की ओर भागे कि उन दोनो ने अपने गधे, कपड़े और पुलाव की ओर ज़रा फिरकर भी न देखा ! यह तमाशा देखकर भैरोसिंह, कुसुमकुमारी और बसन्तकुमार हंसते-हंसते लौट गए ! फिर थोड़ी देर ठंढी हवा खा और निर्जन नदीतट की बहार देखकर कुसुम वहांसे हटकर बैठ गई। तब भैरोसिंह ने वहीं पर छत में लटकती हुई दूसरी जंज़ीर को ज़ोर से झटका देकर खैंचा, जिसके खैंचते ही खट्ट से पटिया अपने ठिकाने जा लगी।

फिर वहांसे लौटकर बसन्तकुमार ने भैरोसिंह की ओर देख-कर कहा,—"क्यों भाई ! यदि कोई बाहर से इस कब्र के अन्दर आया चाहे तो क्यों कर आ सकता है ?"

भैरोसिंह,—"उस कब्र में एक पत्थर का तक़िया खड़ा हुआ है, जिसकी जड़ में बराबर एक सीध में ग्यारह सूराख बने हुए हैं, उन्हींमें से एक ओर के तीसरे सूराख मे ताली लगाने से पटिया खुल जायगी। फिर भीतर आने पर जिस तरह से जंज़ीर खैंच कर मैंने पटिया को बंद किया है, वैसेही वह बंद की जायगी।"

निदान; फिर तीनो आदमी उस सुरंग से वापस आकर उसी तंग कोठरी में पहुंचे। तब भैरोसिंह ने उधर का दर्वाज़ा बंद कर के दक्खिन ओर वाला दर्वाज़ा खोला और तीनो उसके अंदर गए।

उसके भीतर जाते ही कुसुमकुमारी ने कहा,—"हां, सुनो तो भैरोसिंह ! ज़रा ठहरो; इधर से तो परसों रात को तुम्हारे बतलाने से हम दोनो अपने महल में पहुंच ही गए थे और फिर उन कम्बख़्तों को यहां फांसकर तुम भी वहां इसी राह से आगए थे ! बस, यह सुरंग तो मैं देख ही चुकी हूं, इसलिये अब लौटकर हम्माम की राह से ऊपर बाग़ में चलना चाहिये, क्यों कि बहुत देर होने, या इस सुरङ्ग की राह से महल तक चले जाने में बाग़ के दाई-चाकरों के जी में बड़ा भारी सन्देह होगा और अजब नहीं कि उन लोगों की कानाफूंसी से इस सुरङ्ग का भेद खुल पड़े !"

इस बात को भैरोसिंह और बसन्तकुमार ने पसन्द किया और फिर उस दर्वाज़े को बंद कर और सीढ़ी का दर्वाज़ा खोलकर सब कोई ऊपर हम्माम में आए, और वहां आकर भैरोसिंह ने हौज की टोंटी में ताला भरकर सुरंग का नामोनिशान गायब कर दिया ! फिर सब कोई बाहर आए और वह भेद दाई-चाकरों पर छिपाही रहा

हमारे पाठकों को याद होगा कि परसों रात को कुसुम और बसंत को भैरोंसिह ने उस सुरंग में पहुंचा और वहांका सारा भेद बतला कर उन्हें उसी रास्ते से घर रवाने किया था और फिर करीमबख़्श आदि को वहां ला और फांस कर वह (भैरोंसिह) खुद भी उस दक्खिन ओर वाली सुरंग के रास्ते से गाता हुआ कुसुमकुमारी के शयन-मन्दिर में पहुंच गया था और तड़के कुसुम और बसन्त को बाग में ले आया था।

कुसुम ने अपने नौकर-दाइयों को यों कहकर समझा दिया था कि,–'मैं डाकुओं के आने की ख़बर पाते ही चुपचाप इन (बसन्त) के साथ घर भाग गई थी, और सुबह बाग में आई थी, पर तुम लोग सब से यही कहना कि, ' कल रात को बीबी बाग मे न थीं, अपने घर थीं' इत्यादि।

पर हमारे प्यारे पाठकों ने उस दक्खिन ओर वाली सुरंग का हाल, जो कि कुसुम के महल तक भीतर ही भीतर गई थी, नहीं जाना है, इसलिये संक्षेप ही में उसका हाल लिख कर हम इस परिच्छेद को पूरा करते हैं,—

वह सुरंग भी कुछ दूरतक सीधी जाकर, फिर ज़रा ज़रा दहने-बाए घूमती हुई दूर तक चली गई थी, और जहां पर वह ख़तम हुई थी, वहीं पर की दीवार ठोंकने से एक पटिया हट जाती और उसके कुछ ऊपर दीवार में बन गए हुए एक छेद में ताली डालकर कल घुमाने से एक पटिया अलग सरक कर राह कर देती थी। उसके भीतर घुसने पर चक्करदार सीढ़ियों का सिलसिला ऊपर तक चला गया था। जहां पर जाकर ऊपर सीढ़ियां खतम हुई थीं, वहीं ऊपर वाली सीढ़ी में एक पीतल का मोर पच्ची किया हुआ था। उसकी आंख में ताली गड़ाकर ऐंठने से सामने की दीवार में की एक पटिया अलग होकर ज़मीन केअंदर धंस जाती और कुसुमकुमारी के शयन-गृह में जाने के लिये एक आलमारी मे राह बनाती थी। उस राह से शयनगृह में जाने पर दूसरी ओर उस आलमारी की ज़मीन में भी वैसा ही एक मोर बना था। बस उसकी आख मे भी वैसे हीं ताली गड़ाकर उलटी कल ऐंठने से खट्ट से पटिया निकल और दीवार से लगकर बेमालूम होजाती और फिर देखनेवालों का यही जान पड़ता कि यह आलमारी के मलवे और कुछ नहीं है
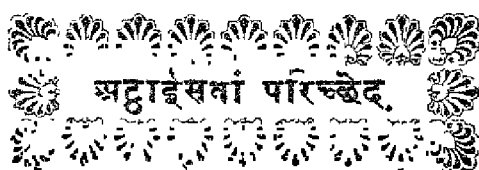
भैरोसिंह की जीवनी।

" दुःखाङ्गारकतीव्रः, संसारोऽयं महानसो गहनः।
इह विषयामृतलालस, मानसमार्जार मा निपत ॥"

(व्यासः)

रात को, आठ बजे के समय, जबकि कुसुम और बसन्त अपने कामों से निश्चिन्त होकर अकेले में बैठे हुए थे, भैरोसिंह बुलाए गए।

उनके आने पर कुसुम ने कहा,-"इस सुरंग के पोशीदा हाल के बयान करने का तुमने जो वादा किया था, उसको-"

भैरोसिंह ने कुसुम को रोककर कहा,—" पहिले इस हाल के कहने के, मैं आपसे इस बात की प्रतिज्ञा कराया चाहता हूंकि इस सुरंग के हाल सुनने पर, कई कारणों से, जिनका हाल कि आपको सुनने पर मालूम हो ही जायगा, आप मुझपर क्रोध, अश्रद्धा, या बुरा खयाल न करें!"

कुसुम,—(अचरज से)"क्या इसमें ऐसी भी बात है ? "

भैरोसिंह,—"हां है कुछ, तब तो प्रतिज्ञा कराने की ज़रूरत पड़ी!"

कुसुम,—"तो तुम निश्चय जानो कि अगर तुमने मेरे बाप को भी मार डाला होगा, तब भी मैं तुम पर उतनी ही मेहरबानी रक्खूंगी, जितनी कि इस वक़्त रखती हूं।"

भैरोसिंह,—"जी नहीं; यह सब कुछ नहीं है; पर बात यह है, कि मैं बड़ा पापी हूं, और सच तो यह है कि मैंने इस संसार में अपना जन्म व्यर्थ ही गवांया!"

इतना कहते कहते उसने एक लंबी सांस ली और फिर यों कहना प्रारंभ किया,-" मेरी उम्र इस समय लगभग सत्तर वर्ष के होगी. पर मैं मुश्किल से साठ बरस का जँचता हूं। इसका कारण यही है कि मैं चालीस बरस से संसार के भोग विलास को छोड़े

हुए हूं और अबतक कसरत करता जाता हूं। ”

कुसुम,—“ ऐसा !”

भैरोसिंह,—“जी हां,—सुनिए,—मैं जाति का क्षत्री तो अवश्य हूं, पर मेरा घर—द्वार इस संसार में सिवा आपकी ड्योढ़ी के, और कहीं नहीं है! लोगोंसे मैंने यह कह रक्खा है, इसीसे लोग यह जानते हैं, कि, 'मेरा घर लक्सर में है.' पर नहीं, इस संसार में मेरे खड़े होने लायक जगह, सिवा आपकी ड्योढ़ी के, कहीं भी नहीं है, और मेरे कुल—परिवार में सिवा मेरे, अब कोई भी नहीं बचा है, जो मरने पर मेरे नाम पर एक चुल्लू पानी भी देगा ! ”

इतना कहते कहते भैरोसिंह ने एक लम्बी सांस ली और फिर यों कहना प्रारम्भ किया,—“आप घबराइएगा मत, सुनिए,—आप का यह मकान, आपका बाग और आपके ये सारे गांव-इलाके आदि जो कुछ माल—मता है, वे सब मेरे ही हैं ! ”

इतना सुनते ही कुसुम बेतरह चिहुंक उठी, बसन्तकुमार के भी अचरज का कोई ठिकाना न रहा और कुसुम ने कहा,—“एं ! एं ! यह क्या बात है ? ”

भैरोसिंह ने कहा,—“घबराइए मत, सुनती चलिये ! आज से पचास वर्ष पहिले की बात मैं कहता हूं,—उस समय मेरी उम्र लगभग उन्नीस—बीस वर्ष के होगी ! जवानी की तरंगों में मेरे सारे गंठीले अंग जोश मार रहे थे, माता-पिता मेरे स्वर्ग सिधार चुके थे, मैं अपनी सारी सम्पत्ति का पूरा मालिक हो चुका था और मेरे सिर पर सिवा नारायण के, और उस समय कोई न था । यह मकान, इसकी सुरंग और बाग मेरे पिता ने अपनी जवानी के समय में बड़े शौक से बनवाया था और उन्होंने अपने मरने के थोड़े ही दिनों पहिले इस अजायब—घर के सारे भेद मुझे बतलाए थे । यही कारण है कि कल के पहिले इस संसार मे इस अजायब—घर का भेद [illegible] ला केवल मैं ही था और आज आप—दोनो साहबों

मरते दम तक मेरा असली भेद कोई न जानने पावै!"

इस पर कुसुम और बसन्त ने इस भेद के गुप्त रखने की कसम खाई, तब भैरोसिंह ने यों कहना प्रारम्भ किया,—"बाबू कुंवरसिंह मेरे बहुत ही करीबी रिश्तेदार हैं, पर अब उस रिश्ते की जड़-बुनियाद ही नहीं रही, इसलिये उस बात का गुप्त रखना ही अच्छा है। उन्होंने मुझे मेरे बुरे कामों से बहुत रोका, पर हाय! खोटी किस्मत ने उनकी भली बातें मुझे न मानने दीं।

"हां, बुरी सायत में चुन्नी से मेरी मुलाकात हुई! बाबू कुंवर सिंह के यहां किसी खुशी में बड़े धूमधाम से एक महफ़िल हुई थी, उसीमें न जाने कहां से चुन्नी रांड़ भी आ मरी थी! उस समय वह तेरह या चौदह बरस की निहायत ही हसीन नाज़नी थी और गाना भी उस समय उसका बड़ा ही आफ़त का था!

"निदान आंखें लड़ते ही मैं उसके हाथों बिना दाम ही बिक गया! उस समय मेरी ऐसी बुरी हालत थी कि जिसकी तस्वीर एक अनुभवी कवीश्वर ने बहुत ही सही यों खैंची है कि,—

"करे लरचौंहैं लोचन लोल। पै बिनहीं कछु किये खुटाई, मन बँधि गयो अमोल॥ छुटी लाज छुट्टे दिसि की जबहीं, बजे मदन के ढोल। रसिककिसोरी मधुरे बोलन, खुलि गई हिय की पोल॥"

"हां! फिर तो मैं ऐसा बेताब हुआ कि चुन्नी को महफ़िल में से सीधा अपने बाग़ में उड़ा लाया और लाकर मैंने अपनी दिली आग बुझाई! आप लोग मुझे क्षमा करिएगा, क्योंकि मैं इस समय अपने आपे में नहीं हूं!"

इतना कहकर भैरोसिंह ने अपना मुहं फेर लिया, क्योंकि उस समय उसकी आंखें कुछ पसीज आई थीं!

थोड़ी देर में उसने मुंह फेरा, तब कुसुम ने कहा,—"सुनिए,—यदि आपको कष्ट होता हो तो आप इस क़िस्से को यहीं पर रहने दीजिए, मैं नहीं सुनना चाहती! और सुनिए,—अब से मैं आपको "आप" कहकर पुकारूंगी, और अपना बाप समझूंगी; और ठीक इसीके अनुसार आप भी मुझे अपनी लड़की समझें और अबसे मुझे और इन्हें (बसन्त की ओर इशारा करके) बराबर "तुम" कहकर पुकारा करें।"

भैरोसिंह—अच्छी बात है, हां! सुनो फिर तो मैंने चुन्नी को

अपने पास नौकर रख लिया। उस समय घर में मेरी स्त्री थी, इस लिये मैंने बाग़ में चुन्नी को रक्खा और रात दिन मैं उसीको लिये पड़ा रहा करता! हा! कष्ट! इस सदमे को न सहकर वह मेरी सती स्त्री इस संसार से निरास होकर चल दी और उसीकी निरपराध आत्मा के शाप के कारण जो जो दुःख मैंने भोगे, उनका बखान मैं आगे करता हूं।

"निदान, उस समय तो मुझे अपनी सती स्त्री के मरने का कुछ भी शोक न हुआ, बरन मैंने यह समझा कि एक भारी बला सिर से टल गई! किन्तु हा! कष्ट!!!

"फिर तो मैंने चार-पांच बरस तक चुन्नी के साथ चैन से अपने दिन काटे! उसका फ़क़त एक चाचा, या न जाने कौन था, इस बीच में वह भी मर गया था; उसके अलावे चुन्नी का और कोई न था। तब मैंने समझ लिया कि बस, अब यह (चुन्नी) मुझे छोड़कर जीते दम तक कहां जा सकती है! किन्तु नहीं, वे लोग उल्लू ही नहीं, बल्कि उल्लू के दुम हैं, जो रंडी या सुरैतिनों पर विश्वास रखते हैं! खैर आगे सुनो—"

इतना कहकर भैरोसिंह थोड़ी देर के लिये ठहर गया और फिर यों कहने लगा,—"यह तो मैं ऊपर कही आया हूं कि मैं बाबू कुंवरसिंह का रिश्तेदार था और यही कारण था कि मेरे सबब से बाबू साहब की भी चुन्नी पर बड़ी कृपा रहती थी। उसी कृपा के कारण ही बाबूसाहब अभीतक तुम पर भी दया रखते आते हैं; अस्तु।"

इतना कहकर भैरोसिंह कुसुम के शयनागार में जाकर वहांसे एक लटकती हुई तस्वीर उतार लाया और उसे कुसुम के सामने रखकर बोला,—" भला, बतलाओ तो सही, इस तस्वीर से मेरी शक्ल कुछ भी मिलती है?"

कुसुम,—(गौर से उस तस्वीर और भैरोसिंह की ओर बार बार देखकर) " नहीं, ज़रा भी नहीं!"

भैरोसिंह,—" पर, नहीं; यह मेरी ही जवानी की तस्वीर है! किन्तु इससे मेरा चेहरा क्यों नहीं मिलता, यह हाल मैं अब कहूंगा। सुनो! पांच-चार बरस के बाद, जब कि, न मेरा ही कोई अपना जीता रहा, न चुन्नी ही का; तब उसने एक दिन मुझसे कहा कि,—' प्यारे! जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं मैं नारायण से यही मनाती हूं कि

तुम्हारे सामने ही हंसते-खेलते उठ जाऊं; किन्तु यह संसार है,-यदि मेरी बदकिस्मती से ऐसा न हुआ और मेरे सामने तुम्हीं को कुछ होगया, तब मुझे लोग झोंटा पकड़कर निकाल-बाहर करेंगे और मैं तुम्हारी प्यारी होकर दर-दर भीख मांगती फिरूंगी।'

"हा! उस पिशाची कम्बख्त ने ऐसे ढंग से आंखों में आंसू भर-कर ये बातें कहीं, कि मेरा दिल बेताब होगया और बिना कुछ सोचे-विचारे, मैंने अपनी सारी स्थावर और अस्थावर संपत्ति उसके नाम लिख दी। इस ख़बर को सुनकर बाबू कुंवरसिंह ने मुझे बहुत फट-कारा, पर उस समय उनका झिड़कना मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगा था।

"चुन्नी किस ज़ात की औरत थी, यह तो नारायण ही जाने, पर वह अपने को गन्धर्व-कन्या ही बतलाती थी; और अब मैं, जबकि सब हाल कहने ही पर बैठा हूं तो साफ़ ही यह भी क्यों न कह दूं कि मैं उसके साथ एक थाली में बैठकर खाता वो शराब-कबाब से भी परहेज नहीं रखता था! एक दिन आधीरात के समय, चुन्नी मुझे लिए हुए तुम्हारे शयनागार-वाली आलमारी की राह सुरंग में घुसी; क्योंकि उसे मैंने सुरंग का सारा भेद बतला दिया था और उस समय उसकी ताली भी उसी के हाथ में थी।

"यद्यपि मैं पूरे नशे के आलम में था और चुन्नी ज़रा भी नशे में नहीं थी,-ऐसा मैंने पीछे से अनुमान किया था;-पर फिर भी मैं अपने तईं बहुत कुछ होशियार समझता था; किन्तु हाय! चुन्नी ने बेशक रंडीपने के हक़ को पूरे तौर से अदा किया और मैं जन्मभर के लिये मुर्दों की फ़ेहरिस्त में दाखिल होगया!!!"

इतना कहते कहते भैरोंसिंह की आंखों से दो चार बूंद आंसू ढलक पड़े; यहां तक कि कुसुम और बसन्त की भी आंखें कोरी नहीं रहीं।

कुसुम ने कहा,—"बस कीजिए, क्यों कि मैं अब आगे यह दर्द-नाक किस्सा नहीं सुनना चाहती।"

भैरोंसिंह ने लंबी सांस खैंचकर कहा,—"नहीं, अब यह किस्सा उतार पर है, इसलिये इसे समाप्त ही करना चाहिए! हां, तो मुझे सुरङ्ग में छोड़कर झट से चुन्नी ने सीढ़ियों की राह ऊपर जाकर उसका दर्वाज़ा बंद कर लिया। थोड़ी देर तक तो मैं यह समझता रहा कि वह ऊपर किसी काम से गई है, या उसने मेरे साथ दिल्लगी की है,

पर जब कि पहर भर से ज़ियादह देर हुई, तब तो मेरा माथा ठनका कि ऐं ! इस हरामज़ादी ने मेरे साथ दग़ा तो नहीं की ! आखिर वही बात नज़र आई !

"कई घंटे के बाद सीढ़ी पर कुछ खटका हुआ, रौशनी भी नजर आई और साथ ही पांच-चार आदमियों के साथ चुन्नी सीढ़ी से उतरती हुई दिखलाई दी !

उसे देखते ही मैंने बिगड़कर कहा,—'क्यों, री ! हरामज़ादी ! इन ग़ैर शख्सों को तू क्यों इस सुरङ्ग में ले आई और किसलिये तूने इस सुरङ्ग का भेद अनजाने लोगों के आगे ज़ाहिर किया ? "

"बस, पहिले पहिल यही ऐसा मौक़ा पड़ा था कि मैंने चुन्नी को आंखें दिखलाईं और गालियां भी दीं । मगर, हाय ! चुन्नी ने मेरी बातों पर ज़रा मुसकुराकर उन पाँचों की ओर कुछ इशारा किया जिसे समझ चट पट उन हरामज़ादों ने लपककर मुझे बेकाबू करके बांध डाला और तब चुन्नी ने बरज़ोरी मेरे पेट में छुरा भोंक दिया ! "

इतना कहते कहते भैरोसिंह कांप उठा और अपना कलेजा थाम कर वहीं पर लेट गया ! कुसुम ने घबराकर और गुलाबपाश उठाकर उस पर छिड़कना प्रारम्भ किया, पर उसने इशारे से मना किया और फिर थोड़ी देर में अपना जी ठिकाने करके उठकर यों कहना प्रारम्भ किया,—

"हां, तो—उस हरामज़ादी ने मेरे पेट में छुरा भोंक दिया ! फिर क्या हुआ, यह तो मुझे नहीं मालूम,पर जब मैंने आँखें खोलीं तो 'एकवना' (१) के एक बाबाजी के मठ में एक खाटपर अपने तईं पड़े पाया !

"पूछने पर बाबाजी ने मुझसे यों कहा था,—'आज उस बात को छठां दिन है कि मैं बड़े तड़के गंगा स्नान करने गया, तो तुम्हें तीर पर लगे हुए पाया ! पहिले तो मैंने तुम्हें मुर्दा समझा था, पर जब पेट में छुरी लगी हुई देखी, तो मेरे जी में कुछ और ही ख़याल पैदा हुआ ! आखिर, किनारे पर सूखे में तुम्हारी लाश को

(१) यह आरे से तीन-चार मील उत्तर, गंगा किनारे, एक छोटासा गांव है

खींचकर मैंने जांच की तो तुममें जान पाई गई ! निदान, फिर तो मैंने एक बूटी लाकर और उसे पीसकर उसका रस तुम्हारे सारे बदन में लगाया, और उसी रस को किसी तरह तुम्हारे पेट में भी उतार दिया। फिर मैं तुम्हें इस मठ में ले आया और उसी प्रकार उस रस को बराबर लगाता और पिलाता रहा! योंही जब तीन चार-बार रस के लगाने, और पिलाने से तुम्हारा शरीर गर्म होगया और नाड़ी भी चलने लगी, तब श्रीरामजी का नाम लेकर मैंने तुम्हारे पेट में से छुरी निकाललो! और उसके निकालते ही उसी बूटी का रस घाव में खूब भरकर ऊपर से उसीकी लुगदी रख कर पट्टी बांधदी। धन्य हैं, रघुनाथजी कि आज छठें दिन तुमने आंखें खोलीं और अब तुम काल के गाल से बच गए; पर इस बूटी के रस के कारण तुम्हारा सारा बदन बिलकुल स्याह और कुरूप होगया है और असली आवाज़ भी शायद ज़रूर ही बदल गई होगी! अब यदि तुम्हारी मां भी तुम्हें देखेगी या तुम्हारी बोली सुनेगी तो तुम्हें न पहिचान सकेगी!'

"निदान, फिर तो मैंने बाबाजी के पूछने पर असल भेद को छिपाकर झूट-मूट छुरी खाने का हाल गढ़कर उन्हें सुना दिया और इस बात पर मैं बहुत ही खुश हुआ कि, 'अब मुझे देखकर संसार में कोई भी न पहिचानेगा!

"पांच-चार दिन और बाबाजी की मठिया में रहकर फिर मैं आरे में आया और यहां आकर एक अजीब तमाशा मैंने देखा!!! मैंने क्या देखा कि मेरी 'तेरहीं' की तयारी बड़े धूम-धाम से होरही है और चुन्नी ऐसी उदास, सुस्त और ग़मगीन मालूम पड़ती है कि मानों उसका ख़सम ही मर गया हो!!!

"निदान, तेरहीं के दिन हजार-पंद्रह सौ ब्राह्मणों ने मेरे नाम पर खूब सराह-सराहकर भोजन किए और चुन्नी ने बड़े हौसले के साथ अपने हाथ से मेरा सारा प्रेत-कर्म किया! मैंने अपनी शैय्या, जो मेरे पुरोहितजी को दान की गई थी, अपनी आंखों से देखी थी। कहने का तात्पर्य यह कि मेरे पारलौकिक कर्म में चुन्नी ने दस-पन्द्रह हज़ार रुपये लगाए थे और पुरोहितजी को मकान, जगह, ज़मीन, आदि देकर एक प्रकार से अयाची कर दिया था। तो ऐसा वह क्यों न करती; क्योंकि **मेरी लाखों की दौलत और मेरी हत्या के पचा जाने के लिये यदि**

उसने इतना किया तो बहुत मुनासिब ही किया। अगर इतना वह न करती तो शायद लोगों का खयाल कुछ और ही होता, पर चुन्नी की चालाकी से लोग उसकी बड़ाईही करते और कहते कि, 'जैसा इस रंडी ने अपने यार के लिये किया, वैसा कोई विवाहिता स्त्री भी अपने पति के लिये न करेगी!'

"मैने इस विषय में कुछ और रहस्य जानने के लिये उस समय लोगों से यों पूछा था कि,–'यह किसका त्रयोदशाह है,?'

इसपर हीरालाल नाम के मेरे ही मुनीब ने मुझसे यों कहा था,– "तुम शायद यहाके रहनेवाले नहीं हो!"

मै,—'जी नहीं।"

हीरालाल,—"तो सुनो! यह चुन्नी रंडी है। यह यहांके एक रईस और ज़िमीदार बाबू०००के पास नौकर थी। बाबूसाहब ने अपने कुल मे किसी को अपने माल का वाजिबी वारिस न समझकर अपनी सारी दौलत इसके नाम लिखदी थी; पर हाय! लिखापढ़ी होने के कई दिनों बाद यक-ब-यक बाबूसाहब हैज़े से मर गए!"

मैं,—(ताज्जुब से) 'वे कहां मरे? यहीं, या विदेश में?"

"यह बात मैंने इसलिये पूछी थी कि मुझे छुरी मारना या नदी मे बहाना तो कोई जानता ही नहीं; तो हो. न हो,—मेरे मरने की खबर किसी विचित्र ढंग से ज़ाहिर की गई होगी!"

हीरालाल ने कहा,—"नहीं, बाबूसाहब को रात के दो बजे हैज़ा हुआ, तीन बजते बजते वे मर गए, चार बजे उनकी लाश गंगा नदी के किनारे पहुंचाई गई और लोगोंके बहुत मना करने पर भी चुन्नी ने खुद अपने हाथ से उन्हें आग दी।"

यहां तक अपना हाल सुनाकर भैरोसिंह ने कुसुमकुमारी से यों कहा,—"सुना. तुमने? यह मज़ेदार खबर सुनकर मैं बड़ा घबराया कि मेरी दूसरी लाश कहांसे पैदा हुई! क्या इस नालायक पिशाची चुन्नी ने किसी और दूसरे बेगुनाह शख़्स को मारकर उसे मेरी लाश में शुमार कराके फूंक दिया! खैर।

फिर मैंने हीरालाल से पूछा,—"उन बाबूसाहब की लाश के साथ यहांके (इस शहर के) रईस और बाबू कुंवरसिंह भी थे?"

हीरालाल.—"जी नहीं. लाश के साथ हमलोगों (घर के नौकरों) के अलावे और कोई नहीं था। हमलोगों ने ज़रा देर करने के लिये

चुन्नीबाई से कहा था, पर उसने यह कहकर लाश फूंकने की जल्दी मचाई कि, 'मैं रंडी हूं, इसलिये अगर बाबू कुंवरसिंह या शहर के और रईसों को अभी खबर दी जायगी तो वे लोग ज़बर्दस्ती लाश को छीन लेंगे और मुझसे न फुंकवाकर ब्राह्मण के द्वारा इसे फुंकवावेंगे; पर मैं अपने प्राणनाथ की कपाल-क्रिया अपने हाथ से करूंगी। हाय! मैं उनके सर्वस्व की मालिकनी हुई, तो क्या उनके क्रिया-कर्म के करने से भी कभी हट सकती हूं!'

इतनी बात चुन्नी की कही हुई कहकर हीरालाल ने फिर यों कहा,—"अहा! ऐसी रंडी तो कहीं नहीं देखी! जिस दिन से बाबूसाहब मरे हैं, उसने सब कुछ त्यागकर अपने को जोगिन बना रक्खा है और इस क़दर वह बाबूसाहब के लिये रोती-पीटती रहती है कि अगर यही हाल उसका महीने-दो महीने रहा तो वह मर जायगी! उसकी ऐसी हालत देखकर बाबूकुंवरसिंह ने भी उसे बहुत समझाया और पीठ-पीछे उसकी बड़ाई कर कहा कि,—'चुन्नी ऐसी नेक रंडी इस ज़माने में दूसरी न होगी;' इत्यादि।

भैरोसिंह ने कुसुम से कहा,—"सुना, तुमने? उस हरामज़ादी ने कैसा जाल फैलाकर लोगों की समझ पर पर्दा और आंखों में धूल डाली थी!

"हा! इन सब विचित्र तमाशों ने मेरे दिल के साथ वह काम किया, जो नमक ज़ख़्म के साथ करता है! फिर तो मेरी यह इच्छा हुई कि अब कुछ दिन यहां रहकर चुन्नी का तमाशा देखना चाहिए कि वह कैसी कैसी चालाकियां खेलकर किस किस तरह संसार में अपना जाल फैलाती है!

"यह बात मुझे कई कारणों से लाचार होकर करनी पड़ी, जिनका हाल मैं आगे चलकर कहूंगा। निदान, हीरालाल की मदद से मैंने बड़ी आसानी से चुन्नी की ड्योढ़ीदारी हासिल कर ली और लोगों से अपनी जाति तो सही, अर्थात 'क्षत्री' बतलाई, पर नाम बदलकर भैरोसिंह बतलाया और यों कहा कि, 'मेरा घर बक्सर में है।' हा! अपनी ही नासमझी के कारण अपना सर्वस्व खोकर मुझे आज तक उसी हत्यारी की प्यादेगीरी करके अपना दिन काटना पड़ा, पर फिर भी मेरे पापी प्राण न निकले; इसलिये यह कौन कह सकता है कि यहां पद नरक नहीं है और अपने, किये हुए कर्मों का

फल यहां पर नहीं भोगना पड़ता ! "

कुसुम ने पूछा,—"मुझे बड़ा अचरज इस बात का है कि इस दुर्दशा के बाद भी आपने उस पापिन का मुहं कैसे देखा और क्योंकर इस दुःख के साथ इतने दिन काटे ! "

भैरोंसिंह,—"इसका भेद कुछ न पूछो ! यदि मैं चाहता तो उस हरामज़ादी को बात की बात में मार डालता, पर स्त्रीहत्या के डर से मैंने उसका फ़ैसला उसकी किस्मत के हवाले किया और इसलिये उसीकी ड्योढ़ीदारी कबूल की कि ज़रा इस संसार मे रहकर उस मज़े को भी तो चख लूं, जो मेरे-ऐसे अंधे ऐयाशों को चखने पड़ते हैं ! और साथ ही मैं इस बात का भी तो तज़र्बा हासिल करू, कि रंडी की क़ौम कहां तक वफ़ादार, नेक और दिली मुहब्बत-अदा करनेवाली होती है। पर साथ ही इसके, इतना तुम याद रक्खो कि यह भैरोंसिंह ही का कठोर कलेजा था कि जो अपनी छाती पर पहाड़ रखकर आज तक ज़िन्दा रहा है ! ! !"

कुसुम,—"क्या आपने उन कमबख्तों को भी फिर देखा, जिन हत्यारों ने सुरंग मे आपको बेकाबू करके चुन्नी के राक्षसी काम में सहायता पहुंचाई थी ? "

भैरोंसिंह—"सुनो, कहता हूं यह मैं अभी कह चुका हूं कि कई कारणों से मैंने उसी कम्बख्त की ड्योढ़ीदारी करके अपने कुकर्मों का प्रायश्चित्त करना प्रारंभ किया और अपनी तबीयत को एक दम फेर कर इस बात पर अपने को मजबूर किया कि, 'बस, अब जन्मभर अपने तईं छिपाकर इस हरामज़ादी का तमाशा देखना चाहिए !'

"यद्यपि मेरी सूरत और आवाज़ में बहुत फ़र्क आगया था, पर यदि मैं चाहता तो बात की बात मे बाबू कुंवरसिंह के आगे अपना सारा हाल खोलकर और बाबाजी की गवाही दिलवाकर चुन्नी की धज्जियां उड़वा देता, और अपनी मिलकियत को फिर से दखल कर लेता; पर बाबाजी की जड़ी के प्रताप से जैसे मेरे रूप, रंग और स्वर में फ़र्क होगया था, वैसे ही शायद मेरी तबीयत भी कुछ बदल गई होगी, तब तो मेरे चित्त ने यही कुबूल किया कि, 'अब अपने को मरा हुआ ही समझ कर ज़रा संसार का तमाशा देखना और किसी की बुराई के फ़ैसले का नारायण ही के हाथ सौंप देना चाहिये।"

कुसुम क्षमा कीजियेगा मैं यहा पर एक बात चाहती

हूं—और वह यह है कि 'एकवना' आरे से करीब ही है तो जब कि बाबाजी ने आपको नदी किनारे पाया था तो उन्हों ने आपको क्या पहिचाना न होगा ? "

भैरोंसिंह,—"नहीं, उन्होंने मुझे नहीं पहिचाना था। मुझे भी इस बात का अचरज है कि यद्यपि धन के गर्व और कुकर्म के कारण बाबा लोगों पर श्रद्धा न रहने के कारण मैं उन बाबाजी को नहीं जानता था, लेकिन बाबाजी तो मुझे जानते या पहिचानते होंगे ? पर नहीं; कदाचित् वे मुझे न पहिचानते हों, या उस समय उन्होंने इस बात पर कुछ ध्यान हीं न दिया हो ! और मुझे यह निश्चय है कि बाबाजी ने मुझे कदापि न पहिचाना होगा, क्योंकि मेरी तेरहीं के दिन वे बाबाजी भी अपनी जमात के साथ न्योते में आए थे और मेरे मरने पर बहुत अफ़सोस ज़ाहिर करके चुन्नी को उन्होंने ढाढ़स दिया था।

"हां, तो, मुझे जिन चार-पांच आदमियों ने बेकाबू करके चुन्नी की मदद की थी, उनमें से एक तो यही झगरू ओस्ताद था, जो अब कालेपानी की हवा खाने गया; और दूसरे उन चारों का पता भी मैंने पाया; पर कुछ दिन के बाद, और बड़ी बुरीहालत में जिसका हाल मैं आगे चलकर कहूंगा।"

कुसुम,—"एं ! उन बदमाशों में झगरू भी शामिल था ?"

भैरोंसिंह,—"केवल इतना ही नहीं, बरन पीछे तो मैंने यह जान लिया कि मेरी जान झगरू ही के कारण ली गई थी ! सबब इसका यह था कि वह फ़ाहिशा चुन्नी झगरू लौंडे पर आशिक होगई थी, और दोनों के प्यार में मैं कांटा था, इसीलिये मेरे पेट में छुरा भोंका गया था !

" पीछे जब मैंने उस कम्बख़्त की नौकरी करली, तब देखा कि वह मेरी ही दौलत से ऐयाशी करती और रात दिन उस साज़िन्दा के लौंडे (झगरू) को लिये पड़ी रहती है !

"निदान, फिर तो कुछ दिन के बाद चुन्नी खुल खेली और उसने कई उल्लू के पट्ठों को चूस-चास कर बर्बाद कर डाला और बहुत कुछ माल मता बटोरा; पर सच्चा प्यार उसका झगरू के साथ ही बराबर रहा! यद्यपि वह कई बड़े बड़े ज़िमींदारों के पास रही थी, पर उसका काम यही था कि तमाशबीनों को उल्लू बनाकर उनसे माल मसमा और झगरू के साथ ऐश करना ' प्राय बुकसही रण्डियों का

यही काम है कि अमीरों को बेवकूफ़ बनाकर उनसे तो माल ठगती हैं, और कमीने सपरदाइयों को माल चभा-चभा-कर उन्हींके साथ ऐश करती हैं! अस्तु।"

बसन्त,—"आपका कलेजा बेशक वज्र से बना हुआ होगा, तब तो आप चुन्नी की ऐसी हर्कत और बदचलनी देखकर भी जीते रहे!"

भैरोसिंह,—"मैंने सचमुच बहुत बर्दाश्त किया; और सच तो यह है कि इस तरह अपने कलेजे के खून को जला-जला-कर अपने कुकर्मों का जीते हो जी प्रायश्चित्त कर डाला कि जिसमें यमराज के यहां कुछ भोगना बाक़ी न रहै!

"चुन्नी के यहा रहने का मेरा सबसे बढ़कर मतलब यह था कि इस सुरंग की ताली मैं उस हरामज़ादी के पास से उड़ाकर अपने कब्ज़ों में कर लूं, जिसमें यह कंबख़्त इसके भेद को सारे शहर में न फैला सके, क्योंकि यह सुरंग मेरे पिता ने बड़े शौक से बनवाई थी और अपने मरने के समय इसके भेदों को मुझे बतलाकर उन्होंने इस बात को ताक़ीद कर दी थी कि,' इसका भेद ग़ैर या ऐसे-वैसे शख़्स से कभी न बतलाया जाय!' हाय! पिता की आज्ञा न मानकर जो मैंने इसके भेद को चुन्नी से कहा, उसीका यह नतीजा हुआ कि मैं जीते जी अपनी सम्पत्ति से दूर हो मुर्दों में दाखिल होगया!

"एक दिन मैंने रात के वक्त चुन्नी और झगरू मे हुज्जत होते सुनी! उसका मतलब यही था कि, 'झगरू तो उस सुरंग की सैर किया चाहता था और चुन्नी यह कहकर उसे भुलावा देती जाती थी कि,—'वह सुरंग बस वहीं तक तो हुई है, जहां उस मुए को तुम्हारे कहने से मैंने छुरी मारी थी!'

"निदान, चुन्नी और झगरू की बातों से यह बात मैंने समझ ली कि,' अभी तक चुन्नी ने झगरू को सारी सुरंग की सैर नहीं कराई है; पर मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ कि जिस चुन्नी ने झगरू के प्रेम में फंसकर मुझे मार डाला, उसने झगरू को सुरंग क्यों न दिखलाई! शायद इस डर से उसने झगरू को सुरंग न दिखलाई होगी कि, 'अगर झगरू इस सुरंग के सब भेदों को जान लेगा तो कहीं मुझे भी यह वैसा ही धोखा देकर मार न डाले, जैसे मैंने बाबू साहब को मार डाला है! बस, बस, यही बात होगी और इसी डर से चुन्नी ने झगरू को सुरंग न दिखलाई होगी

"बस फिर तो मैं इस फ़िक्र में लगा कि किसी ढब से सुरंग की ताली लेलेनी चाहिए! इसी कोशिश में कई महीने बीत गए, पर मेरी घात न लगी; क्योंकि न तो मैंने उस सुरंग की ताली ही चुन्नी के पास देखी और न कभी उसमें उसे जाते ही देखा! इसका यही सबब होगा कि वह झगरू से उस सुरंग को छिपाया चाहती हो।

"बसंत का मौसिम था, चुन्नी अपने (या मेरे!) बाग में अकेली थी और झगरू किसी काम से पटने गया हुआ था, इसलिये चुन्नी के पास वह मौजूद न था। बाग में दाई-चाकर उस दिन दो ही चार थे और माली भी छुट्टी लेकर उस दिन कहीं चला गया था! इस मौके को मैंने गनीमत समझा और मैं घात में लगा रहा कि आज सुरंग की ताली लेने की पूरी कोशिश की जाय और यों न बने तो उस हरामज़ादी चुन्नी की छाती पर चढ़ कर ज़बर्दस्ती उससे ताली लेली जाय; अगर इसमें चुन्नी को मार डालना भी पड़े तो कोई चिन्ता नहीं! पर मुझे यह सब कुछ भी न करना पड़ा और उसी दिन बड़ी आसानी से सुरंग की ताली मेरे हाथ लग गई!

"उस ताली की घात में तो मैं लगा ही हुआ था; सो, मैंने उस दिन चुन्नी के हाथ में सुरंग की ताली देखी और उस दिन उसके हाथ में ताली रहने का सबब भी समझ लिया! उस दिन बाग में बिल्कुल निराला था, झगरू भी न था, इसलिये आश्चर्य नहीं कि उसने सुरंग में जाने के लिये ताली अपने हाथ में ली हो और जाने का मौका ढूंढ रही हो! चाहे जो कुछ हो, पर इतने दिनों के बाद उस प्यारी ताली को देखकर मुझे बहुत खुशी हासिल हुई और मैंने उसके लेलेने के लिये अपनी घात लगाई!

"चुन्नी ने जल्द ब्यालू तयार करने के लिये रसोईदार से कहा, जिसका मतलब मैं समझ गया कि, 'यह फ़ाहिशा जल्दी जल्दी खाने पीने से फ़रागत हो, सबके सो जाने पर सुरंग में जानेवाली है!

"यह समझ कर मैंने किसी ढब से रसोईदार की आंख बचाकर आटे में एक बेहोशी की बुकनी डालदी और फिर अलग होकर चुन्नी की ताली पर घात लगाए रहा!

"ब्यालू तयार होने पर पहिले चुन्नी ने खाया, फिर सारे दाई-चाकरों ने खाया। मैंने अपनी ब्यालू ले और लोगों की आंख बचा-कर अपनी ... में उसे ... दिया और दबे पैर चुन्नी के सामनेवाले कमरे

की ओर मैं पहुंचा ! वहाँ जाकर क्या देखता हूं कि चुन्नी पलंग पर बेहोश पड़ी हुई है ! फिर तो मैंने एक एक करके सब नौकर-दाइयों को देखा और सभों को भरपूर बेहोश पाया। तब मैंने यह समझ कर कि, 'अब ये कंबख्त सुबह के पहिले कभी होश में न आवेंगे, चुन्नी के कमरे में जाकर उसके आंचल से सुरंग की ताली खोल ली और जगदीश्वर को इसके लिये कोटि-कोटि दंडवत् प्रणाम किया।

"जिस समय मैंने ताली अपने कब्ज़े में का थी, उस समय रात के बारह बजे थे। बस, चट मैं हम्माम में पहुंचा। रोशनी का सामान मेरे पास था, इसलिये भीतर जाकर मैंने मोमबत्ती जलाई और पहिले तुम्हारे इस शयनागार की ओर मैं आया और उस जगह खड़े होकर मैंने दो बूंद आंसू गिराए, जहां पर मेरे पेट में छुरी मारी गई थी ! फिर उधर के सब खटके और ताले बंद कर के और वहांसे वापस आकर मैं कुएं की ओर गया और उधर के भी सब खटके और ताले भरकर गांगी नदी की ओर-वाली सुरंग की ओर मैंने पैर बढ़ाया। किन्तु हा ! उधर की ओर का दर्वाज़ा खोलते ही ऐसी दुर्गन्धि आई कि मैं घबरा उठा और बड़े कष्ट से अपने तईं सम्हाल कर उधर की ओर चला।

"यद्यपि इस सुरंग में ऐसी कारीगरी की गई है कि इसमें बाहर से बराबर हवा आया-जाया करती है, पर खेद है कि यह बात पिताजी से न तो मैंने ही पूछी और न उन्होंने ही बतलाई ! पीछे मैंने इस बात के भेद जानने की बहुत कुछ कोशिश की, पर कुछ भी मेरी समझ में न आया !

"निदान, मैं रोशनी लिये हुए उस सुरंग के अंदर घुसा और आगे बढ़ता गया। ज्यों ज्यों मैं आगे बढ़ता गया, त्यों त्यों बदबू भी बढ़ती ही गई ! अन्त में मैंने आगे जाकर क्या देखा कि, 'तीन अभागों की लाशें वहां पर पड़ी हुई हैं !"

कुसुम,—"जान पड़ता है कि वे लाशें उन्हीं कंबख्तों की होंगी, जिन हत्यारों ने आपके ऊपर— — —"

भैरोसिंह,—"तुमने बहुत ठीक समझा ! मेरे ऊपर भगरू मिलाकर, पांच आदमी झपटे थे ! उनमें से एक तो चुन्नी का यार भगरू ही था, बाकी के चार आदमियों में से तीन की लाशें मैंने सुरंग में देखीं और चौथा आदमी, नहीं कि मार डालने बाद मेरी

लाश कहकर चिता पर फूंक दिया गया हो !"

कुसुम,—"आपने बहुत ही ठीक सोचा ! मेरी समझ में भी यही बात आती है !"

भैरोसिंह,—"यह सब देख कर उस समय मैं उस सुरंग से गांगी नदी के किनारे-वाले टीले की ओर निकल और एक एक करके उन तीनों नालायकों की लाशों को नदी में डाल और फिर उधर का भी ताला बंद करके बाहर ही बाहर बाग में वापस आया। उस समय रात के दो बज गए थे !

"पिछली रात के घोर सन्नाटे में बाग में आकर मैंने देखा कि, सब आदमी उसी भांति बेहोशी के आलम में पड़े हुए हैं ! उस समय दुष्टा चुन्नी को मार डालना मेरे लिये कुछ भी कठिन काम न था, पर उसका न्याय यमराज के लिये छोड़कर मैंने अपनी कोठरी में आकर सुरंग की ताली एक बहुत ही पोशीदा जगह में छिपा कर रख दी और खाट पर पड़ कर नींद का-बहाना किया; क्योंकि उस रात को मैं मुतलक नहीं सोया था !"

बसन्तकुमार ने कहा,—"सबेरे तो बड़ा मज़ा हुआ होगा !"

भैरोसिंह,—"बड़ी ही दिल्लगी हुई ! बड़े तड़के पांच बजे झगरू ओस्ताद ने बाग़ के फाटक पर आकर दर्वाज़ा खोलने के लिये खूब शोर मचाना शुरू किया, लेकिन उसकी पुकार सुनता ही कौन था ! यद्यपि मेरे रहने की कोठरी बाग के सदर फाटक के पास ही थी और उसदिन फाटक की रखवाली का भार मेरे ही ऊपर था, लेकिन जागते रहने पर भी मैंने न तो झगरू के शोरोगुल का कोई जवाब ही दिया और न उठकर फाटक ही खोला, क्योंकि मैंने तो नींद या बेहोशी का बहाना किया था न !

"खैर, एक घंटे तक योंही खूब शोरोगुल मचाकर और फिर बाग़ की दीवार लांघकर झगरू बाग के अन्दर आया और सभों को बेहोश देखकर उसने पहिले चुन्नी को जगाया। आध घंटे की कोशिश में चुन्नी की नींद या बेहोशी दूर हुई और उसके होशो-हवास दुरुस्त होने पर उन दोनों की आपस में जो कुछ बातचीत हुई, उसे मैंने छिपकर सुना।—

झगरू ने कहा,—"आज यह माजरा क्या है कि बाग के सारे आदमी बेहोश पड़े हुए हैं ?"

चुन्नी, (ताज्जुब से) "क्या कहा, तुमने ?"

झगरू,—"क्या, अभी तुम्हारी बेहोशी दूर नहीं हुई !"

चुन्नी,—"क्या मैं बेहोश होगई थी !"

झगरू,—"यह तो तुम्हीं जानो, और फ़कत तुम्हीं बेहोश हुई हो, सो भी नहीं है; यहां तो सारे दाई-चाकर बेहोश पड़े हुए हैं !"

चुन्नी,—(ताज्जुब से) "ऐसा !"

झगरू,—"हां, ऐसा ! सुनो, मैं सुबह पाँच बजे के तड़के यहां आया, पर जब खूब गला फाड़ने और फाटक भड़भड़ाने पर भी किसीने दर्वाज़ा न खोला तो मैं बहुत ही हैरान हुआ और सोचने लगा कि यह क्या बात है ! आखिर बड़ी बड़ी मुश्किलों से मैं बाग की दीवार लांघकर अन्दर आया और आकर क्या देखता हूं, कि, 'बाग के अन्दर जितने औरत-मर्द हैं, वे सभी बेहोश पड़े हुए हैं !' यह तमाशा तुम खुद भी देख सकती हो, क्योंकि अभी मैं फ़कत तुम्हीं को होश में लाया हूं और बाकी सभी दाई-नौकर बेहोश पड़े हुए हैं !"

यह सुन और घबराकर चुन्नी उठ खड़ी हुई, पर अपने आंचल में अजायब-घर की ताली न देख फिर पलंग पर बैठ गई और झगरू से बोली,—"मेरे आँचल में हम्माम-घर की ताली बंधी हुई थी, सो क्या हुई !"

झगरू,—(मुह बिचकाकर) "यह तो तुम्हीं को मालूम होगा!"

चुन्नी,—(झल्लाकर) "बस, चुप रहो, चोचले रहने दो और यह बतलाओ कि ताली क्या हुई ?"

झगरू,—"वाह, तुम तो खूब बहॅकी-बहॅकी बातें कर रही हो!"

चुन्नी,—"बस, बस, बहुत हुआ; लाओ, मेरी ताली दो।"

झगरू,—"जान पड़ता है कि किसी शैतान ने तुम्हारे साथ पूरी ऐयारी की है और मेरी गैर-मौजूदगी में तुम-सभों को बेहोश करके हम्माम की ताली साफ़ उड़ा ली है ! ! !"

चुन्नी,—(ताव-पेच खाकर) "वह शैतान तुम्हीं हो और तुम्हीं ने चोट्टों की तरह बाग में आ और नींद में गाफ़िल बाग के सब आदमियों को यहां तक कि मुझे भी बेहोश कर के मेरे आंचल में से हम्माम की ताली चुराली है और अब बातें बना रहे हो !"

यह सुनकर झगरू भी मारे गुस्से के थर थर कांपने लगा और

बाला,—"यह तुम सरासर जुल्म करती हो, जो मुझे झूठा इल्ज़ाम लगाती हो! अजी, बी! मैं तो अभी, कुछ देर पहिले, बाग में आया हूं और यहां आकर और तुम सभों को बेहोश देखकर अभी सिर्फ़ तुम्हीं को होश में लाया हूं। ज़रूर, यह तुम्हारे किसी दुश्मन की ऐय्यारी है!"

चुन्नी-(खिजलाहट से) "सिवा तुम्हारे, इस ताली का भेद मालूम ही किसे है, जो इसके लेने के लिये ऐसी ऐय्यारी करता! बस, यह तुम्हारी ही कारस्तानी है, और जब मैंने तुम्हें रज़ामन्दी से ताली न दी तो तुमने इस कमीनेपन के ढंग से उसे लेलिया!"

झगरू,—"अबतो तुम बहुत ही अनाप सनाप बकने लगीं।"

चुन्नी,—"अभी तो मैं सिर्फ़ मुहं से ही कह रही हूं, लेकिन इतने पर भी जो तुम भलमन्सी से ताली न दोगे तो मैं तुम्हारे साथ बहुत ही बुरी तरह से पेश आऊंगी।"

झगरू,—"तो तू मेरा क्या करैगी, हरामज़ादी?"

"यह सुन और तेज़ी के साथ उठकर चुन्नी ने ऐसे ज़ोर से लात मारी कि झगरू पलंग के नीचे औंधे मुहं गिर पड़ा और उसके दो दांतों के टूट जाने से मुंह से खून बहने लगा। फिर सम्हल और उठकर उसने चाहा कि चुन्नी को उठाकर देमारे, पर चुन्नी ने झपट कर तल्वार खैंच ली और झगरू पर वार करना चाहा। यह देख वह कमीना वहां से ऐसी तेज़ी के साथ बाग के फाटक को खोलता हुआ भागा कि उसने पीछे फिर कर भी न देखा! अगर उस समय वह पीछे फिर कर देखता तो मेरी और उसकी ज़रूर ही चार आंखें हो जाती, क्योंकि उसके भागते ही मैं भी चुन्नी के कमरे की बगल वाला कोठरी में से, जहां पर छिपकर कि मैंने उन दोनों की बातें सुनी थीं—निकलकर तेज़ी के साथ अपनी कोठरी की तरफ आ रहा था। खैर, झगरू ने मुझे न देखा, यह अच्छाही हुआ और मैंने अपनी कोठरी में आकर फिर बेहोशी का स्वांग लिया!"

यह सुन और हंसकर कुसुमकुमारी ने कहा,—"अहा! कैसी अद्भुत महिमा है, उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कि उस परमात्मा ने उस समय झगरू को बाग में भेजकर ताली की सारी बला उसी पर डाली!"

भैरोसिंह,—बेशक, उस समय बाग में झगरू का आना

परमेश्वर का बड़ाभारी अनुग्रह ही समझना चाहिए ! यह तो मैंने कभी स्वपने में भी नहीं सोचा था कि उस समय ताली के झमेले में झगरू आपसे आप आ पड़ेगा और उस (ताली) के चुराने का कलङ्क उसीको लगेगा; परन्तु उस समय उसका आना और चुन्नी के साथ उसका झगड़ा होना—इसे परमात्मा की पूरी कृपा ही समझना चाहिए । ”

कुसुम,—“बेशक, बात ऐसी ही है । ”

भैरोसिंह कहने लगे,—“मैंने तो यह समझा था कि,'अब चुन्नी और झगरू की हमेशा के लिये खटक गई;' पर नहीं,—कमीनों में जैसे बहुत दिनों तक बनाव नहीं बना रहता, वैसेही उनमें मन-मोटाव भी बहुत दिनों तक कायम नहीं रहसकता। चुन्नी जैसी कमीनी औरत थी, झगरू भी वैसाही कमीना आदमी था, इस लिये उन दोनों का काम उन दोनों-बगैर न चला । पांच—छः महीने के बाद झगरू ने फिर आना—जाना शुरू किया और चुन्नी के साथ उसका फिर मेल-जोल होगया; पर यह बात नारायण ही जाने कि, चुन्नी के जी से ताली का मलाल कभी गया था, या नहीं; या इस बारे में झगरू की तरफ़ से उसका दिल साफ़ भी हुआ था, या नहीं ! ”

कुसुम,—“खैर, अब आगे का हाल कहिए कि फिर झगरू के चले जानेपर क्या हुआ ? ”

भैरोसिंह ने कहा,—“सुनो, कहताहूं,—झगरू के जाने के बाद थोड़ी देर तक तो मुझे सन्नाटा मालूम हुआ, इसके बाद ऐसा जान पड़ा, मानों चुन्नी—खुद मज़दूरिनों को जगा रही है ! फिर थोड़ी देर के बाद एक मज़दूरनी ने बाकी के नौकर-चाकरों को—और साथ ही मुझे भी—जगाया । ”

इसके बाद मेरी तलबी हुई और चुन्नी ने मुझसे पूछा,—“ तुम रात को कब सोए और कहां सोए ? ”

मैंने झूठ—मूठ यह जवाब दिया,—“बारह बजे रात तक मैं जागता और रामायण बांचता रहा । इसके बाद मैं फाटक के बगल वाली अपनी कोठरी में सोया । फिर क्या हुआ, यह मुझे नहीं मालूम ! हां इस वक्त रामकली मजूरनी ने मुझे जगाया और आपके पास

इस बाग में आया और उसने हम-सभों को बेहोश करके अपनी एक नाक़िस कार्रवाई की !"

मैंने अनजान बनकर पूछा,—"ऐसा ! तो क्या कोई वार्दात हुई है ?"

चुन्नी बोली,—"हां ऐसाही हुआ है ! झगरू ने रात को चुप चाप यहां आकर पहिले तो यहां के मौजूदा लोगों को बेहोशी की दवा सुंघाकर बेहोश किया, इसके बाद मेरे आंचल में से हम्माम की ताली चुराकर सुबह को मुझे होश कराया। उसके साथ मेरी तकरार हो गई है, इस लिये तुम्हें यह हुक्म दिया जाता है कि वह आज से मेरी ड्योढ़ी पर न चढ़ने पावे !"

"इसपर मैंने-"बहुत खूब" कहकर छुट्टी पाई और वापस आकर अपने तईं दूसरे काम में मशगूल किया। झगरू के साथ उसके ताल्लुक छुटने की बात सुनकर उस समय तो मुझे बड़ी खुशी हासिल हुई थी, मगर वह खुशी चन्दरोज़ा थी और कई महीने बाद झगरू के साथ वह फाहिशा फिर घी-खिचड़ी की तरह मिल गई थी !"

कुसुम ने पूछा,—"इसके बाद फिर क्या हुआ ?"

भैरोसिंह ने कहा,—"फिर यह हुआ कि चुन्नी ने उस सुरंग के खोलने के लिये हज़ार सिर पटका, लेकिन फिर उसका दर्वाजा नहीं ही खुला। यहां तक कि अखीर में वह डूब कर मर भी गई, पर सुरंग के खुलने का सुख फिर उसे उसकी जिन्दगी में कभी नसीब न हुआ !"

कुसुम,—"फिर क्या हुआ ?"

भैरोसिंह,—"फिर तो मैं बाबा तुलसीदास की रामायण पढ़ा करता और जब यहां जी घबराता, तो घर (बक्सर) जाने का बहाना करके छुट्टी लेकर काशी, मथुरा, वृन्दावन आदि की सैर कर आया करता था।"

कुसुम,—"बेशक, आप मुझे अपनी बेटी ही की तरह प्यार करते और खिलाते-पिलाते थे।"

भैरोसिंह ने कहा,—"बेशक, बात ऐसीही है; सचमुच मैं तुम्हें बहुत प्यार करता था। इसीसे जब से तुम्हें चुन्नी लाई तबसे मेरा चित्त तुम्हारी ओर ऐसा खिंच गया कि मैं रात दिन तुम्हें [

करता; यहां तक कि बरसों बक्सर जाने का नाम भी न लेता।"

कुसुम,—"और कभी कभी तो मैं भी आपको कहीं नहीं जाने देती थी!"

भैरोंसिंह,—"हां यह ठीक है धन्य है, जगदीश्वर, कि चुन्नी डूब कर मर गई और झगरू कालेपानी गया! पापियों ने अपने अपने पापों का उचित दण्ड हाथों हाथ पाया और मैं,—न जाने किस लिये—अभी तक जीता बचरहा हूं! न मालूम, अभी मेरे भाग्य में क्या क्या भोग भोगना बदा है!"

कुसुम,—"आपका असली नाम क्या है?"

भैरोंसिंह,—"देख लो, मेरी तस्वीर के नीचे लिखा हुआ है।"

यह सुन और तस्वीर उठाकर कुसुम ने पढ़ा; उसमें लिखा था,—

"कुंवर मोतीसिंह।"

फिर कुसुम ने पूछा,—"और आपके पूज्य पिताजी का नाम?"

भैरोंसिंहने कहा,—"कुंवर हीरासिंह।"

कुसुम,—"ऐं! यही नाम तो आपने गवाही देती बार भी बतलाया था?"

भैरोंसिंह,—"हां! यही नाम बतलाया था। भला, मैंने अपना नाम बदल डाला तो क्या बाप का भी नाम बदल डालता! फिर उसके बदलने की आवश्यकता ही क्या थी, क्योंकि हीरासिंह के नाम लेने से किसीका खयाल दूसरी ओर नहीं गया था।"

इसके बाद भैरोंसिंह ने सुरंग की ताली कुसुम को देकर कहा,—"इस सुरङ्ग का भेद तो मैंने तुम-दोनों को बतला ही दिया है, इसलिये अब इस सुरङ्ग की ताली तुम अपने पास बहुत हिफ़ाज़त के साथ रखना और सुरङ्ग का हाल किसी ग़ैर शख़्स पर ज़ाहिर न करना।"

रात अधिक होगई थी, इसलिये भैरोंसिंह उठकर चले गए और कुसुम भी बसन्त का हाथ पकड़े हुए पलंग पर जा लेटी। पर हमें मालूम है कि उस रात को कुसुम और बसन्त की आंखों में नींद ने भूल कर भी पैर नहीं रक्खा था और दोनो ने भैरोंसिंह की अवस्था पर अफ़सोस करते करते ही सवेरा कर दिया था!
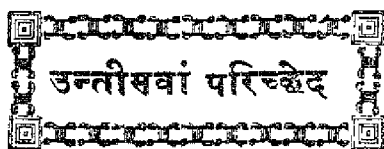
उन्तीसवां परिच्छेद

कुसुमकुमारी की इच्छा.

"कियती पञ्चसहस्री, कियती लक्षाप्यकोटिरपि कियती ।
औदार्योन्नतमनसां, रत्नवती वसुमती कियती ॥"

(नीति-रत्नाञ्जलिः)

भैरोसिंह की विचित्र जीवनी ने कुसुम के सुकुमार कलेजे पर बड़ा भारी असर पहुंचाया था ! उसने बसन्त के साथ रातभर इसी बात का थोल-मट्ठा करके यह निश्चय किया था कि, 'अब यह सारी सम्पत्ति, जो क धर्मतः भैरोसिंह ही की है और जिसे राक्षसी चुन्नी ने बहुत ही री तरह से लेलिया था, दे देनी चाहिए ।'

इस पर बसन्तकुमार ने उससे यों पूछा था,—" तो फिर म्हारा गुजारा क्योंकर होगा ? "

कुसुम.—"क्यों ? तुम हो कि नहीं ? अब तो मैं तुम्हारी बियाहता ही हूं; इस लिये अबसे मेरे खाने-कपड़े का बंदोबस्त तुमको करना ाहिए । "

बसन्त,—"सो तो ठीक है, लेकिन अभी बिलफेल तो मेरे पास छ भी नहीं है ! मेरी हालत ऐसी बुरी है कि मैं एक दिन तुम्हें साग त्तू भी नहीं खिला सकता, और न मेरे पास बित्ता भर ज़मीन ही कि जहां पर मैं तुम्हें लेजाकर खड़ी करूंगा ! तुमने तो अभी मेरा रा पूरा हाल भी नहीं सुना है ! "

कुसुम,—"सुनने का वक्त ही कब मिला ? और अभी मेरी जीवनी ा भी तो आख़िरी हिस्सा बाक़ी है ।—ख़ैर अगर कुछ न होगा तो ह तो हो सकता है कि मैं नाच-गा-कर अपने गुज़ारे लायक कुछ पैदा र लूंगी, क्योंकि जब मैं रंडी के घर पली हो हूं, तब फ़कत नाचने गाने क्या बुराई है ? "

बसन्त,—(मुस्कुराकर) "मगर साथ ही उसके, उस पेशे में छ और भी तो करना पड़ता है "

कुसुम (चिढ़कर) "तुम्हारा सिर करना पड़ता है! क्या बिना पाप के बोझ उठाए, फ़क़त गाना बजाना नहीं होसकता ?"

बसन्त,—(हँसकर) "हो क्यों नहीं सकता; लेकिन फ़क़त गाना सुनने लोग क्यों आवेंगे ? और अगर कोई आवेगा, तो तुम्हें कुछ और भी करना पड़ेगा !"

कुसुम,—"(चिढ़कर) "ख़ैर, मुझे जो कुछ करना पड़ेगा, उसे मैं खुशी से कर लूंगी और तुम आंख मूंद कर अपनी जोरू की कमाई खाया करना ! क्यो ? अब तो ठीक हुआ न !"

बसन्त,—(हँसकर)"इसमें ठीक या बेठीक की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि मैं तो अव्वल दर्जे का बेहया हूं, इसलिये मैं सब कुछ खा सकता हूं।"

कुसुम,—"आज तुम्हारे होश ठिकाने हैं, या नहीं।"

बसन्त,—" भला, तुम्हारे ऐसी नशीली चीज़ पाकर मेरा होश कभी—ठिकाने रह सकता है !"

कुसुम यह सुनकर हँस पड़ी और बोली,—"बस, बस: मैंने समझ लिया कि आज तुम इतना मज़ाक क्यों कर रहे हो !"

बसन्त,—"क्या समझ लिया !"

कुसुम,—"यही कि आज भैरोसिंह के दर्दनाक किस्से ने मेरे दिल को बहुत ही परीशान कर रक्खा है।"

बसन्त,-(हँसकर) "नहीं, जी ! तुम मेरा दिली मतलब ज़रा न समझीं ! अजी, अब तो मैं तुम्हारा भँडुआ बनूंगा और नए नए——"

यह सुन कुसुम बहुतही झलाई, पर बसन्त ने अपनी छोड़-छाड़ बन्द न की। यह देख फिर तो कुसुम ने ऐसी त्योरी बदली कि बसन्तकुमार मुस्कुराकर चुप होगया। फिर आपस में यह सलाह ठहरी कि 'अब जो कुछ अपने सिरपड़ेगा, वह देखा जायगा; मगर भैरोंसिंह की सारी मिलकियत उन्हें लौटा ही देनी चाहिए; किन्तु यदि अपने इसे यों न ले तो उन्हें यह जबर्दस्ती दे देनी चाहिए।" इत्यादि।

तीसवां परिच्छेद.

भैरोसिंह की जीवनी का अन्त.

"संसार तव निस्सार-पदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥"

(सुभाषिते)

दूसरे दिन दो पहर के बाद, जब कुसुमकुमारी भोजन आदि से निश्चिन्त होकर अपने कमरे में बैठी और बसंतकुमार भी आगया तब भैरोसिंह बुलाए गए।

उनके आने पर थोड़ी देर तक तो सब कोई चुप रहे, फिर कुसुमकुमारी ने कहा,—"बाबा! आपने दिल के टुकड़े उड़ानेवाली अपनी जैसी जीवनी सुनाकर हमलोगों के कलेजे को मसल डाला है, यदि आप ध्यान देकर सुनेंगे तो मेरी भी जीवनी वैसी ही कलेजे की धज्जियां उड़ानेवाली प्रतीत होगी।"

इस पर भैरोसिंह ने सुनने का आग्रह किया, तब कुसुम ने अपनी जीवनी का पहिला हिस्सा, जो कि उसने बसन्तकुमार से कहा था, कह सुनाया। (१)

कुसुम की अद्भुत जीवनी के सुनते-सुनते बीचबीच में भैरोसिंह ने बड़ी बेचैनी के साथ कई बेर लंबी-लंबी सांसे लीं और चिहुंक चिहुंक कर अपने कलेजे पर पड़ती हुई चोट को बड़ी ही घबराहट के साथ सहा; और जब कुसुम की जीवनी का वह हिस्सा, जहां तक कि पहिले लिखा गया है, पूरा हुआ, तब भैरोसिंह ने उससे वह परचा और यंत्र भी लेकर देखा। देखते ही एक गहरी चीख मार कर वे बेसुध होकर वहीं गिर गए।

उनकी यह दशा देख कुसुम ने घबरा कर और उन पर गुलाब जल छिड़क कर पंखा झलना प्रारंभ किया।

थोड़ी देर में भैरोसिंह ने होश में आकर आंखें खोलीं और फिर बड़ी बड़ी कठिनाई से अपने जी को ठिकाने कर के उन्होंने कहा,—

---

(१) देखो परिच्छेद छठां और सातवां।

"बेटी कुसुम ! हा !—ईश्वर की कैसी अद्भुत लीला है ! जिन राजा कर्णसिंह की तू लड़की है; उनकी सहोदरा बड़ी बहिन ही मेरी सुशीला स्त्री थी। हा ! जगदीश्वर ! ! ! "

इतना सुनते ही कुसुम के दिल पर तो क्या बीती, यह तो वही जाने, पर बसन्तकुमार के चित्त पर भी बड़ा भारी खेद-रूपी पहाड़ टूट पड़ा। थोड़ी देर तक सबके सब चुप हो और रह-रह कर धर्ती, आकाश और एक दूसरे की ओर देखते रहे।

फिर कुसुम ने पूछा,—"क्या आप उस दुष्ट जगन्नाथी पंडे को जानते हैं ? "

भैरोसिंह,—"नहीं, हम उस कंबख्त को नहीं जानते; यदि जानते भी होते, तो भी अब कर ही क्या सकते हैं ? "

कुसुम,—"आजकल मेरे माता, पिता, छोटे भाई और बहिन राज़ी-खुशी हैं न ? "

भैरोसिंह,—(ताज्जुब से) "तुम्हें अपने छोटे भाई का हाल क्योंकर मालूम हुआ ? "

कुसुम,—"यह बात मैं पीछे कहूंगी; पहिले आप उन सभों का कुशल तो कहिए ? "

भैरोसिंह,—" जब वह शादी पक्की करने मैं गया था, तब उन सभों को मैंने मज़े में देखा था।"

कुसुम ने बसन्त की ओर देखकर कहा,—"तुमसे मैंने अपनी जीवनी के दूसरे हिस्से के कहने का वादा किया था, पर कई दैवी घटनाओं के कारण अभी तक उसके कहने की बारी नहीं आई थी; सो अब मैं फूफा-साहब के आगे उसे कह डालती हूं। "

यों कहकर उसने उठ कर भैरोसिंह के चरणों में अपना सिर रख दिया और आंखों में आंसु भरकर कहा,—"फूफाजी ! आज मैं सचमुच आपकी लड़की हुई, सो अब आप इस बात की प्रतिज्ञा करिए कि मुझे कभी न छोड़ेंगे और जो मैं कहूंगी, उसे अवश्य मान लेंगे।"

कुसुम को भैरोसिंह ने उठाकर बैठाया और कहा,—"बेटी ! इन बातों का फैसला पीछे होता रहेगा; अभी तुम अपनी जीवनी का अखीर हिस्सा तो कह सुनाओ। "

कुसुम ने कहा मैं अभी यह बात कह आई हूं कि बारहवें बरस में पैर रखते ही मैंने अकेले में एक दिन पंडे के दिए हुए उस

पुरज़े को पढ़कर अपना कुल हाल जान लिया था; और फिर मैंने अपने धर्म बचाने की जैसी प्रतिज्ञा की थी, और उसे जहां तक निबाहा, यह भी मैं कह चुकी हूं। अब इसके आगे सुनिए,—

भैरोसिंह,—"हां, तुम कहती चलो, मैं सुन रहा हूं।"

कुसुम,—"झगरू ही के कारण आपकी जान ली गई, ऐसा आपने कहा है। ठीक है, उसके साथ चुन्नी का जो कुछ खोटा बर्ताव था, यह भी मुझसे छिपा नहीं था; और न जाने क्यों, मैं उस पर बराबर अपनी नफ़रत ही ज़ाहिर करती रही। वह कंबख़्त रात दिन इसी उद्योग में लगा रहा कि, 'क्योंकर कोई गांठ का पूरा, आंख का अन्धा और मति का हीन उल्लू जाल मे फंसे कि गहरी रकम हाथ लगै!' और उसने तोड़-जोड़ लगाकर कई बार अच्छे-अच्छे असामी पक्के भी किए, पर अपने हाल जान लेने और अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहने के कारण वह या चुन्नी मेरे धर्म को न बिगाड़ सके। यद्यपि अपना भीतरी हाल या इच्छा मैंने चुन्नी पर नहीं ज़ाहिर की थी, और न उससे यही कहा था कि 'मैं अपना सारा हाल जान गई हूं;' पर बात यह थी कि जब मेरी सिरढँकाई की बात ज़ोर पकड़ती, तब किसी न किसी ढंग से अपने तईं ऐसी बीमार बना लेती कि महीनों खाट न छोड़ती; बस, इस बीच में सारा खेल खरमंडल हो जाता। चुन्नी पर मैंने यह बात भली भांति से प्रगट कर रक्खी थी कि, 'मैं अभी निहायत ही कमज़ोर, कमसिन और किसी काम के योग्य नहीं हूं।' इसके अलावे मन ही मन मैंने यह प्रतिज्ञा भी कर रक्खी थी कि, 'जब मैं देखूंगी कि अब किसी ढब से मेरा धर्म नहीं बच सकता, तो ज़हर खाकर अपनी जान देदूंगी।"

भैरोसिंह,—"हां! तो फिर?"

कुसुम,—"कहती हूं, जब मैं तेरह बरस की हुई थी, उसी साल बिहार के उन्हीं राजा (मेरे पिता) के लड़के (मेरे सहोदर भ्राता) की शादी में नाचने का बीड़ा मेरी मां ने लिया; क्योंकि वह तो मेरे या मेरे पिता के बारे में कुछ जानती ही न थी। क्योंकि अगर वह मेरा हाल कुछभी जानती होती तो वह हर्गिज़ वहांके बीड़ा लेने या वहां जाने का कभी सपने में भी इरादा न करती।"

भैरोसिंह,—"ऐसा?"

कुसुम,—"जी हां, ख़ैर, वहां जाने का नाम सुनकर मेरे ऊपर मानों

बिजली घहरा पड़ी ! मैंने मन ही मन सोचा कि हाय ! आज खोटी किस्मत ने यह दिन भी दिखलाया कि मैं अपने ही सगे भाई की शादी में नाचने जा रही हूं ! हे राम ! यह बात सुनते ही मेरी बुरी हालत हो गई और मैं मछली की तरह तड़पने लगी; पर साथ ही यह भी जी में आया कि चाहे जो हो, पर एक नज़र ज़रा अपने मा, बाप और भाई बहिन को तो देख लूं । ”

भैरोसिंह ने कांप कर कहा,—"बेटी, कुसुम ! बस करो, रहने दो; क्योंकि हमारे कलेजे में अब इतनी ताक़त नहीं रही है कि वह तुम्हारे इस दर्दनाक किस्से को सुन सके; हा !—"

इतना कहते कहते कुसुम और बसन्त के हज़ार रोकने पर भी वे न रुके और चले गए । कुसुम की जीवनी का सिलसिला भी यहीं पर रह गया और उसने बसन्त से यह कह कर अपने उस किस्से को उस समय बंद रक्खा कि, 'यह हाल फिर भैरोसिंह के सामने ही कहा जायगा ।'

रात को कुसुम ने भैरोसिंह को फिर बुलाया, पर उस समय उनका कहीं पता न लगा ।

दूसरे दिन, दो पहर तक जब भैरोसिंह अपनी कोठरी के बाहर न हुए और बाहर से लोगों के बहुत पुकारने पर भी जब भीतर से कुछ न बोले, तब लोगों ने घबरा कर इस बात की ख़बर कुसुम को पहुंचाई । यह सुनते ही बसंत को साथ लिये हुए कुसुम भैरोसिंह की कोठरी के पास आई और उसके आने पर भी जब बहुत कुछ पुकारने पर भीतर से भैरोसिंह ने कुछ जवाब न दिया, तब तो कुसुम का माथा ठनका । उसने तुरंत किवाड़ चिरवाया, और किवाड़ चिर जाने पर भीतर पलंग पर भैरोसिंह की लाश पाई गई !

हा ! उनकी यह दशा देखकर कुसुम के सुकुमार कलेजे पर कैसी चोट पहुंची होगी, इसके लिखने में हम असमर्थ हैं !

निदान, जब डाक्टर की जांच से यह साबित हुआ कि भैरोसिंह ने ज़हर खाकर अपनी जान देदी है, और प्राण को निकले दो पहर से भी ज़ियादह वक्त हो चुका है, तब फिर क्या हो सकता था ! बेचारी कुसुम ने रो-धोट-कर ब्राह्मण के द्वारा उनका विधि-पूर्वक संस्कार करवाया और उनके क्रिया-कर्म में इतना कुछ खर्च किया कि जितना उस सारी सम्पत्ति के असल मालिक भैरोसिंह के लिये

किया जाना उचित था।

क्रिया-कर्म के कामों से छुट्टी पाकर कुसुम ने भैरोंसिंह के नाम पर एक बड़ा भारी विष्णु-पंचायतन-मंदिर और तालाब बनवा कर दो हजार रुपये साल की ज़िमीदारी के साथ 'एकबना' के उन्हीं बाबाजी को भेंट कर दिया, जिन्होंने भैरोंसिंह की जान बचाई थी; पर बाबाजी इस बात या भैरोंसिंह के असली भेद को तो जानते ही न थे, इसलिये एकाएक इतनी संपत्ति के पाने से वे बहुत ही चकित हुए! केवल बाबाजी ही नहीं, वरन भैरोंसिंह का असली हाल कुसुम और बसंत के अलावे और कोई नहीं जानता था; क्योंकि जब उन लोगों में बातें होती, तब वहां पर किसीके रहने का हुक्म नहीं था। यही कारण था कि भैरोंसिंह के काम में इतना खर्च और ऐसी धूम देखकर लोग हैरान थे कि एक अदने प्यादे के कर्म में कुसुम ने लाख पचास हजार रुपये क्यों लगा दिए!!!

भैरोंसिंह के पलंग पर एक बंद लिफ़ाफ़ा कुसुम ने अपने नाम का पाया जिसे तुरंत खोलकर उसने पढ़ा और बसन्तकुमार को भी दिखलाया। उसमें यही लिखा था,—

"बेटी! कुसुम! तेरी जोयनी ने मेरे दिल के साथ वह काम किया कि जो ज़हरबुझी छुरी कलेजे के साथ करती है! खैर, मेरे पापरूपी जीवन का पर्दा इस भांति गिरेगा, यह कौन जानता था। मैं तेरी वह सलाह भी सुन चुका हूं, जो कि तूने मेरी सारी दौलत मुझे लौटा देने के बारे में बसन्तकुमार के साथ की थी; और इसीलिये मुझसे एक बात मानने की प्रतिज्ञा भी तू कराती थी; पर सुन, बेटी! आज मैंने अंत समय में अपने जी से तुझे अपनी सारी दौलत दान कर दी! तू मेरे लिये खेद मत करियो, ईश्वर करे, बसन्त के साथ, कुसुम! तेरा कभी वियोग न हो।

आशीर्वादक,—

भैरोंसिंह"

भैरोंसिंह के दुःख में महीनों तक कुसुम की बुरी दशा रही और सबसे बढ़ कर तो उसके दुःख का कारण यह था कि वह अपने ही को भैरोंसिंह की जान लेने का हेतु समझती थी

इकतीसवां परिच्छेद.

पिछला हाल।

"नन्दनजन्मा मधुपः, सुरतरु-कुसुमेषु पीतमकरन्दः।
दैवादवनिमुपेतः, कुटजे कुटजे समीहते वृत्तिम्।"

(काव्यसंग्रहे)

भैरोसिंह के परलोक सिधारने के दो महीने पीछे एक दिन बसन्तकुमार ने कुसुम से उसकी जीवनी के पिछले हिस्से के हालको पूछा, जो कि भैरोसिंह के सामने प्रारंभ होकर भी रुक गया था।

कुसुम ने कहा,—"सुनो, प्यारे! ठीक समय पर हम लोग यहां से कूच करके बिहार के उन राजा अर्थात् अपने पिता के घर पहुंचे। हाय! मैं नहीं कह सकती कि जब मैंने अपने बाप और भाई को देखा तो मेरे जी पर कैसी बीती होगी। मैंने मन में सोचा कि, हे दैव! जिस घर की मैं बेटी हूं, आज भाग्य के फेर से वहीं, अपनेही सगे भाई की महफ़िल में, नाचने आई हूं! हा! पिता और भाई को देखते ही मैं एक बेर चक्कर खाकर गिर पड़ी और देरतक बेसुधसी पड़ी रही। राजा साहब के वैद्यों ने बड़ी दौड़-धूप-कर मेरी बेहोशी दूर की और मुझे मृगी का रोग बतलाया!

"निदान, फिर किसी ढब से एक दिन महल में जाकर अपनी माता और छोटी बहिन को भी मैंने देखा, और उन पर नजर पड़ते ही वहां भी मेरी वही दशा हुई, जो बाहर बाप और भाई के देखने पर हुई थी! किन्तु एक उस दुष्ट जगन्नाथी पंडे के देखने की मुझे लालसा बनी ही रही, क्योंकि उसे मैंने वहां न देखा। मैं नहीं कह सकती कि वह वहां आया था, या नहीं, या मैंने उसे चीन्हा ही नहीं! यह भी हो सकता है कि शायद वह आया हो, और मुझे देख कर उसने मेरे सामने आने से अपने तई बचाया हो!"

बसन्त,—"तुम्हें देखकर तुम्हारे माता-पिता का चित्त भी कुछ डामाडोल हुआ था?"

कुसुम,—"अवश्य कुछ न कुछ हुआ ही होगा, क्योंकि खून का

रिश्ता अपना कुछ असर दिखलाए बिना नहीं रहता, पर उस समय मारे दुःख के मैं अपने आपे में ही न थी कि इन बातों पर ध्यान देती । हां ! उस समय मैंने अपनी जान दे देनी चाही, पर कुछ न होसका ! चुन्नी पर उसी दिन से और भी मुझे गुस्सा चढ़ आया, और फिर तब से मैं उसकी ओर कभी मुहब्बत की नज़र से नहीं देखती थी ।

"यदि मैं चाहती तो राजा-साहब के आगे अपने तईं प्रगट कर और उस पुर्जे तथा यंत्र को दिखला कर बड़ा बखेड़ा खड़ा करती, पर यह सब करना मैंने व्यर्थ समझा, क्योंकि समाज और लोकलाज के डर से मुझे वे लोग ग्रहण तो करते ही नहीं, तो फिर मैं क्यों अपने लिए अपने मां-बाप का सिर नीचा करके संसार में उनका मान घटाती !

"हाय ! कई दिनों तक उसी नकली मृगीरोग में अपने को मुर्दे सरीखी बनाए हुई मैं उनकी पाहुनी रही और मैंने ऐसा ढंग रचा कि वहां मुझे एक दिन भी महफ़िल में पेशवाज पहिरकर खड़े न होना पड़ा ।

"भाई के ब्याह होने पर जन्मभर के लिये एक नज़र मैंने अपनी भौजाई को भी देख लिया । फिर बिदाई पाकर चुन्नी के साथ मैं यहां लौट आई । उस घटना से मेरे चित्त ने ऐसा पलटा खाया कि जिसने मेरी पहिली प्रतिज्ञा को और भी दृढ़ कर दिया । आहा ! धन्य है जगदीश्वर, कि उसकी दया से मैंने अपना प्रण मजे में निबाहा और अपने मन के माफ़िक ही तुमको पाया ।"

बसन्तकुमार ने मुस्कुराकर कहा,—"इसका क्या सुबूत है कि मैं तुम्हारे मन के माफ़िक हूं ?"

कुसुम ने हंसकर कहा,—"इसका यही सुबूत है कि रंडी की पर्वरिश में रहकर और चुन्नी-सरीखी चालबाज़ रंडी की तालीम पाकर भी मैंने तुम्हारे चरणों में अपना सभी कुछ—यानी,—तन, मन और धन—अर्पण कर दिया है ।"

यह सुनकर बसन्तकुमार शरमा गया और बड़ी आज़िज़ी से कहने लगा,—" प्यारी, तुम बार बार रंडी—रंडी न किया करो, क्योंकि ऐसी बातों से मुझे दुःख होता है

बत्तीसवां परिच्छेद.

विवाह की बात ।

"सामान्या-सक्तसम्बन्धाज्जाताहं लोकगर्हिता ।
तस्मात्सन्ततिकामस्त्वं, कुरु दार-परिग्रहम् ॥ "
(कन्दर्पकेलि-नाटके)

वैशाख का महीना था, चटक चांदनी और मंद मंद पवन बाग के चबूतरे पर बैठे हुए, दो प्रेमियों के गर्मी के ताप को दूर कर रहा था। उस समय रात के नौ बजे होंगे, जब अगले बाग में चबूतरे पर बसन्तकुमार की गोद में सिर रख कर लेटी हुई कुसुम रह-रह-कर बसंत और चांद की ओर देख देखकर मुस्कुराती और कुछ सोचती जाती थी।

बसन्त ने चांदनी में चमकते हुए उसके गालों को चूम कर कहा,–"क्यों प्यारी! क्या तुम चांद की चमक से मेरे मुखड़े का मेल मिला रही हो!"

कुसुम,—(उस चुम्बन का बदला लेकर) "नहीं प्यारे! उस कलंकी चांद से तुम्हारे निष्कलंक मुख की चमक कहीं बढ़कर है। इसी बात पर मैं मुस्कुराती और इस कलमुहें चांद को मन ही मन धिक्कारती थी।"

बसन्त,—" वाह, वाह! तब तो तुमने मेरी ज़बान की लगाम को दूसरी ही ओर फेर दिया; क्योंकि अभी मैं तुम्हारे प्यारे मुखड़े की उपमा चांद से दिया ही चाहता था!"

कुसुम,–"सो तुम खुशी से दे सकते हो, क्योंकि मेरा कलंकित मुख उस कलंकी चांद की बराबरी करे तो शायद कर भी सकता है!"

यों कहकर उसने एक ठंढी सांस ली और बसन्त ने ताज्जुब से कहा,—"ऐं! ऐं! खैर तो है? यह ठंढी सांस किसलिये? मेरी प्यारी! तुम्हारा मुख कलंकित कैसे है?"

कुसुम　　प्यारे　वेश्या के घर पली हुई मुझ सी कसबी के

मुखड़ा यदि कलङ्कित न होगा तो क्या कुलबालाओं का होगा ! हा ! जब मैं अपनी इस वर्त्तमान दशा के साथ अपने उस कुल का मिलान करती हूं, जिसमें कि मैं पैदा हुई थी, तब यही जी चाहता है कि क्यों कर अपनी जान दे डालूं ! प्यारे ! सच जानो, जो कुछ मेरे दिल पर बीत रही है, वह जीही जानता है ! यदि आत्महत्या को मैं महापाप न समझती होती तो अब तक कभी की इस संसार से कूंच कर गई होती ! प्राणप्यारे ! तुम्हें पाकर यद्यपि मैं वेश्याओं के राक्षसी पाप से तो बेशक बची, पर क्या मैं किसी तरह भी तुम्हारे साथ हिन्दू-समाज में खड़ी हो सकती हूं ? और, यदि होऊंगी तो, मेरे जन्में बाल-बच्चे क्या हिन्दूसमाज की गोद में कभी जगह पा सकेंगे ?"

बसन्त,—(लंबी सांस लेकर) "प्यारी ! सच है, इतने दिनों पीछे आज तुमने एक विचित्र बात कह कर मेरे कलेजे को मथ डाला! हाय ! हिन्दूसमाज इतना ओछा और छोटे दिल का क्यों है ? धिक्कार है, इस समाज पर ! ! !"

कुसुम,—"कभी नहीं, कभी नहीं, इस भूमंडल में हिन्दूसमाज से बढ़ कर कोई भी समाज सुन्दर नियमों की शृङ्खला में बंधा हुआ नहीं है। इस समाज को प्राचीन महर्षियों ने ऐसे सुन्दर और अपूर्व नियमों के मूल पर बांधा है, कि क्या कहूं। यद्यपि समय के फेर से इसकी शाखाओं में बहुत सी बुराइयां आ लपटी हैं, पर इसके मूल में अभी तक कोई भी बुराई नहीं पहुंची है। सोचो तो सही कि यदि वेश्याओं को भी समाज में जगह मिलने लगे तो फिर यह हिन्दू-समाज एक दिन "वेश्यासमाज" बन जायगा कि नहीं ?"

बसन्त,—"पर, सुनो तो; जिस हिन्दूसमाज में बड़े बड़े कुल की कुलवन्तियां भी ऐसे ऐसे भयानक काम करती हैं, कि जिनपर ध्यान देने से फिर कभी इस समाज के नाम लेने को भी जी नहीं चाहेगा; ऐसी अवस्था में तुम्हारे ऐसी "स्वर्गीय-कुसुम" ने क्या पाप किया है, जो समाज तुम्हें अपनी गोद में जगह न देगा ?"

कुसुम,—"तुम ठीक कहते हो, प्यारे ! मैं भी जो अभी यह कह आई हूं कि, 'समय के फेर से इसकी शाखाओं में बहुतसी बुराइयां आ लपटी हैं; ' सो इस प्रकार के व्यभिचार और भ्रूणहत्या आदि को भी उन्हीं बुराइयों में ही [illegible] चाहिए, परन्तु यदि तुम गौर करके देखोगे और सोचोगे तो खुद इस बात को समझ सकोगे कि इन

सब बुराइयों के कारण वेही महात्मा हैं, जो अपने को समाज के अगुआ समझते हैं या जिन पर समाज की भलाई-बुराई निर्भर है। इस समय मैं इस बात पर ज़ियादह दलील नहीं किया चाहती, नहीं तो इस बात को साबित कर देती कि हिन्दूसमाज में आज दिन जितनी बुराइयां आ घुसी हैं, उनमें से पौने-सोलह-आने बुराइयों के कारण केवल पुरुष ही हैं, न कि बेचारी अबलाएं।"

बसन्त,—(चकित होकर) "ऐं! यह तो तुमने बहुत दूर की बात कही!"

कुसुम,—"ख़ैर, इन झगड़ों को यहीं छोड़ो। सुनो, मेरी एक बिनती है, उसे तुम कबूल करो।"

बसन्त,—"कहो?"

कुसुम,—"यों नहीं, तुम इस बात की कसम खाओ कि जो मैं कहूंगी, सो करोगे।"

बसन्त,—"अई वाह! वाह! तुम भी प्यारी, बिचित्र हो! भला, यह तो बतलाओ कि तुम्हारी कौन सी बात मैंने नहीं मानी है?"

कुसुम,—"ठीक है, पर यह बात ही ऐसी है कि जब तक तुम कसम न खा लो, मुझे इस बात का यकीन ही नहीं हो सकता कि जो मैं कहूंगी तुम उसे मंजूर करोगे।"

बसन्त,—"अच्छा, कसम खाया, अब कहो?"

कुसुम,—"तो बस मैं भी कह चुकी; चलो छुट्टी हुई!"

बसन्त,—"तुम बड़ी बेढब हो! ख़ैर बतलाओ, कौनसी कसम खाऊं।"

कुसुम,—"संसार में जिसे तुम सबसे बढ़कर प्यार करते होवो, उसीके सिर पर हाथ रखकर कसम खाओ।"

बसन्त,—"मेरे प्यार की पुतली तो तुम्हीं हो।"

कुसुम,—"तो बस, मेरी ही सही।"

बसन्त,—"मगर, यह तो मुझसे न होगा; क्यों कि न मालूम, तुम मुझे क्या करने के लिये कहो!"

कुसुम,—"जो मैं कहूंगी, उसे तुम्हें करना पड़ेगा।"

बसन्त,—"और जो मैं न कर सका?"

कुसुम "तुम कसमारोगे और जो मैं कहूंगी उसे करोगे"

बसन्त यह तो बड़ी जबर्दस्ती ठहरी"

कुसुम इसमें भी कोई शक है खैर कहो सीधी तरह से कसम खाते हो, या निकालूं छुरी ! ”

बसन्त,—“अरे ! यह तो वही नाव-वाली बात आई ! खैर, प्यारी ! लो, मैं तुम्हारी कसम, खाता हूं कि जो तुम कहोगी, वह मैं करूंगा। ”

कुसुम,—“तुम्हें अपनी शादी करनी होगी और अपने समाज में कायम रहना होगा। ”

बसन्त यह अनोखी बात सुनते ही हक्का-बक्का सा हो कुसुम का मुंह निहारने लगा।

इस पर कुसुम ने कहा,—“तुम इस तरह आंखें फाड़-फाड़ कर मेरी ओर देखते क्या हो ? यह बात मैंने कुछ दिल्लगी के तौर पर नहीं कही है, बल्कि तुम्हारी शादी का सारा इन्तजाम करके तब आज इस बात की तुम्हें इत्तिला दी है। ”

यह कह कर उसने कलमदान में से एक चिट्ठी निकाल कर बसन्त के हाथ पर धरी और कहा ज़रा इसे तो पढ़ो ! ”

बसन्त ने बड़े गौर से उस चिट्ठी को पढ़ा और ताज्जुब में आकर कहा,—“अरे ! क्या यह चिट्ठी भी सच्ची है ? ”

कुसुम,—“क्या तुम इसे भी बिल्कुल झूठी समझते हो ? ”

बसन्त,—“अगर यह सच है तो बड़े ही ताज्जुब और साथ ही खुशी की भी बात है। ”

कुसुम,—“अब नारायण खुशी-ब-खुशी इस सम्बंध को करादे तो बड़ी बात हो। ”

बसन्त,—“चाहे जो कुछ हो, पर इतने बड़े खान्दान की लड़की मुझे मिले, यह क्या कुछ कम अचरज की बात है ! पें ! जिनकी यह चिट्ठी है, या जिनकी लड़की से मेरी शादी की बात चीत की गई है, वे बिहार के एक नामी रईस और जिमींदार हैं; लेकिन और मैं कौन हूं, इसे वे तो क्या, अभी तुमभी नहीं जानतीं। ”

कुसुम,—“जी ऐसा न समझिएगा, दुनियां में ऐसी कोई बात ही नहीं है, जो कुसुम न जानती हो ! ”

बसन्त (ताज्जुब से) पें क्या तुम मेरा हाल भी जानती

वाले तुम्हारे स्वर्गीय पूज्य पिता बाबू सुजनकुमारसिंहजी तुम्हें छ महीने का छोड़कर परलोक सिधारे, तब तुम्हारी पूज्य माता शारदादेवी तुम्हें साथ ले आरे में अपने मैके में चली आईं। तुम्हारे पिता एक साधारण आदमी थे और लोगों का कागज़-पत्र लिख कर अपना गुज़ारा करते थे। तुम्हारे नानिहाल में भी तुम्हारी नानी के अलावे और कोई न था, लेकिन उनकी दशा बहुतही खराब थी। धन्य तुम्हारी श्रीमाताजी थीं कि उन्होंने अपने हाथ की कारीगरी से तुम्हें बारह-तेरह वर्ष तक पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। मां के मरने के शोक में तुम्हारी नानी भी तुरन्त ही मर गई और तब तुम इस संसार में अकेले और अनाथ होगए। तुम्हारी माताजी ने तुम्हें ऐसे ढंग से शिक्षा दी थी कि किसी सरपरस्त के न रहने पर भी तुमने खोटी संगत अख्त्यार न की, और पढ़ने लिखने से अपना जी न हटाया। तुम्हारी नानी के मरने पर जब उनके गोतियों ने उनके घर को दखल करके तुम्हें निकाल बाहर किया, तब तुम्हारे दिल पर क्या बीती होगी, यह तो तुम्ही जानो! तुम्हारे गुरु शंकरलाल ने, जोकि तुम्हें अंगरेज़ी और फ़ारसी पढ़ाते थे, तुमको अपने बेटे की भांति अपने घर रख कर हर तरह से पढ़ाया-लिखाया और तुम्हारी पर्वरिश की। उनको कोई न था, इसलिये मरने के समय अपना मकान और जो कुछ थोड़ा-बहुत माल-मता था, वह सब वे तुम्हें दे गए।' बस यही तुम्हारी जीवनी है, या और कुछ?"

बसन्तकुमार सन्नाटे में आकर अपनी जीवनी कुसुम के मुहं से सुनता और रह रह कर मारे ताज्जुब के चिहुंक उठता था।

कुसुम के चुप होने पर उसने कहा,—"प्यारी! मैं हैरान हूं कि यह सब हाल तुमने क्योंकर जाना!"

कुसुम,—(मुस्कुराकर) "मुझे ऐसा मन्त्र आता है, कि उसके बल से मैं जो चाहूं, सो जान सकती हूं।"

बसन्त,—"अब चोचले रहने दो! तुम्हें मेरी कसम,—सच कहो, यह बात तुम्हें क्योंकर मालूम हुई?"

कुसुम,—"तुमने यह हाल कभी भैरोसिंह से कहा था?"

बसन्त,—"हां, ज़रूर कहा था; पर मैं नहीं जानता था कि वे तुमसे कह देंगे।"

कुसुम, 'क्या तुमने उनसे इस बात की ताकीद की थी कि वे

यह हाल मुझसे या किसी और से न कहें ? ”

वसन्त,—“नहीं, ताकीद तो मैंने नहीं की थी । ”

कुसुम,—“तो तुम यह हाल मुझसे छिपाया चाहते थे ? ”

वसन्त,—“नहीं, कभी नहीं; फकत मौका न मिलने के कारण ही आज तक मैं अपना हाल नहीं कह सका था; मगर प्यारी ! तुम धन्य हो कि मेरी हालत जानकर भी मुझ पर प्रेम करती हो ! ”

कुसुम,—“सुनो, प्यारे ! मैंने तुमसे प्रेम किया है, तुम्हारी हालत या दौलत से प्रेम नहीं किया है । खैर, तो परसों तिलक, अतरसों कूंच, आज के नवें दिन विवाह और – – – – ”

वसन्त,—(उसे रोककर)“एँ ! यहां तक ! पर यह सब हुआ क्योंकर ? ”

कुसुम,—“तुम जानते हो कि तुम्हारे आराम होने पर भैरोसिंह महीने भर तक गायब थे ? ”

वसन्त,—“वे नकुम्बर गए थे न ! ”

कुसुम,—“जी नहीं, वे मेरे कहने से तुम्हारी शादी पक्की करने गए थे, पर जब लड़कीवाले ने तुम्हारी हैसियत पूछी, तब भैरोसिंह ने चालाकी करके मेरी सारी मिलकियत को तुम्हारी बतलादिया और यों लड़कीवाले को चकमा देकर शादी पक्की करली । यहां आने पर जब उन्होंने मुझसे यह हाल कहा तो चट मैंने अपनी कुल स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिख कर रजिष्टरी करा दी और सब गांव-इलाकों पर तुम्हारा नाम चढ़ा दिया गया । ”

वसन्त,—(ताज्जुब से आकाश-पाताल देखता हुआ) “ एँ ! यहां तक तुम कर गुज़री और मुझे रत्ती भर भी खबर न लगने पाई ! रात-दिन का साथ होने पर भी मैंने इस कार्रवाई का हाल कुछ भी न जाना !!! ”

कुसुम,—(मुस्कुराकर) “रंडियों की कार्रवाई का हाल जानना क्या हंसी-खेल है ! ”

वसन्त,–“प्यारी ! तुम्हारी यह बात मेरे कलेजे में तीर सी लगती है, इसलिये बार बार तुम ऐसी बातें मुहं से न निकाला करो ।”

कुसुम —(मुस्कुराकर) “जी ! मैं कुछ आप की मोल-खरीदी हुई लौंडी नहीं हूं कि जो हुजूर फरमाएंगे उस में बिला उज्र मान

बसन्त,—"प्यारी, मैं तुमसे हारा; पर यह तो बतलाओ कि तुमने यह सब प्रपंच क्यों रचा है?"

कुसुम,—"इसीलिये कि जिसमें तुम समाज में कायम रहो और तुम्हारे पितरों का पिंड लुप्त न होजाय।"

बसन्त,—"अब तुम भी तो धर्म से मेरी विवाहिता स्त्री ही हो न? फिर चाहे समाज न कबूल करे, पर तुम्हारे जो लड़के-बाले होंगे, उनका दिया हुआ पिंडा-पानी जरूर हमारे पितरों को पहुंचेगा।"

कुसुम,—"मैं सचमुच तुम्हारी स्त्री हुई या नहीं, यह तो भगवान ही जानें; और यह भी नारायण ही जाने कि यदि मेरे बेटे होंगे तो उनका दिया हुआ अन्न-जल तुम्हारे पितरों को पहुंचेगा, या नहीं! क्योंकि इस धर्मसंबंधी बात पर मैं कुछ भी नहीं कहा चाहती; पर इतना मैं जरूर समझती हूं कि जब समाज में मैं नहीं घुस सकती और मेरे असली हाल या मेरी-तुम्हारी शादी की बात को जब समाज वाले नहीं जानते, तब मेरे लड़के,—यदि होंगे,—तो वे—उसी हैसियत से देखे या समझे जायगे, जैसे कि रंडियों के लड़के देखे या समझे जाते हैं; पर ऐसा मैं न होने दूंगी और अपनी इस शादी को गुप्त ही रखकर इस संसार से अपना नाम-निशान तक मिटा दूंगी।"

बसन्त बड़ी घबराहट और ताज्जुब के साथ कुसुम की बातें सुनता रहा, फिर बोला,—"ऐं! प्यारी! तुम्हें यह सब क्या सूझा है?"

कुसुम,—"प्यारे! कुछ न पूछो! बस, चुपचाप जो कुछ मैं कर रही हूं—या करूंगी, उसे तुम देखा करो,—या देखा करना।"

बसन्त,—"सुनो तो जी! तब क्या तुम गर्भ-पात या भ्रूणहत्या करोगी, या जो बच्चे तुम्हारे पेट से पैदा होंगे, उन्हे मारडालोगी?"

कुसुम,—"वाह, वाह! तुमने भांग तो नहीं पी ली है? मैं क्या हमल से हूं?"

बसन्त,—"पर हमारा-तुम्हारा साथ है, तो बच्चों का पैदा होना ताज्जुब क्या है!"

कुसुम,—"ठीक है, पर याद रक्खो कि जब तक एक समझदार औरत लड़का पैदा करना न चाहे, मर्द के हज़ार सिर पटकने पर भी कुछ नहीं होसकता"

बसन्त (ताज्जुब से) 'यह बात मेरी समझ में न आई"

कुसुम,—"आही नहीं सकती; क्योंकि तुम न तो हिक्मत ही जानते हो और न औरत ही हो, पर इतना ज़रूर याद रक्खो कि मुझे कोई बाल-बच्चा होहीगा नहीं।"

बसन्त,—"क्या तुम बांझ हो?"

कुसुम,—"तुम ऐसा ही समझो!"

बसन्त,—"लेकिन इस बात को तुम ज़रा समझाकर कहो, जिसमें मेरी समझ मे आवे।"

कुसुम,—"सुनो,—यूनानी-मिसरानी,—यानी 'तिब्ब' और 'वैद्यकशास्त्र' तथा 'कामशास्त्र' को जिन्होंने अच्छी तरह समझा होगा, वे मेरी इन बातो को भली भांति समझ सकेंगे। सुनो—चुन्नी खूब पढ़ी-लिखी औरत थी और उसने 'तिब्ब,' 'आयुर्वेद' और 'कामशास्त्र' को अच्छी तरह समझा था। उसीने मुझे भी इन शास्त्रों का बहुत कुछ भेद बतलाया है और फिर मैंने खुद भी इन शास्त्रों पर बड़े ध्यान से भलीभांति विचार किया है। उन शास्त्रों के देखने से यह बात मैंने अच्छी तरह समझली है कि, 'संसार मे कोई भी स्त्री बांझ (बन्ध्या) नहीं है और यदि वह चाहे तो अपनी इच्छा के अनुसार बेटा या बेटी पैदा कर सकती है। और यह बात भी औरतों के ही हाथ में है कि, यदि वे चाहें तो उन्हें बेटा या बेटी—कुछ भी—न हो'।"

बसन्त,—(चकित होकर) "वाह! यह तो तुमने आज एक नई बात सुनाई!!!"

कुसुम,—'यह बात बहुत ही पुरानी है और फुर्सत के वक्त में इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों की सैर तुम्हें ज़रूर कराऊंगी।"

बसन्त,—"ज़रूर कराना, क्यों कि इस विषय में मैं तुम्हारा ही शागिर्द बनूंगा।"

कुसुम,—(हंसकर) "नहीं, नहीं, तुम तो मेरे ओस्ताद ही बने रहो!"

बसन्त,—"जी, वह वहदा तो भगरूजी के साथ ही मिट गया!"

कुसुम,—(मुस्कुराकर) "लेकिन तुम भी तो मेरे भँडुवे बनने वाले थे न!"

बसन्त, (शर्माकर) "भई वाफई! रंडियों से बाजी ले

जाना ज़रा टेढ़ी खीर है ! ”

कुसुम,—(खिलखिलाकर) “लेकिन, वह खीर तो तुमने खूब ही चाटी है ! ”

बसन्त,—“अच्छा, बहुत हुआ; मांफ करो और बताओ कि यह विचित्र सम्बन्ध क्या वास्तव में सच है ! ”

कुसुम,—“इसे तुम बिलकुल सच मानो । ”

बसन्त,—“तब तो तुम्हारे साथ मेरा एक और भी रिश्ता कायम हो जायगा ! ”

कुसुम,—“हां, यह तो तुमने सच कहा, क्योंकि जोरू से बढ़कर साली प्यारी होती है ! ”

बसन्त,—“जी, यह बात तो तुम्हारी बहिन भी कह सकेगी, क्यों कि जब तुम भी मेरी धर्मपत्नी हो, तब वह तुम्हारी बहिन भी तो मेरी साली ही न हुई ! ! ! ”

कुसुम,—(हंसकर) “ओहो ! ब्याह के पहिले ही जोरू की तरफ़दारी होने लगी ! ”

बसन्त,—“ इस लिये कि तुम्हारी जानिब से भी तो अभी से सौतियादाह शुरू हो चला ! ! ! ”

कुसुम,—“वाह, वाह, यह जवाब तो तुमने खूब माकूल दिया !”

बसन्त,—“आखिर, शागिर्द भी तो तुम्हारा ही हूं ! ”

फिर इसके बाद बसन्त ने कुसुम के साथ बड़ी हुज्जत की, पर नतीज़ा कुछ भी न निकला और उसे शादी करने के लिये मज़बूर होना पड़ा ।

पीछे उसने चिढ़कर कहा,—“ क्यों जी ? जब कि तुम अपना सब माल-मता मेरे नाम लिख चुकी थीं, तो फिर उसे भैरोसिंह को देने का विचार तुमने कैसे किया था ? ”

कुसुम,—“क्या मेरे कहने से तुम उन्हें उनकी सारी दौलत न लौटा देते ? ”

बसन्त,—“मान लो कि यदि मैं न देता तो तुम क्या करती ?”

कुसुम,—“ यह मुझे विश्वास है कि तुम इतने ओछे या दिल के छोटे नहीं हो । ”

बसन्त,—“यह तुमने कैसे जाना ? ”

कुसुम　　दिल का दिल से राहत है　”

तैंतीसवां परिच्छेद.

प्रणयालाप।

" तवाननं सुन्दरि फुल्लपङ्कजं,
स्फुटं जपापुष्पमसौ तवाधरः।
विनिद्रपद्मं तव लोचनद्वयं,
तवाङ्गमन्यत्किल पुष्पसञ्चयः॥"

(प्रणय-पारिजाते)

वसन्तकुमार ने कुसुम को खैंच और अपने कलेजे से लगाकर कहा,—"क्यों प्यारी! ज़रा मेरी एक बात सुनोगी?

कुसुम ने कहा,—" क्या कहते हो ?"

वसन्त ने हँसकर कहा,——

" हँसि-हँसि बात करौ सुकुमारी।
नैन निरेखि हरौ मन प्यारी॥
ऐसी हँसी सिखाई कौने।
रहौ हँसी-भरि नैन-अगौने॥"

इतना सुनकर कुसुम ने वसन्त को भरज़ोर गले से लगालिया और कहा,—"प्यारे, तुम मुझे दिलसे प्यार करते हो, इसीलिये तुम्हें मैं इतनी अच्छी लगती हूं!"

वसन्त,—" इसी प्यार का तो यह बदला चुकाया जाता है कि मुझे दूसरी के हवाले करके मेरे जिगर का खून किया जाता है!!!"

कुसुम —"ऐसा समझना तुम्हारी सरासर भूल है, क्योंकि मैं तो तुम्हारी वामाङ्गिनी हूं, परन्तु एक दक्षिणाङ्गिनी की भी आवश्यकता थी, उसके लिये मेरी सहोदरा भगिनी चुनी गई है; अब इस विवाह के होने से तुम्हारे दक्षिण और वाम—दोनों अङ्गों की शोभा हो जायगी और सच्चे तथा स्वर्गीय प्रेम के साम्राज्य में जो कुछ कमी थी, वह भी पूरी होजायगी।"

वसन्तकुमार ने हँसकर कहा,—"वाह, क्या कहना है! बातें बनाने में तो तुम अपना जोड़ा नहीं रखतीं!"

कुसुम (मुस्कुराकर) छः ऐसी खोटी बातें न कहो

क्योंकि मेरा जोड़ा तो मेरे सामने मौजूद है!"

वसन्त,—(मुस्कुराकर) "ठीक है; रंडियां अपना जोड़ा अपने साथ ही रखती हैं!"

कुसुम,—(हंसकर) "और भले आदमियों का जोड़ा ख़िदमतगारों के साथ रहता है!"

बसन्त,—"जी हां, बजा इर्शाद!"

कुसुम,—"बे खुश!"

बसन्त,—"आज तो बड़े रङ्ग पर हो!"

कुसुम,—"हमेशा ही रहती हूं!"

बसन्त,—"लो इस हाज़िर-जवाबी का भी कोई ठिकाना है!"

कुसुम,—(हँसकर) "तुम्हें यह जानना चाहिए कि हम लोग हाज़िर-जवाबी की ही रोटी खाती हैं!"

बसन्त,—"ख़ैर, मज़ाक तो बहुत हुआ, अब कुछ गाओ।"

कुसुम,—"क्या गाऊं?"

बसन्त,—"वो जो मैंने उस दिन चार छन्द बनाए थे न!"

कुसुम,—"अच्छा, सुनो"

अरुण कमल माला, चन्द्रिका-ज्योति-जाला,
चलति मनु पराला, साज सोहै निराला॥
नयन अति विशाला, मारती तान भाला,
मदन मद रसाला, है खड़ी कुञ्ज बाला॥ १॥
अधर मधुर आला, झूमते कान बाला,
हँसत करि उँजाला, ज्यों नटी नृत्यशाला॥
बजत सुरस ताला, गावती रागमाला,
युवक जन कसाला ढालती प्रेम आला॥ २॥
बहत पवन पाला, शीतकाला कराला,
पियत मधुर प्याला, ज्यों मिठाई निवाला॥
सुभग-तन दुसाला, है बिछे गोल गाला,
विहरति मद हाला, मानिनी चारु बाला॥ ३॥
चपल तड़ित बाला, हाय ऐसो निठाला,
सुरति समर ढाला, यों दहै नीर-जाला॥
बहत नदिन नाला ज्यों इनै बाहनाला
सहत सब कसाला जाहि की दूर थाला ४॥

चौंतीसवां परिच्छेद.

कुसुम का नाच.

" विभ्रमैर्विश्रब्धैस्त्वं, विद्ययाप्यनवद्यया ।
केनापि हेतुना मन्ये, प्राप्ता विद्याधरी क्षितिम् ॥"

(काव्यादर्शे.)

बसन्तकुमार की बारात बिहार के ०००में पहुंच गई है। बारात में धूमधाम इतनी है कि जिसका कोई ठौर ठिकाना नहीं! आज ही रात को बसन्तकुमार की शादी होनेवाली है। बड़े ठाठ के साथ महफ़िल सजी गई है। नाचने के लिये कई नामी रंडियां पटने, बनारस और लखनऊ से बुलाई गई हैं; पर आरे से कोई भी नहीं आई है! यह क्यों? इसका जवाब तो कुसुम ही देसकती है।

एक बड़े भारी बाग में खीमा पड़ा हुआ है. उसीमें बारात ठहरी हुई है और महफ़िल का इन्तज़ाम भी वहीं शामियाने के नीचे हुआ है।

एक छोटे से, मगर सूफ़ियाने खीमे के अन्दर कुसुमकुमारी अपने हाथ से बसन्तकुमार का शृङ्गार कर रही है, क्योंकि बारात निकलने में अब थोड़ी ही देर है।

कुसुमकुमारी ने मुस्कुराकर कहा,—" प्यारे! आज तो मैं भी पेशवाज पहिरकर नाचूंगी!"

बसन्त,—(ताज्जुब से) " यह क्यों?"

कुसुम,—" इस लिये कि आज मेरे लिये बड़ी भारी खुशी का दिन है, सो यदि आज ही मैं अपने जी का हौसला न पूरा करूंगी तो कब करूंगी! "

बसन्त,—"यह तरंग क्यों सूझी? "

कुसुम,—"इसलिये कि फिर ऐसा मौका कब हाथ आवेगा? बस जन्मभर के लिये फ़क्त आज अपने दिल की यह भी हवस निकाल लूं "

बसन्त,—"मगर, तुम तो मेरी जोरू हो न!"

कुसुम,—"बेशक; मगर रण्डी-पने की तासीर भी तो मेरे रोएं रोएं में समाई हुई है!"

इतना सुन और हँसकर बसन्तकुमार यों कहकर चुप होगया कि,—"खैर, तुम्हारे जी में जो आवे सो करो।"

निदान, अब यहां पर इसके कहने की जो कोई आवश्यकता नहीं है कि बारात ऐसे धूमधाम से निकली कि देखनेवालों की तबीयत खुश होगई और महफ़िल भी खूब ही शानदार हुई। उसमें जिस समय कुसुम पेशवाज पहिर कर नाचने खड़ी हुई, उस समय ऐसा समा बँधा कि जिसका नाम! उसका नाचना, गाना, थिरकना, भाव बतलाना और तानों का लेना ऐसा सितम ढाह रहा था कि जो कहा नहीं जा सकता। वह प्यारी प्यारी सूरत, वह बला की अदा, वह कयामत का अन्दाज़ और वह शानदार नाचना-गाना हुआ कि जिसे देखकर—जितने लोग उस समय उस महफ़िल में मौजूद थे, वे सभी जहां के तहां ठिठके हुए थे, मानो सभी चित्र लिखे से हो रहे थे!

वर को आमन्त्रण करने के लिए ठीक वक्त पर कन्या के पिता राजा कर्णसिंह अपने ज्ञाति-परिजनों के साथ बड़े ठाठ-बाठ से महफ़िल में पधारे। यदि दूसरा समय होता तो कुसुम अपने पिता को देखकर या तो बदहवास हो जाती, या मृगी-रोग के अधीन होती, पर आज अपने प्रानप्यारे बसंत के ब्याह की खुशी में वह ऐसी खुश-व खुर्रम हो रही थी और पेशवाज पहिरने पर आज उसके दिल ने ऐसा जोश दिखलाया था कि आज उसने अपने बाप और भाई को देखकर भी—भरी मजलिस में—उनके सामने नाचने, गाने और भाव बतलाने का ऐसा अजीब जौहर दिखलाया कि महफ़िल में जितने लोग मौजूद थे, वे सभी दिल खोलकर हजार ज़बान से कुसुम के लासानी इल्म और गम्भीर गुण की बड़ाई करने लगे।

उस समय राजा कर्णसिंह ने कुसुम को कुछ इनाम देना चाहा, पर कुसुम ने यह कहकर उस समय कुछ भी नहीं लिया कि,—"बिदाई के वक्त कुल इनाम इकट्ठा हो लूंगी।"

उस समय कई चीजें कुसुम ने गाई थीं पर उन में से 'सेहरा' और मुबारकबादी की दो गजलें हम यहां पर जरूर लिख देना

(सेहरा)

ज़ौहरी लाया है, इधर लाई है मालन सेहरा ।
सायए कान गुहर हामिले गुलशन सेहरा ॥
मरदुमें दीदः को भी ताब नज़ारा न हो ।
नोके मिज़गां को न क्यों डालके चिलवन सेहरा ॥
इस रसाई से बढ़ी उम्र गुलो गौहर की ।
आगया है जो तेरे ता सरे दामन सेहरा ॥
हर लड़ी गौहरो याकूतो ज़मुर्रद की बनी ।
चश्म बद्दूर जवाहिर का है मादन सेहरा ॥
सजरे तूर के क्या फूल गुंथे हैं इसमें ।
हमने देखा नहीं, इस तरह का रौशन सेहरा ॥
सबने समझा कि ये चलता है ज़मी पर खुर्शीद
रुखे नौशाह से जो सरका सरे दामन सेहरा ॥
हूर को भी यह तमन्ना है कि मालन बनती ।
इसमें यह शर्त है, ' गुंधेगी सुहागन ' सेहरा ॥
भर दिए दाग़ ने गुलहाय मज़ामीं इसमें ।
क्या अजब गाए अगर बुल्बुले गुलशन सेहरा ॥ ”

(मुबारकबादी)

‘ शादिए जल्वये गुलफाम मुबारक होवे ।
ऐसा इशरत का सराज़ाम मुबारक होवे ॥
बाद मुद्दत के हसीनों का नसीबा जागा ;
फ़र्श राहत पै अब आराम मुबारक होवे ॥
सर्व कुमरी को, सज़ावार हो, बुलबुल को गुल ।
हमको यह सर्वे गुल-अन्दाम मुबारक होवे ॥
पी चुके खूने जिगर हिज्र मे जी भर भर के ।
शरबते वस्ल का अब जाम मुबारक होवे ॥
नज़्म पर हमको मुबारक हो जहाँ मे फिरना ।
ग़ैर को गरदिशे ऐयाम मुबारक होवे ॥
हो चुके इश्क़ में बदनाम बड़ी मुद्दत तक ।
अब ज़माने में हमे नाम मुबारक होवे ॥
ों के न फन्द में फँस तायर दिल

गेसुओं का हमे अब दाम मुबारक होवे ॥
हूरे जन्नत,को मुबारक हों फ़लक के तारे।
बाग़ को गुल, हमे गुलफ़ाम मुबारक होवे ॥
छीने शहज़ादे को अब राजा न हमसे उस्ताद।
ये अमानत सहरे शाम मुबारक होवे ॥ "

निदान, यांहीं खूब हंसी-खुशी के साथ राजा कर्णसिंह की कन्या—अर्थात् कुसुमकुमारी को छोटी बहिन गुलाबदेई—से बसन्त कुमार का ब्याह होगया और कुसुम ने भी आज भरी महफ़िल में खूब खुले दिल से नाच-गा-कर अपने जी का होसला पूरा किया।

किन्तु, पाठक ! यह क्या बात है ? क्या कुसुम की सगी बहिन के संग ही बसन्तकुमार का ब्याह हुआ ?

हां, यह बात बिल्कुल सही है। जिस लड़की के साथ बसन्तकुमार का ब्याह हुआ था, वह सचमुच कुसुम की छोटी बहिन ही थी और नाम उसका गुलाबदेई था।

बात यह थी कि चुन्नी के मरने पर जब कुसुम ने भैरोंसिंह के मार्फ़त अपने बाप के यहां का पता लगवाया, तो उसे यह बात मालूम हुई कि, 'उसके एक छोटे भाई के अलावे एक छोटी बहिन भी है।' यह हाल जानकर कुसुम ने भैरोंसिंह के मार्फ़त अपनी छोटी और सहोदरा बहिन के साथ बसन्तकुमार की शादी पक्की की और चुपचाप अपनी सारी दौलत भी उस (बसन्तकुमार) के नाम लिखदी थी।

यदि कुसुम को अपनी छोटी बहिन का होना न मालूम होता तो वह बसन्त की शादी की उतनी फ़िक्र करती या नहीं, यह हम नहीं कह सकते, किन्तु अपनी एक क्वांरी बहिन की मौजूदगी का हाल सुन कर कुसुम फड़क उठी और उसने हज़ार हज़ार कोशिशें कर के अपनी सगी बहिनको अपने प्रान से भी बढ़कर प्यारे बसन्त के साथ शादी कराही डाली।

यह काम कुसुम ने किसी स्वार्थ से किया था, या निस्स्वार्थ-भाव से; यह तो वही जाने; पर इतना तो हम जरूर कहेंगे कि उसने अपने प्यारे की शादी सच्चे जी से दिल खोलकर करदी थी और अपने दिल का सारा प्यार अपनी सगी और छोटी बहिन पर [illegible] कर दिया था।

दूल्हे-बहू को बिदा करते समय अकेले में कुसुम ने बसन्त को अपने हृदय से लगा कर कहा,—"लो, प्यारे! आज मैं तुमसे उरिन हुई।"

बसन्त ने कहा,—"बल्कि तुम्हें यों कहना चाहिए कि, 'आज मैंने तुमसे छुटकारा पाया; क्योंकि तुम मेरे मन के माफ़िक न थे, इसलिये तुम पर मेरी दिली मुहब्बत न थी;' क्यों, यही बात है न?"

कुसुम ने मुस्कुराकर कहा,—"क्या खूब! भला, यह तुम कैसे साबित कर सकते हो कि, 'मैं तुम्हें सच्चे जी से नहीं प्यार करती, या तुम मेरे मन के माफ़िक नहीं हो?', बतलाओ!"

बसन्त ने हँसकर कहा,—"बस, अब तुम ज़ियादह सफाई न दिखलाओ; क्योंकि मैंने तुम्हारे दिल का हाल बिलकुल जान लिया है!"

कुसुम,—"ऐसा! तो फिर बतलाओ, तुमने क्या जान लिया है?"

बसन्त,—"मैंने एक दिन तुम्हारा वह सफीना देखा था, जिसमें तुम अपनी कविता लिखा करती हो। उसमें एक जगह यह लिखा हुआ मैंने देखा,—

[illegible] सखि! प्रीति करी सुहाई।
जानी नहीं, भूल भली भुलाई॥
कियो इतो हेत हियो सिराई।
तौ हू न मैं नेह-नदी नहाई॥"

कुसुम यह सुन और बसन्त के गालों में दो गुलचे लगा हँसकर कहने लगी, मैं नहीं जानती थी कि तुम चोट्टों की तरह घर की पोशीदा चीजें ताकते फिरते हो!"

बसन्त,—"हां, ठीक है; जब चोर पकड़ा जाता है, तो वह अपनी बला यों ही दूसरों के सिर डाला करता है!"

कुसुम,—"ख़ैर, मैं ही ऐसी सही; पर अब इन हुज्जतों से तुम्हें क्या काम है? अब तुम मेरी बहिन पर अपनी सारी मुहब्बत निछावर कर दो और मुझे अपनी ज़र-खरीद लौंडी समझकर अपने कदमों के साये-तले पड़ी रहने दो।"

यों कहकर उसने बड़े प्यार से बसन्त का मुंह चूमकर उसे [illegible]

पैंतीसवां परिच्छेद.

देवदासी-प्रथा !

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्त्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम् ॥"
(गीता)

तीसरे दिन, विवाह होजाने पर, दुलहिन को बिदा कराकर कुसुम ने डेरा कूच करने का हुक्म दिया । थोड़ी ही देर में सब सामानों के लैस हो जाने पर कुछ थोड़े से आदमियों को अपने साथ रखकर बाकी के सभों को दूलह-बहू के साथ आगे बढ़ने की उसने आज्ञा दी । उस समय उसके दिल में एक अजीब धुन पैदा हुई, जिसके कारण उसने राजा कर्णसिंह के पास एक पुर्जा लिखा; उस पुर्जे की इबारत यह थी,—

"श्रीमान् परम-पूजनीय श्रीराजासाब-बहादुर की खिदमत में बाद प्रणाम के यह अर्ज है कि मैं श्रीमान् से नखलिये में मुलाकात करके कुछ गुजारिश किया चाहती हूं, चुनांचे अगर कोई तकलीफ़ न होतो थोड़ी देर के लिये मुझे अपनी खिदमत में हाज़िर होने का हुक्म दिया जाय; लेकिन शर्त यह है कि जो कुछ मैं आपसे कहूंगी, उसे कोई तीसरा शख्स सुन नहीं सकैगा; यानी जहां पर आपके साथ मेरी बातें होंगी, वहां पर कोई दीगर शख्स न रहने पावैगा । बारात के कुल लोग दूलह-दुलहिन के साथ रवाना कर दिये गये हैं और मैं सिर्फ आपसे एक गुजारिश करने के लिये ठहर गई हूं; इस लिये जहां तक जल्द मुमकिन हो, मेरी अर्ज़ सुन ली जाय, ताकि मैं भी बहुत जल्द यहां से कूच कर सकूं । "

इस पुर्ज़े को पाकर राजा कर्णसिंह बहुत ही चकित हुए और मन ही मन यों सोचने लगे कि 'यह रण्डी मुझसे किस लिये तखलिये में मिला चाहती है' लेकिन उनकी समझ में कुछ भी न

आया। फिर भी कुसुम की प्रार्थना तुरन्त मानी गई और राजा साहब ने एक निराले कमरे में उससे मुलाकात करने का विचार ठीक किया। इसके बाद राजासाहब अपने बाग के एक निराले कमरे में जाकर गद्दी पर बैठ गये और कुसुम के बुला लाने के लिये एक सिपाही रवाना किया गया।

थोड़ी ही देर में कुसुम आ पहुंची और उसने बहुत ही अदब के साथ घुटने टेककर राजासाहब को प्रणाम किया। इसके बाद वह उठकर हाथ जोड़े और सिर झुकाए हुई राजासाहब के सामने खड़ी हो गई।

यह देख राजा कर्णसिंह ने कहा,—"तुम किसी तरह का सङ्कोच न करो और बैठ जाओ।"

यह सुनकर कुसुमकुमारी राजासाहब के सामने, मगर उनकी गद्दी से ज़रा दूर, सिर झुकाये और हाथ जोड़े हुए अदब से बैठ गई और बोली,—"मेरी ढिठाई आप क्षमा कीजियेगा, क्योंकि इस वक्त मैंने लाचारी से आपको तकलीफ़ दी है।"

राजासाहब ने कहा,—"नहीं, नहीं; मुझे कोई तकलीफ़ नहीं हुई है और मैं बड़ी खुशी के साथ तुम्हारी बातें सुनूंगा; लेकिन तुम यह तो बतलाओ कि तुमने दुशाले और इनाम के रुपये वापिस क्यों कर दिये!"

कुसुम ने कहा,—"जी, इसका सबब मैं पीछे अर्ज़ करूंगी; फ़िलहाल मैं जो कुछ इस वक्त आपसे कहूंगी, उसको कोई तीसरा शख्स तो न सुन लेगा?"

राजासाहब,—"नहीं, इसका अन्देशा तुम ज़रा न करो; क्योंकि तुम्हारे लिखने के मुताबिक़ मैंने कई सिपाहियों को यह हुक्म देकर पहरे पर तईनात कर दिया है कि,—'हमारे हुक्म-बग़ैर कोई शख्स इस कमरे के अन्दर तबतक हर्गिज़ न आने पावे, जब तक कि मैं किसी को खुद न बुलाऊं;' इस लिए तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे तुम बेखौफ़ होकर कह सकती हो।"

यद्यपि राजासाहब ने कुसुम से वह जवाब दिया जो कि अभी ऊपर लिखा जा चुका है; लेकिन मनही मन वे इस उधेड़-बुन में लगे हुए थे कि—'यह रण्डी मुझसे क्या कहा चाहती है!'

न कहा आपके आगे इस वक्त मैं एक ऐसी

बात कहा चाहती हूं कि जिसे सुनकर आश्चर्य नहीं कि आपके दुश्मनों की जानों पर आ बनें; इस लिये आपसे प्रार्थना है कि क्या थोड़ी देर के लिये आप अपने कलेजे को वज्र से भी कठोर बना लेंगे?"

कुसुमकुमारी की आश्चर्य से भरी हुई ये बातें सुनकर राजा कर्णसिंह बहुत ही चकित हुए और थोड़ा देरतक वे नजाने क्या क्या मन ही मन सोचते रहे; इसके बाद उन्होंने कुछ घबराहट के साथ कहा,—"आखिर तुम मुझसे क्या कहना चाहती हो?"

कुसुम ने कहा,—"पहले तो आप यह बतलाइये कि आपका आना जाना कभी आरे के बाबू कुंवर सिंह के दर्बार में भी हुआ करता है?"

कर्णसिंह ने कहा,—"हां, अकसर मैं आरे के बाबूसाहब के दर्बार में जाया करता हूं, क्योंकि एक तो वे मेरे क़रीबी रिश्तेदार, यानी फूफा हैं—और दूसरे इस वक्त बिहार में उनके रुतबे का सा दूसरा सरदार नहीं है; लेकिन इस सवाल से तुम्हारी क्या मुराद है?"

कुसुम कहने लगी,—"इस सवाल से मेरी जो कुछ गुज़ारिश है, वह आपको अभी थोड़ी ही देर के बाद खुद-बखुद मालूम होजायगी; इसलिये अब आप यह बतलाइये कि आपने बाबू कुंवरसिंह के दरबार में आरे की मशहूर और मालदार रंडी चुन्नी को भी कभी देखा था?"

राजा कर्णसिंह,—"हां, हां; चुन्नी को मैंने अकसर बाबूसाहब के दरबार में देखा था। वह बड़ी नेक रंडी थी और गाने-बजाने का बहुत अच्छा इल्म रखती थी। मेरे कुंवर अनूपसिंह की शादी में वह यहां भी नाचने आई थी! यह सुनकर मुझे बहुत ही अफ़सोस हुआ था, जब कि मैंने, कुछ दिन हुए, यह सुना था कि वह हरिहर-क्षेत्र में गण्डकी नदी में नाव के उलट जाने से डूब मरी! लेकिन इस वक्त तुम चुन्नी का ज़िक्र क्यों करने लगीं?"

कुसुम ने कहा,—"जी, सुनिये, अर्ज़ करती हूं,—आपके चिरंजीव राजकुमार कुंवर अनूपसिंह जी की शादी में चुन्नी के साथ उसकी एक लड़की भी आई थी, यह आपको याद है?"

यह सुनकर राजा कर्णसिंह थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, इस के बाद बोले—"हां, मुझे ऐसा याद आता है कि चुन्नी के साथ उसकी लड़की भी शायद आई थी और यह भी याद आता

है कि वह लड़की यहां बहुत सख्त बीमार भी हो गई थी लेकिन इस वक्त उस लड़की के ज़िक्र से क्या मतलब ?"

कुसुम,—"मतलब, पीछे आप ही मालूम होजायगा, पहले आप यह तो बतलाइये कि चुन्नी की उस लड़की को आप पहचानते भी हैं ?"

यह सुनकर राजा कर्णसिंह ने आंखे गड़ा कर देरतक कुसुम के चेहरे की ओर देखा और ताज्जुब से कहा,—"ओ हो ! क्या चुन्नी की लड़की तुम्ही तो नहीं हो ? ज़रूर तुम्ही चुन्नी की लड़की होगी ! ठीक है, ठीक है, अब कोई शक न रहा ! मैंने अक्सर बाबू साहब के दरबार में चुन्नी के साथ तुम्हें देखा है और मेरे कुंवर साहब की शादी में भी तुम चुन्नी के साथ आई थीं; लेकिन उस वक्त से इस वक्त मे बहुत कुछ फ़र्क़ आगया है, इसी वजह से तुमको मैं यक-बयक न पहिचान सका ! कुसुमकुमारी तुम्हारा ही नाम है न ?"

कुसुम ने कहा,—"जी हां, अब आपने मुझे अच्छी तरह पहिचान लिया ! मेरा ही नाम कुसुमकुमारी है और मैं ही चुन्नी की पाली हुई लड़की हूं।"

कर्णसिंह,—"क्या तुम सिर्फ़ चुन्नी की पाली हुई हो और उसके पेट से पैदा नहीं हुई हो ?"

कुसुम ने कहा,—"जी नहीं, मैं चुन्नी के पेट से पैदा नहीं हुई हूं, सिर्फ़ उसकी पाली हुई हूं।"

कर्णसिंह,—"आह, यह तो तुमने एक अजीब बात सुनाई !"

कुसुम,—"कैसे ?"

कर्णसिंह,—"ऐसे, कि, ऐसी ऐसी खूबसूरत लड़कियां रंडियों को कहां से मिलजाया करती हैं !"

कुसुम ने ताने के साथ कहा,—"क्यों ? ऐसी ऐसी लड़कियों की उस देश में कमी कहां है, जिस देश के उदार और धर्मात्मा लोग अपनी नादान लड़कियों को व्यभिचार और वेश्यावृत्ति अवलम्बन करने के लिये देवताओं को चढ़ा दिया करते हैं !"

यह एक ऐसी बेढब बात थी कि जिसने राजा कर्णसिंह के कलेजे में मानों ज़हरीला नश्तर चुभा दिया ! इस चोट की भयानक जलन से वे [illegible] उठे और दोनों हाथों से अपने कलेजे को मरज़ोर [illegible] अरे यह तमन क्या रहा ?"

कुसुमकुमारी ने कहा,—" क्या मेरी बातें अभी तक आप न समझे?"

कर्णसिंह,—"अरे, मैंने समझा तो सही, लेकिन यह क्या सच है ?"

कुसुम,—" क्यों, इसके सच होने में आपको सन्देह क्या है ?"

कर्णसिंह,—" संदेह यह है कि जो लड़कियां देवताओं की भेंट की जाती हैं, वे व्यभिचार या वेश्यावृत्ति कैसे कर सकती हैं ?"

कुसुम,—"क्यों ? क्या, देवताओं की भेंट होनेसे उन लड़कियों का मनुष्यत्व कहीं चला जाता है और मनुष्यत्व के बदले में उनमें देवत्व, पशुत्व या जड़त्व आजाता है कि जिसके कारण वे व्यभिचार या वेश्यावृत्ति करने से बची रह सकेंगी ?"

कर्णसिंह,—" तुम्हारी बातें मेरी समझ में न आईं !"

कुसुम,—" यह इस देश की अनाथिनी कन्याओं का दुर्भाग्य है कि मेरी बातें आपको समझ में अभीतक न आईं ! और एक आप ही क्या, आपके समान जितने धर्मात्मा इस देश में अपनी कन्याओं को देवताओं की भेंट किया करते हैं, उनमें से कोई भी मेरी इस बात को न समझ सकेगा ।"

कर्णसिंह,—"लेकिन नहीं, आज तुमने एक अजीब बात सुनाई, इसलिये इसबात के मतलब को मैं अच्छी तरह समझना चाहता हूं। तुम अब यह बतलाओ कि इस "देवदासी प्रथा" में दोष क्या है ?"

कुसुम ने हँसकर कहा,—" आपने जो अभी यह सवाल किया कि, ' इस देवदासी-प्रथा में दोष क्या है; ' इसका यह जवाब है कि इस प्रथा में सिवाय दोष के गुण ज़रा भी नहीं है ।"

कर्णसिंह,—(आश्चर्य से) "ऐसा ! क्या देवदासी-प्रथा में बिल्कुल दोष ही दोष भरे हुए हैं !"

कुसुम ने कहा,—" जी हां, इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि जो बुद्धिमान भलीभांति ध्यान देकर इस प्रथा पर विचार करेगा, उसे यह बात साफ़ तौर से मालूम होजायगी कि यह ' देवदासी-प्रथा' व्यभिचार और वेश्यावृत्ति की जड़ है और इसे किसी व्यभिचारी महात्मा ने चलाया है ! "

यह ऐसी विलक्षण बात कुसुम ने कही कि जिसे सुनकर कर्णसिंह एक दम आश्चर्य के समुद्र में गोते खाने लगे । फिर ज़रा ठहर कर वे बोले " कुसुमकुमारी ! आज यह तुमने एक बिलकुल नई और ताज्जुब से भरी हुई बात मुझे सुनाई लेकिन इस धर्म सम्बन्धी

बात में कैसे दखल दिया जाय ?"

कुसुमकुमारी ने क्रोध के साथ कहा,—"जिस प्रथा से व्यभिचार और वेश्यावृत्ति को दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़वार हुई जा रही है, उस प्रथा को धर्म का अंग मानना,—यह कैसा विचार है ! जो देवमन्दिर धर्म के प्रधान स्थान हैं और जिन देवमन्दिरों की परिचर्या के लिये लोग अपनी कन्याओं को मोह-ममता-शून्य होकर विसर्जित कर दिया करते हैं, उन मंदिरों या उन मंदिरों के अधिष्ठाता देवताओं की दासी (देवदासी) की पदवी पाकर उन कन्याओं के साथ उन मंदिरों के पुजारी, महन्त, पण्डे, या ऐसे और भी बहुतेरे लोग, जैसा घृणित, भयानक, पाशविक और पैशाचिक अत्याचार किया करते हैं, इन बातों पर कभी आपने या आप ही के समान और भी धर्मप्राण महानुभावों ने कुछ विचार किया है ? आपलोगों को यह बात भलीभांति जान लेनी थी कि, 'यह देवदासी प्रथा कहां से, कबसे और किस लिये निकली' ! "

कुसुमकुमारी की इन अद्भुत बातों को सुनकर देर तक राजा कर्णसिंह सोच में डूबे रहे, फिर थोड़ी देर के बाद उन्होंने कुसुमकुमारी की ओर उदासी से देखकर कहा,—"कुसुमकुमारी ! इस "देवदासी-प्रथा" के विषय में तो आज तुम अद्भुत बातें कहने लग गई हो ! क्या तुम यह बतला सकती हो कि यह प्रथा कबसे चली और इसे किसने चलाया ? "

कुसुमकुमारी कहने लगी,—"पुराने जमाने के इतिहासों पर ध्यान देने से यह बात भलीभांति मालूम होजायगी कि महाभारत के बहुत पीछे यह प्रथा उन लोगों ने चलाई है, जिन्होंने अच्छी तरह इस देश के नाश करने पर कमर बांधली थी ! खूब ध्यान से जब आप इस "देवदासी" प्रथापर विचार करेंगे, तब आपको स्वयं इस प्रथा के गुप्त रहस्य विदित होजायंगे। मैंने जहांतक इस विषय पर विचार किया और इतिहासों को देखा है, उससे यही सार निकलता है कि यह प्रथा दो-ढाई हज़ार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। धर्म की आड़ में इसके चलानेवाले वेही महात्मा थे, जो गृहस्थाश्रम को छोड़कर भी भोगविलास की कीचड़ में गले तक डूबे हुए थे ! आखिर उन लम्पटों का काम क्योंकर   और वे अपने इन्द्रियों की तृप्ति कैसे करते इसलिये अपना भोग-तृष्णा के मिटाने के लिये

हा उन लोगों ने यह घृणित, निन्द्य, हेय, पापमय और शोचनीय "देवदासी-प्रथा" को धर्म के आवरण में ढँककर चला ही तो दिया, और धर्मप्राण,—किन्तु अपरिणामदर्शी भोले आदमियों ने उस प्रथा को ग्रहण कर अपनी पुत्रियों को देवताओं की भेंट करना प्रारम्भ कर दिया! परन्तु इस बात पर आजतक किसीने भी ध्यान न दिया कि, 'जो कन्याएं देवताओं के अर्पण की जाती हैं, उनका चरित्र कैसा होजाता है, उनका परिणाम क्या होता है और वे किस शोचनीय दशा को प्राप्त होकर क्या क्या कुकर्म करने लग जाती हैं'!"

कुसुम की इन विचित्र बातों का बहुत ही गहरा असर राजा कर्णसिंह के चित्त पर पड़ा! वे देर तक सिर झुकाए हुए कुसुम की सच्ची और शुद्ध-तर्क-मयी बातों पर विचार करते रहे। इसके अनन्तर उन्होंने कहा,—"कुसुमकुमारी! तुम्हारा यह तर्क तो बहुत ही सच्चा प्रतीत होरहा है!"

कुसुम ने कहा,—"हो होगा, क्योंकि मैं जो कुछ कह रही हूं, वह अक्षर-अक्षर सत्य है! और भी सुनिए,—गृहस्थाश्रम-त्यागियों को जब भोग-विलास के लिये स्त्रियों की आवश्यकता हुई और उनका काम केवल चेलियों से न चल सका, तथा परस्त्रीगमन और वेश्यासमागम से निन्दा होने लग गई, तब उन्होंने इस घृणित "देवदासी-प्रथा" की चाल चलाकर और भोले-भाले धर्म-प्राण लोगों को ठगकर अपने काम चलाने का उपाय निकाला! अब आपही सोचें कि इस "देवदासी" प्रथा से कै-कोटि भारत की सती साध्वी कुमारियों का आज तक सर्वनाश हुआ होगा! क्या इस पातक का फल इस देश के लोगों को न भोगना पड़ेगा, और क्या ऐसे पापों के कारण यह देश रसातल को न चला जायगा! और सुनिये, इन कुमारियों में, जो कि देवताओं के नाम विसर्जित की जाती थीं, कदाचित् सौ में कोई दो ही चार ऐसी होती होंगी, जो इन देवसेवक लम्पटों से अपने चरित्र की रक्षा करने में समर्थ होती होंगी! इन कुमारियों में से जो अकालमृत्यु से बच जाती थीं, उनमें बहुतेरी तो उन गृहस्थाश्रम त्यागी महात्माओं की भोग्या बनती थीं,—और बहुतेरी, या तो स्वयम्, या किसी के चक्र में पड़कर वेश्यावृत्ति का अवलम्बन करती थीं! आज दिन भी देवताओं के

नाम पर त्यागी हुई ऐसी कन्याओं की कमी नहीं है, जो वेश्याओं के द्वारा खरीदी जाकर और उनकी पंक्ति में बैठकर उनकी संख्या बढ़ाने के का कारण हुई हैं!"

कुसुम की बातें सुनकर राजा कर्णसिंह ने बड़ी मुहब्बत के साथ कहा,—"बेटी कुसुम! चुन्नी को मैं अच्छी तरह जानता और पहिचानता था; तू उसीकी लड़की है, इसलिये तुझपर मेरी वही निगाह है, जो मुझ जैसे सिन-रसीदा लोगों की लड़कियों पर हुआ करती है; इसलिये अब तू बेखौफ होकर मुझे यह बतला कि इस समय तूने किसलिये मुझ से निराले में भेंट की है, और इस "देवदासी" प्रथा के ऊपर जो तूने इतना गहरा तर्क-वितर्क किया है, इससे तेरा क्या अभिप्राय है?"

कुसुम ने कहा,—"जी, सुनिये,—इस समय जिसलिये मैंने आपको तकलीफ़ दी है, उसका मतलब मैं अब आपके आगे प्रगट करती हूं। आशा करती हूं कि मेरे मतलब के सुनने के लिये अब आप हर तरह से तैयार हो जायगे और अपने कलेजे को बहुत ही मज़बूत बनालेंगे; क्योंकि मेरी बातें वज्र से भी बढ़कर कठोर हैं, जो कि आपके दिल के शायद टुकड़े टुकड़े कर डाले तो कोई ताज्जुब नहीं!"

राजा कर्णसिंह ने यह सुनकर बड़े आश्चर्य के साथ कहा,—"क्या, ऐसी बात है?"

कुसुम ने कहा,—"जी हां, वह बात ऐसी ही है, जिसे आज मैं आपके आगे प्रगट करके जन्म भर के लिये आपसे बिदा हूंगी।"

कर्णसिंह ने कहा,—"तो, जो कुछ तुझे कहना हो, उसे अब कह डाल।"

कुसुम,—"आपने कभी जगदीश के सामने यह मिन्नत की थी कि, 'मेरे जो पहिली सन्तान होगी, वह मैं आपकी भेंट करूंगा'?"

कर्णसिंह ने कहा,—"हां, यह बात ठीक है और मैंने ऐसी मिन्नत ज़रूर की थी। इसका कारण यह है कि मुझे जब बहुत दिनों तक कोई सन्तान न हुई, तब लोगों के—विशेषकर जगन्नाथी पण्डा त्र्यम्बक के—बहुत आग्रह करने पर मैंने जगदीश से वैसी मनौती मानी थी इसी मुझे पहिले पहिल जो कन्या हुई उसे मैंने जगदीश के अर्पण कर दिया था उस कन्या का नाम

मैंने "चन्द्रप्रभा" रक्खा था और जिस समय वह जगदीश को चढ़ाई गई थी, केवल छः महीने की थी। उसकी बाईं बगल में एक चक्र का चिन्ह भी था।"

कुसुम,—"इसके बाद फिर कभी आपने यह बात दरयाफ्त की थी कि, 'आपकी चन्द्रप्रभा कैसी हालत में है'?"

कर्णसिंह,—"फिर मुझे उस कन्या के हाल जानने की क्या ज़रूरत थी, जब कि वह देवता को चढ़ा दी गई थी! फिर भी, एक बार जब मैंने त्र्यम्बक से उस कन्या के बारे में पूछा था तो उसने यह कहा था कि, 'वह मरगई!' बस फिर कभी मैंने उसका खयाल न किया।"

कुसुम ने कुछ रूखेपन के साथ कहा,—"ठीक है, आप ही ऐसे लोगों ने इस घृणित "देवदासी प्रथा" को प्रश्रय दिया है, जिसके कारण देश में घोर अत्याचार, अनाचार, पापाचार, व्यभिचार और दुराचार की इतनी मात्रा बढ़ गई है कि जिसका कोई ओर-छोर ही नहीं है! आपका हृदय धन्य है कि जिसने फिर कभी अपनी आत्मजा पुत्री की ओर भूलकर भी ध्यान न दिया! यदि आपको आज यह मालूम होजाय कि, 'दुरात्मा त्र्यम्बक ने आपसे जो कुछ कहा है, वह सरासर झूठ है, और आपकी वह अभागिनी कन्या चन्द्रप्रभा अभी जीती-जागती है,' तो क्या आप उसकी ओर आंख उठाकर देखेंगे, या उसे अपने चरणों में स्थान देंगे?"

यह सुन और आश्चर्य-चकित होकर कर्णसिंह ने कहा,—"तूने क्या कहा, कुसुम! क्या मेरी चन्द्रप्रभा अभीतक जीती-जागती है?"

कुसुम,—"हां वह भाग्यहीना अभीतक नहीं मरी है!"

कर्णसिंह,—"तो वह मेरी प्राण-समान प्यारी पुत्री चन्द्रप्रभा कहां है?"

कुसुम,—"वह इस समय जहां है, इसे क्या आप जानना चाहते हैं?"

कर्णसिंह,—"हां, हां; तू जल्द बता कि वह कहां है?"

कुसुम,—"तो उस अभागिन लड़की का पता मैं अब आपको बतलाती हूं, — — —"

कर्णसिंह,—(जल्दी से) "हां, जल्द बता कि वह मेरी पुत्री चन्द्रप्रभा इस समय कहां है?"

कुसुम ने कहा, 'एक वेश्या के घर!"
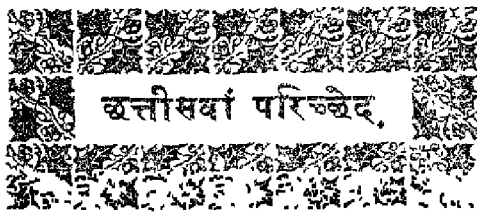
छत्तीसवां परिच्छेद,

रहस्य-भेद,

"पश्य देवार्पितां कन्यां, नीचसंसर्गगामिमाम् ।
यामुत्सृज्याधुना तात, पुत्रवानसि भूतले ॥"

(कस्यचिदुक्तिः)

यह एक ऐसी दिल के टुकड़े करनेवाली बात थी कि जिसने कर्णसिंह के जिगर के साथ वह काम किया, जो बज्र भी कदाचित् न कर सकता ! कुसुम की बात सुनते ही उन्होंने बड़े ज़ोर से एक चीख मारी और तकिये का ढासना लगाकर कुछ देर तक बदहवासी के आलम में गिरफ्तार रहे । इसके बाद बड़ी बड़ी कठिनाइयों से उन्होंने अपना जी ठिकाने किया और कुसुम की ओर हैरत-भरी निगाह से देखकर कहा,—

"क्या कहा, तूने ? मेरी चन्द्रप्रभा कहां है ?"

"यहीं, आपके सामने ही !" यों कहकर कुसुमकुमारी राजा कर्णसिंह के पैरों पर गिरकर ज़ार-ज़ार रोने लगी ! यह देख राजा साहब भी अपने तईं न सम्हाल सके, और एक आह सर्द खींच कर बेहोश होगए ! यह देखकर कुसुम ने अपने जेब में से एक लखलखे की डिबिया निकाली और उसे राजासाहब को सुंघाकर किसी किसी तरह उन्हें होश कराया ।

होश में आने पर उन्होंने कुसुम के सिर को अपने कलेजे से लगा और सूंघकर कहा,—"कुसुम ! क्या यह बात सच है ? क्या वह अभागिन चन्द्रप्रभा तू ही है ? और क्या मेरे जगन्नाथी पण्डे त्र्यम्बक ने मुझे सरासर धोखा दिया है ?"

कुसुम ने कहा,—"हां, पिताजी ! त्र्यम्बक ने ज़रूर आपको धोखा दिया, क्योंकि वह दुखिनी चन्द्रप्रभा कुसुम के रूप में आपके सामने मौजूद है !"

यों कहकर उसने अपने बटुए में से उस पुर्ज़े और तावीज़ को निकाला जो उसने पण्डे से पाया था फिर उन दोनों

को राजासाहब के हाथ में देकर यों कहा,—" पहिले आप इन्हें अच्छी तरह देखलें, तब मैं अपना सारा पिछला हाल आपको सिलसिलेवार सुनाऊंगी। "

यह सुनकर और उस पुर्ज़े और तावीज़ को लेकर राजासाहब ने उन दोनों को अच्छी तरह देखा; इसके बाद कुसुम से कहा,—" तू ज़रा अपनी बाईं-ओर-वाली बगल तो मुझे दिखला ? "

यह सुनकर कुसुम ने तुरन्त अपनी बगल राजासाहब को दिखलाई, जिसमें ' चक्र " का चिन्ह बना हुआ था !

यह अजाब कैफ़ियत देखकर राजासाहब ऐसे परेशान हुए कि देर तक उनके कलेजे की धड़कन दूर न हुई और बड़ी बड़ी मुश्किलों से उन्होंने कुछ देर में अपने जी को किसी किसी तरह ठिकाने करके कहा,—"बेटी कुसुम, अब इसमें कुछ भी सन्देह न रहा, और यह बात सप्रमाण सिद्ध होगई कि मेरी वह प्राण-समान पुत्री चन्द्रप्रभा तू ही है ! हा, त्र्यम्बक कैसा झूठा और फरेबिया निकला ! अब अगर वह कभी मेरी ड्योढ़ी पर चढ़ेगा तो मैं उससे समझ लूंगा। खैर अब यह बता कि तू इतने दिनों तक कहां रही, क्योंकर अपने असली हाल को तूने जाना और किस तरह चुन्नी ने तुझे अपने चकाबू में फंसाया ? "

यह सुनकर कुसुमकुमारी ने अपना सारा पिछला हाल कह सुनाया, जो कि इस उपन्यास के पिछले परिच्छेदों में अबतक लिखा जा चुका है।

इतना कह चुकने के बाद कुसुम ने कहा,—"मुझसे त्र्यम्बक ने यों कहा था कि, 'बेटी ! तू एक राजा की लड़की है इसलिये तू मेरे यहां आराम न पावेगी, इस वास्ते मैं तुझे एक रानी को सौंप देता हूं:' यों कहकर उसने मुझे यह तावीज़ और पुर्ज़ा दिया। इससे यह बात साबित होती है कि यदि चुन्नी ने अपने को रानी कहकर उसे धोखा न दिया होता और वह उस (चुन्नी) के चकमे में न आगया होता तो फिर वह मुझे इस यन्त्र और पुर्ज़े को क्यों देता और बारह बरस के बाद इसके हाल जानने के लिये इतना ताकीद ही क्यों करता ! इससे मुझे तो यही बात जान पड़ता है कि त्र्यम्बक को चुन्नी ने धोखा दिया और उस (त्र्यम्बक) ने उस (चुन्नी) के झांसे पट्टी में आकर कुछ थोड़े से रुपयों के लालच में मु

चुन्नी के हाथ बेंच दिया। यदि ऐसा न होता तो वह मेरे हाल से ताल्लुक रखनेवाला तावीज़ मुझे क्यों देता? इस लिये चाहे त्र्यम्बक ने मेरे साथ बड़ी बुराई की, पर इतना मैं उसका उपकार ज़रूर मानूंगी कि उस तावीज़ को मुझे देकर उसने मेरे साथ बड़ी भलाई भी की। अगर उसने वह तावीज़ मुझे न दिया होता तो मैं जन्मभर अन्धकार ही में रहती और आज आपके चरणों में न पहुंच सकती। हां, यह ठीक होगा कि मुझे बेंच डालने के बाद आपके पूछने पर उसने मुझे 'मरी हुई' बतलाया होगा!"

कुसुम के अजीब किस्से को सुनकर और साथ ही अपने बहनोई मोतीसिंह (भैरोसिंह) के परिणाम को जानकर राजा कर्णसिंह बहुत ही दुखी हुए। "देवदासी-प्रथा" पर उनकी घोर घृणा होगई और अपनी धर्मान्धता तथा मूढ़ता पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप भी हुआ। त्र्यम्बक तथा चुन्नी के ऊपर भी उन्हें बड़ा क्रोध हुआ।

उन्होंने कुसुम से बड़े स्नेह के साथ कहा,—"बेटी कुसुम, मेरी मूढ़ता में तो कोई सन्देह नहीं, किन्तु तू धन्य है कि तूने अपना असली हाल जानकर अपना सतीत्व-धर्म भलीभांति बचाया! अब चाहे सारा हिन्दू-समाज तुझे वेश्या समझकर न ग्रहण करे, पर धर्मतः तू कदापि पतित नहीं हुई है; क्योंकि धर्म ने तेरा साथ नहीं छोड़ा है। भगवान् मनुजी ने बहुत ही सही कहा है कि,—'धर्मो हतो हन्ति नरं धर्मो रक्षति रक्षितः'— अर्थात् जिस तरह तूने दृढ़ता के साथ धर्म की रक्षा की है, उसी तरह वह (धर्म) भी सदैव तेरी रक्षा किया करेगा; अब यदि परलोक या सतीलोक का होना सत्य है, तो वहां पर तेरा आसन बड़ी बड़ी कुल-बालाओं से भी बहुत ही ऊंचा होगा। खैर, यह जो कुछ हो,-पर अब मैं तुझे दृढ़ता के साथ प्रकाश्यरीति से ग्रहण करूंगा और इसमें समाज की किसी बाधा की भी परवाह न करूंगा।"

अपने जन्मदाता पिता के मुख से ऐसे स्नेह-भरे वाक्यों को सुनकर कुसुमकुमारी की आंखों से चौधारे आंसू बहने लग गये थे। उसने बड़ी कठिनाई से उमड़ते हुए आंसुओं के वेग को रोका और कहा,—"पिताजी! आपने मुझे स्नेह से ग्रहण किया, इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन सी खुशी होसकती है? अब मुझे इस [illegible] ख्याल आया कि जब कि आपने मुझे ग्रहण कर लिया तो

नारायण भी अवश्य ही ग्रहण करेंगे। अब रही, प्रकाश्यरीति से ग्रहण करने की बात,-यह मैं नहीं चाहती, क्योंकि न तो ऐसा काम आपको समाज ही कभी करने देगा और न मैं ही अपने लिये समाज में विप्लव उपस्थित करूंगी; क्योंकि यह मैं कभी जीते जी बरदाश्त नहीं कर सकती कि मेरे कारण आपका सिर नीचा हो और आप समाज में हेय समझे जायं। यद्यपि मैंने आपको अपना सच्चा परिचय देकर अपने जी का बोझ कुछ हलका कर लिया है, पर इससे मेरा मतलब यह कदापि नहीं है कि मैंने जिस तरह इस समय आपकी गोद में स्थान पाया है, उसी तरह ज़बरदस्ती समाज की गोद में भी स्थान पाने के लिये हठ करूं। यहां पर आप मुझसे यह पूछ सकते हैं कि, 'तो फिर तूने मुझे अपना परिचय ही क्यों दिया?' इसका सीधा-सादा जवाब यही है कि मेरी शोचनीय दशा का हाल जानकर अब आप ऐसा उद्योग करें कि जिससे इस सर्वनाशिनी प्रथा का नामोनिशान इस देश से मिटजाय, और कुमारी कन्याओं के धर्म की रक्षा हो। हां, यदि देवताओं को कन्याएं चढ़ाई ही जायं तो वे उस तरह क्यों न चढ़ाई जायं, जैसे बकरियां चढ़ाई जाती हैं! क्योंकि देवताओं के निमित्त चढ़ाई हुई कन्याओं को नाना प्रकार के कुकर्मों में फंसा देना कदापि उचित नहीं है।"

कर्णसिंह ने कहा,—"तेरे परिणाम को देखकर अब मैं इस बात की प्रतिज्ञा करता हूं कि मुझसे जहां तक होसकेगा, मैं इस "देवदासी" प्रथा की जड़ को खोद कर फेंक देने के लिये भरपूर कोशिश करूंगा। रही, तेरे ग्रहण करने की बात,—इस पर मैं अभी और विचार करूंगा, फिर जैसा मुनासिब समझूंगा, करूंगा।"

कुसुम,—"इस पर अब आप बहुत ज़ियादह सोच-विचार न करें और अपने दिल में यही समझलें कि आपकी चन्द्रप्रभा अब संसार में नहीं है; क्योंकि आप मुझे प्रकाश्यरीति से ग्रहण करने के लिये चाहे कितना ही हठ करें, पर इतने दिनों तक रण्डी के घर रह कर और नाचने-गाने का पेशा उठाकर अब मैं न तो जीते जी समाज ही में घुसूंगी और न समाज मे आपको नीचा ही देखने दूंगी। आप इस बात को खुद सोच सकते हैं, 'कि जब कि मैंने एक क्षत्रिय के साथ चुपचाप शादी कर ही ली थी-तो फिर ज़ाहिरा तौर से उसके साथ उसकी ब्याहता स्त्री बन कर क्यों न रही और उसका दूसरा [illegible]

शख़्स के साथ शादी करके अपना धर्म बचाया और दूसरी शादी उसकी इसलिये कर दी कि, 'जिसमें मेरे कारण वह शख़्स समाज से पतित न होजाय और सन्तान-सन्तति के बिना उसके पुरखों के पिण्ड-पानी का लोप न हो जाय।' इसके अलावे फूफासाहब (भैरोसिंह = मोतीसिंह) की बेशुमार दौलत भी ठिकाने से लगजाय, क्योंकि गुलाब के अलावे अब फूफासाहब के नज़दीकी रिश्तेदारों में ऐसा कौन है, जिसे उनकी बेशुमार दौलत का हकदार बनाया जाय, इसलिये गुलाब ही के साथ यह शादी कराई गई, क्योंकि अपनी "बूआ" और "फूफा" की दौलत की इस समय एक गुलाब ही हक़दार है, इस बात को शायद आपने अब अच्छी तरह समझ लिया होगा।"

कर्णसिंह ने कहा,—" हां, अब तेरा दिली मतलब मैंने भली भांति समझ लिया। हाय, बेचारे मोतीसिंह का कैसा भयानक परिणाम हुआ! किन्तु,कुसुम! यह तो संसार है, इसलिये यदि आगे चल कर तेरी गुलाब से, या गुलाब की तुझसे न बनी तो क्या होगा? क्योंकि सौत का रिश्ता तो बड़ा ही नाज़ुक होता है!"

इस पर कुसुम कहने लगी,—" आपका कहना बहुत ही सही है और "सौत" का रिश्ता दर असल बड़ा जहरीला होता है, लेकिन इस बात पर मैंने बहुत कुछ ग़ौर कर लिया है कि आगे चलकर उसकी विवाहिता स्त्री से मैं सौतियाडाह-कभी भी न करूंगी, इसीलिये मैंने अपनी सगी (सहोदरा) बहिन के साथ उसकी शादी करदी है, क्योंकि चाहे मेरी छोटी बहिन मेरा असली हाल न जान कर मुझसे सौतियाडाह भले ही करे, पर मैं जानबूझकर और खुद समझदार होकर उससे कभी भी जीते जी डाह नहीं करूंगी; क्योंकि यदि मुझे सौतियाडाह ही करनी होती तो मैं खुद यह शादी ही क्यों कराती, बल्कि जहां तक मुझसे होसकता, इस शादी को नहीं ही होने देती; इसलिये हे पिताजी! अब आप गुलाब की ओर से बेफिक्र रहिए, और मुझे जिन्दगीभर के लिये बिदा कीजिए। यह मुझे मालूम होचुका है कि मेरी पूजनीया माताजी अब इस संसार में नहीं हैं, इसलिये अब व्यर्थ आप मेरी ममता में न फंसिये, मेरे छोटे भाई से भी मेरा रहस्य न कहिए और मुझे बिदा कीजिए। मैं भी इस भेद को जन्मभर अपने जी ही में छिपाए रहूंगी और अपनी छोटी बहिन गुलाब पर, मरसक इस रहस्य को प्रगट न होने दूंगी"

सैंतीसवां परिच्छेद.

बिदाई !
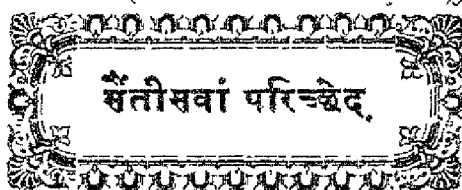
" सुखीभवाधुना भूप, त्यज मां दुःखकर्पिताम् ।
तवालये न स्थास्यामि, गच्छामि निजमन्दिरम् ॥"

(पद्मपुराणे)

निदान, कुसुम के अद्भुत जीवन और विचित्र चरित्र की कथा सुनकर बेचारे कर्णसिंह के पोढ़े कलेजे ने भी बड़ी कड़ी चोट खाई ! इससे तो कहीं अच्छा होता, यदि वे इस कहानी के सुनने के पहिलेही मर गए होते !

इसके बाद बहुत देरतक राजा कर्णसिंह रोते रहे और कुसुम भी आंसू बहाती रही। फिर राजासाहब ने एक लम्बी सांस ली और हाथ मलकर कहा,—"अफ़सोस, अफ़सोस, बेटी ! चन्द्रप्रभा ! आज तूने एक अजीब कहानी मुझे सुनाई ! अरे, कहानी क्या— यह तो सच्ची कथा है और इसकी पात्री तू मेरे सामने ही मौजूद है। हाय, मेरी पुत्री का यह भयानक परिणाम ! हा हन्त ! हा हन्त !! हा !!! चन्द्रप्रभा ! अब मैंने समझा कि, 'तूने किसलिये इनाम के रुपए और दुशाले वापस किए थे ! हा, परमेश्वर ! "

कुसुम ने कहा,—"ख़ैर, जो नारायण की मर्ज़ी थी, वही हुआ, इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं है। हां, यदि मेरी इस दुर्दशा का कोई कारण होसकता है तो वह मेरा दुर्भाग्य ही होसकता है। मेरे पूर्व जन्म के ऐसे ही पातक थे, जिनके कारण—राजा के घर जन्म लेने पर भी, मैं वेश्या के घर पली; अतएव अब आप अपने जी से सब खेद दूर करिए, मुझे बिदा कीजिए, इन बातों को भूल जाइए और मेरा हाल किसी पर विशेषकर मेरे भाइ पर भी—न जाहिर

और अपने पिता के चरणों में सिर लगाकर कमरे से बाहर हुई।

उस समय कर्णसिंह इतने ग़मगीन होरहे थे कि उन्होंने कुसुम से फिर कुछ न कहा और उसके जाने पर एक मुक्का अपने कलेजे में मार कर अपने तईं गद्दी पर डाल दिया!

कुसुम जब उस कमरे से बाहर निकली थी, तब उसने अपने भाई को तेज़ी के साथ एक तरफ़ जाते हुए देखा था। ख़ैर, उसने दूरही से अपने भाई को भी चलते-चलाते देखलिया और डेरे पर आकर और पालकी पर सवार होकर आरे की ओर कूच किया।

कुसुम के चले जाने पर घण्टों पीछे लोगों ने उस कमरे में जाकर देखा कि, 'राजा कर्णसिंह अपनी गद्दी पर बेसुध पड़े हुए हैं!' यह देख, लोगों ने घबराकर उन्हें होश कराया, और जब उनके होशो हवास दुरुस्त हुए तो उन्होंने कुसुम को तलाश कराया, परन्तु वह तो तबतक आरे चलीगई थी!

उस दिन से राजा कर्णसिंह को किसीने प्रसन्न-वदन न देखा! उनकी प्रसन्नता मानो कहीं चली गई थी और वे सांसारिक झंझटों से अलग होकर एकान्त-वास करने लग गए थे। रात दिन कुसुम की तस्वीर उनकी आंखों के आगे घूमा करती थी और अक्सर सपने में वे 'चन्द्रप्रभा' का नाम लेलेकर बर्राया करते थे। यह सब था, पर, वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुसुम का किस्सा अपने मनही में छिपाए हुए थे और उसे प्रगट करके अपने जी का बोझ हलका नहीं कर सकते थे; क्योंकि यह रहस्य ऐसा पेचीदा था कि किसी पर भी प्रगट नहीं किया जा सकता था।

कुसुम के साथ राजा कर्णसिंह की निराले कमरे में क्या क्या बातें हुई थीं, इसका भेद, केवल एक आदमी को छोड़कर, और किसी को भी नहीं मालूम हुआ। यद्यपि कुसुम और राजा कर्णसिंह अपने अपने मन में यही समझते थे कि, 'हमारी रहस्यभरी बातों को किसी तीसरे ने न सुना होगा,' परन्तु नहीं, उन बातों को एक आदमी ने अवश्य सुना था! तो वह आदमी कौन सा है? सुनिए, वह आदमी, वही कुसुम का सगा भाई अनूपसिंह है, जिसने छिपकर कुसुम की सारी जीवनी सुनली थी! फिर जब कुसुम कमरे में से जाने लगी थी तो वह भी वहांसे चलखड़ा हुआ था। कमरे से बाहर होती हुई कुसुम ने अपने भाई को तेज़ी के साथ एक तरफ

जाते हुए देखा था।

कुसुमकुमारी के भाई अनूपसिंह ने अपनी बड़ी बहिन कुसुम के शोचनीय विचित्र चरित्र की सारी बातें छिपकर सुनी थी। उन बातों का ऐसा चुटीला असर उस सुकुमार बालक अनूपसिंह के दिल पर हुआ कि उसी दिन—बल्कि उसी घड़ी उसके कलेजे में बड़े ज़ोर से दर्द पैदा हुआ और बुखार चढ़ आया। इस बात की खबर तुरन्त राजा कर्णसिंह को होगई, पर वे अपनी अभागिन लड़की चन्द्रप्रभा, उर्फ़ कुसुम के भयानक परिणाम की कहानी सुनकर इतने मर्माहत हुए थे कि उन्होंने अपने प्राणसमान पुत्र की बीमारी पर दो तीन दिनतक कुछ ध्यान ही नहीं दिया। उधर अनूपसिंह की माता का भी परलोकवास होगया था, इधर कुसुमकुमारी का हाल सुनकर पिता की यह दशा होगई थी; ऐसी दशा मे बेचारे अनूपसिंह की ओर कौन ध्यान देता! परंतु जब दो तीन दिन की ग़फलत से बीमारी बहुत ज़ोर पकड़ गई, तब राजा कर्णसिंह बहुत ही घबराए और उन्होंने बड़ी दौड़धूप करनी प्रारम्भ की।

निदान, पूरी मुस्तैदी के साथ कोशिश करने से दो अठवारे में अनूपसिंह की बीमारी बहुत कुछ दूर होगई, पर उसे अच्छी तरह तन्दुरुस्त होने मे महीनों लगे। यद्यपि अब अनूपसिंह बिलकुल अच्छा होगया था, पर अपने पिता की तरह उसके दिल में भी हरघड़ी कुसुमकुमारी का ध्यान बना रहता था।

अनूपसिंह बराबर अकेले मे रहने लगा था और हरदम कुसुमकुमारी के भयङ्कर परिणाम पर सोचविचार किया करता था। उसने कई बार कुसुम के नाम कई चिट्ठियां भी लिखी थीं, पर कुछ समझबूझ कर उन्हें कुसुम के पास नहीं भेजा और जला डाला था।

उसने कई दिन यह चाहा कि, अपने पिता पर यह बात प्रगट करदे कि, 'कुसुम का सारा रहस्य मैं सुन चुका हूं, इस लिये यह चाहता हूं, कि कुसुम को प्रकाश्य रीति से ग्रहण करलूं;' परन्तु फिर बहुत कुछ ऊंच-नीच सोच-विचार कर वह मन मारकर चुप हो बैठा था, पर हरदम कुसुम का कांटा उसके सुकुमार कलेजे मे

अँड़तीसवां परिच्छेद.
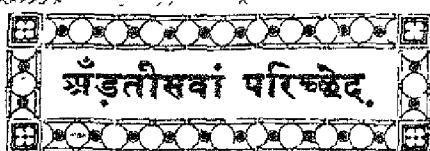
एकीकरण ।

"एकं वस्तु द्विधा कर्त्तुं, बहवः सन्ति धन्विनः ।
धन्वी स मार एवैको, द्वयोरैक्य करोति यः ॥"

(सुभाषिते.)

आज कुसुमकुमारी की खुशी का कोई ठिकाना नहीं है। जो खुशी लोगों को अपने ब्याह में होती है, उससे करोड़ दर्जे बढ़कर-खुशी कुसुम के दिल में अपने प्यारे बसन्त या अपनी प्यारी बहिन गुलाब के ब्याह से ई। और फिर ऐसा क्यों न होता, जबकि इस ब्याह की करने रने-वाली केवल कुसुम ही थी और बड़ी बड़ी कोशिशों से उसने पने मन के माफ़िक यह ब्याह कराही छोड़ा था। संसार में त्रयों के लिये सौत से बढ़कर और कोई ज्वाला नहीं है, पर इस यानक आग को भी कुसुम ने बर्फ़ की तरह ठढी बना डाला, ौर अपनी-पालन करनेवाली दुष्टा चुन्नी के भयानक पापों का ायश्चित्त गुलाब के साथ बसन्त का विवाह कराकर कर डाला; योंकि भैरोसिंह—नहीं, नहीं. मोतीसिंह—की जिस दौलत को न्नी ने बहुत ही बुरी तरह हथिया लिया था, उस दौलत को मोती-सह के किसी नज़दीकी रिश्तेदार के हवाले करना कुसुम ने नासिब समझा था, गुलाब के अलावे मोतीसिंह का कोई करीबी ातेदार था नहीं, इसलिए उसी को मातीसिंह की सारी सम्पत्ति दे ालना कुसुम ने बहुत मुनासिब समझा,-और उसने इस बढ़ियां ानक बना देने के लिये भगवान को कोटि कोटि धन्यवाद या; वह बानक कैसा बना, इस पर ज़रा ध्यान तो दीजिए,— ोरोसिंह उर्फ मोतीसिंह की दौलत बड़े अन्याय से चुन्नी ने थिया ली, चुन्नी के डूब मरने पर वह दौलत कुसुम के हाथ लगी, फर कुसुम ने उस दौलत को बसन्त के नाम लिख-पढ़ दिया; सके बाद जब भैरोसिंह की जीवनी से यह बात मालूम हुई कि, ह भैरोसिंह नहीं, बल्कि इस दौलत के वाजिबी हक़दार खुद

मोतीसिंह ही हैं, तब कुसुम ने उनकी दौलत उन्हें लौटानी चाही, पर यह बात जानकर उन्होंने वह दौलत कुसुम ही को दान करदी; और खुद अपनी जान देदी; इस तरह वह दौलत फिर कुसुम या बसन्त के पास ही रह गई। इधर तो यह सब हुआ और उधर कुसुम अपनी एक क्वारी बहिन के मौजूद रहने का हाल सुनकर निहायत खुश हुई और उसने मन ही मन यह बिचार किया कि, 'मेरे लड़के-बाले तो समाज में स्थान पावेंगेही नहीं, इस लिए ऐसा उपाय करना चाहिए कि मुझे तो कोई औलाद हो ही नहीं, और मेरे प्राणपति बसन्तकुमार के पुरखों का पिण्डा-पानी भी गारत न होजाय; पर यह बात तभी हो सकती है, जब बसन्तकुमार की दूसरी शादी करदी जाय। यदि ऐसा ही करना पड़े तो इस शादी के लिये मेरी हक़ीक़ी बहिन से बढ़कर दूसरी कौन लड़की होसकती है! यदि अपनी बहिन के साथ बसन्तकुमार की शादी मैं करा सकूंगी तो फिर वैसी हालत में, मैं अपनी सहोदरा बहिन के साथ सौतिया-डाह भी न करूंगी और मेरी बहिन के पेट से जो बच्चे पैदा होंगे, वे भैरोसिंह या मोतीसिंह की दौलत के वाजिबी हकदार होकर उसका भोग भी करेंगे, इस प्रकार एक दिन भैरोसिंह की सम्पत्ति ठीक ठिकाने से भी लगजायगी।' इन्हीं सब बातों पर खूब अच्छी तरह सोच-बिचार करके कुसुम ने अपनी प्यारी बहिन गुलाब के साथ अपने प्राणपति बसन्त का ब्याह कराया था, यही कारण था कि आज उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था।

आरे आकर कुसुम ने बड़े धूमधाम से आरे के रईसों की ज्याफत की, जिसमें श्रीमान् बाबू कुंवरसिंह भी पधारे थे। इसके अलावे शहर के सब पण्डितों को पत्तल, कपड़े, और रुपये बांटे गए थे, कङ्गलों को खाने और कपड़े दिए गए थे; सारे शहर में भाजी-बायने बांटे गए थे; और बड़ी धूमधाम के साथ तीन दिनों तक ज्योनार और महफ़िल की गई थी। इन सब कामों को कुसुम ने ऐसे हौसले के साथ किया कि जिसे देख कर लोग दांतों तले अंगुली दबाकर रह गए!

इस महफिल में कुसुम नहीं नाची थी बल्कि यों समझना चाहिए, कि फिर वह कभी भी नहीं नाची।

उनचालीसवां परिच्छेद.

त्र्यम्बक.

"न देवे देवत्वं कपटपटवस्तापसजना,
जनो मिथ्यावादी विरलतरवृष्टिर्जलधरः।
प्रसङ्गो नीचानामवनिपतयो दुष्टमतयो,
जना भ्रष्टा नष्टा अहह कलिकालः प्रभवति ॥"

(सुभाषिते)

इसी जलसे में एकदिन कुसुम ने अपने कुल बेशक़ीमत, गहने पहरा कर नई दुलहिन अर्थात् अपनी बहिन गुलाब देई का श्रृङ्गार किया और उसे अपने प्रानप्यारे बसन्त के बगल में बैठा कर बड़े प्रेम से उन दोनों का गाल चूम लिया।

इस पर बसन्त ने हँसकर यों कहा,-" क्यों! अबतो तुम्हारी देली मुराद पूरी हुई न ?"

कुसुम ने मुस्कुराकर कहा,—"जी हां, आपकी इनायत से!"

बसन्त ने कहा,-"तो फिर अब आज से हम तुम दो हुए न ?"

कुसुम ने कहा,-"नहीं, बल्कि आज हम-तीनों मिलकर एक हुए!"

एक दिन कुसुमकुमारी जब तीसरे पहर सोकर उठी और मुंह-हाथ धोकर अपने बाग़ में चहलक़दमी करने लगी थी, उस समय बसन्तकुमार ने उसके पास पहुंच कर यों कहा था,—" तुम ज़रा कमरे में चलो, क्योंकि कोई बहुत ज़रूरी पोशीदा बात कहनी है।"

यह सुन और मुस्कुराकर कुसुमकुमारी ने बसन्तकुमार का हाथ अपने हाथ में लेलिया और कहा,—"क्यों, ख़ैरियत तो है, मेरी बहिन के साथ कुछ लड़-झगड़ तो नहीं आए हो ?"

बसन्त ने कहा,—"नहीं, यह बात नहीं है। इस समय मैं कुछ और ही बात कहा चाहता हूं और वह यह है कि तुम्हें खोजता हुआ वह जगन्नाथी पण्डा त्र्यम्बक यहां आपहुंचा है। तुमको खोजता हुआ वह मकान पर गया था पर जब मैंने उसकी बातों से उसे पहिचाना, तब उसे अपने साथ यहां इसलिये ले आया कि जिसमें

तुम्हारी बहिन उसके मुंह से तुम्हारे बारे की कोई बात न सुन सके; क्योंकि वह (तुम्हारी बहिन) उस पण्डे को देखते ही उसके सामने चली आई थी और उस पण्डे के साथ उसने मामूली बातें करनी शुरू करदी थीं; यह देख मैं बहुत ही घबराया और तुम्हारी बहिन को किसी काम में उलझाकर उस पण्डे को अपने साथ यहां ले आया।"

यह एक ऐसी ताज्जुब पैदा करने वाली बात थी कि जिसे सुनकर कुसुमकुमारी बहुत ही चकराई, क्योंकि उसे इस बात की सपने में भी उम्मेद न थी कि, 'इस ज़िन्दगी में कभी उस पण्डे (त्र्यम्बक) के साथ मुलाकात नसीब होगी !' इसी अनहोनी बात को आज सच हुई जानकर कुसुम ने एक ठंढी सांस भरी और उदासी से बसन्तकुमार की ओर देखकर पूछा,—"क्या, वाक़ई तुम उस पण्डे को साथ लाए हो ? "

बसन्त,—"हां, इसे तुम दिल्लगी न समझो। सचमुच मैं उसे बाग़ के फाटक पर ठहराकर तुमसे उसके आने की इत्तिला करने आया हूं।"

पाठकों को समझना चाहिए कि जबसे बसन्तकुमार का ब्याह हुआ था, तबसे कुसुम ने अपना मकान तो गुलाब के रहने के लिये आरास्ता कर दिया था और आप अपने बाग़ में रहने लगी थी। यही सबब था कि बसन्तकुमार गुलाब के साथ घर रहा करता था और रोज़ किसी न किसी वक़्त एक बार आकर कुसुम से मिल जाया करता था। आज कुछ परमेश्वर की दया थी कि बसन्तकुमार त्र्यम्बक के आने के समय घर पर मौजूद था। वह कुसुम के यहां आने की तयारी करके घर से निकला ही चाहता था कि त्र्यम्बक वहां पहुंच गया था और अपने बाप के पण्डे को देखकर गुलाब ने उसके साथ मामूली ढंग की बातें करनी शुरू करदी थीं; यदि बसन्तकुमार की ग़ैरमौजूदगी में त्र्यम्बक की मुलाक़ात गुलाब से हो जाती तो मुमकिन था कि वह गुलाब के आगे कुसुम का कुछ न कुछ पोशीदा हाल कह बैठता; पर जब बसन्तकुमार को यह मालूम होगया कि, 'कुसुम की सारी बरबादी की जड़ यही त्र्यम्बक है ' तब फिर उसने उस (त्र्यम्बक) को गुलाब के साथ बातें करने का ज़ियादा मौक़ा न दिया और उसे अपने साथ लेकर

घर से कूच किया।

राजा कर्णसिंह के साथ कुसुम की जो कुछ बातें हुई थीं, उन का हाल बसन्तकुमार कुसुम से सुन चुका था; यही सबब था कि त्र्यम्बक का परिचय पाते ही वह चौकन्ना हो गया था और उसे चट-पट कुसुम के पास ले आया था।

कुसुमकुमारी ने कहा,—"वह इतने दिनों के बाद आज किस लिये मेरे पास आया है?"

बसन्त,—"यह बात तो तभी मालूम होगी, जब तुम उसके साथ बात-चीत करोगी। हां, इतना हाल उसकी ज़बानी मुझे मालूम हुआ है कि वह तुम्हारे पिता से बहुत ही फटकारा जाकर यहां तुमसे अपने अपराधों की क्षमा मांगने आया है।"

कुसुम,—"ख़ैर, अच्छी बात है। मैं उससे ज़रूर मिलूंगी, क्योंकि एकबार उससे मिलने की मुझे बड़ी ही चाह थी, सो आज भगवान् ने पूरी की।"

यों कहकर वह बसन्तकुमार का हाथ पकड़े हुई कमरे में जाकर बैठ गई और अपने जमादार बेचूसिंह को बुलाकर उसने यों कहा कि, 'फाटक पर जो पण्डाजी खड़े हुए हैं, उन्हें मेरे पास भेज दो और इस बात का ध्यान रक्खो कि जब तक मैं किसी नौकर या मजदूरनी को न बुलाऊं, तब तक इस कमरे के अन्दर कोई न आने पावे; क्योंकि उन पण्डाजी के साथ मैं कुछ पोशीदा बातें करूंगी।'

यह सुन और—"जो हुक्म" कहकर बेचूसिंह चला गया और थोड़ी ही देर में उस कमरे के दरवाज़े पर आकर एक बदशकल और मैला-कुचैला कोढ़ी खड़ा हो गया! उसके सारे बदन से कोढ़ फूट निकला था, हाथ-पैर की सारी उंगलियां गल गई थी और उसके बदन से निकलती हुई बदबू की भभक इस तेज़ी के साथ चारो तरफ़ उड़रही थी कि वह कमरा मारे दुर्गन्ध के भर उठा था! ऐसे मूर्तिमान् पाप के अवतार को देख कुसुम और बसन्त के सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए और कुछ देर तक वे (कुसुम और बसन्त) दोनों, एक दूसरे की ओर हैरत से निहारते रह गए!

इसके बाद कुसुम ने अपने पानदान में से गुलाब की रूह वाली शीशी निकाली और उसका ढकना खोलकर उसे एक तरफ रख दिया। इसके बाद उस कोढ़ी की तरफ मुखातिब होकर कहा

"तुम कौन हो ?"

यह सुन और कुसुम तथा बसन्त की ओर बार-बार देखकर उस कोढ़ी ने कहा,—"मेरा नाम त्र्यम्बक है और मैं श्रीजगन्नाथ जी का पण्डा हूं।"

कुसुम ने कहा,—"अहा, आप ही जगन्नाथजी के पण्डा हैं ?"

त्र्यम्बक,—"हां, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

कुसुम ने कहा,—"तो, आइए, कमरे के अन्दर आकर बिराजिए।"

यह सुन और अपने मैले कपड़ों की ओर देखकर त्र्यम्बक ने कहा,—"नहीं, मैं इस हालत में इस कमरे के अन्दर आने काबिल नहीं हूं।"

कुसुम ने कहा,—"खैर, तो मैं बाग़ के चबूतरे पर चलती हूं।"

यों कह कर और गुलाब की शीशी अपने हाथ में लेकर कुसुम बसन्त के साथ उठ खड़ी हुई और बाग के चबूतरे की तरफ़ चली। तबतक एक खिदमतगार ने उसके इशारे से उस चबूतरे पर कई कुर्सियां बिछादी थीं।

निदान, वहां जाकर कुसुम ने एक कुर्सी पर बैठजाने के लिये त्र्यम्बक को इशारा किया और आप बसन्त के साथ अलग अलग कुर्सी पर—मगर ज़रा त्र्यम्बक से दूर हटकर—बैठ गई।

कुछ देर तक दो चार मामूली बातों के होजाने के बाद कुसुम ने पण्डाजी की ओर देखा और कहा—"जहांतक मैं ख़याल करती हूं, मेरे ध्यान में यही बात आती है कि आज के पहिले शायद हमारा आपको देखा-भाला नहीं हुई थी; इसलिये मैं यह जानना चाहती हूं कि इस समय आपने यहांतक आने का कष्ट किस लिए उठाया ?"

कुसुम की इस ढंग की बातें सुनकर त्र्यम्बक ने अपना सिर नीचा कर लिया, और कुछ देर तक ग़ौर करने के बाद यों कहा,—"तुमने जो अभी यह कहा कि, 'आज के पहिले हमारी-आपकी देखाभाली नहीं हुई थी,' यह बात ठीक नहीं है; बल्कि तुम जब छः महीने की थीं, तब मेरी हिफ़ाज़त में आई थीं; और जब छः या सात बरस की हुई थीं, तब—मेरे या अपने दुर्भाग्य के कारण—मुझसे अलग हुई थीं। अब मैं तुम्हारे उस दूसरे सवाल का यों जवाब देता हूं कि मैं इस समय किसलिए तुम्हारे पास आया हूं 'मरते-

हुए, मैं अपने यजमान और तुम्हारे पिता–राजा कर्णसिंह के यहां गया था, पर वहां जाने पर मैंने उनकी ज़बानी एक अजीब कहानी सुनी और बड़ी भारी फटकार भी खाई! मुझे इसबात का सपने में भी ख़याल न था कि, 'जिस स्त्री ने अपने को रानी बतलाकर तुम्हें मुझसे लिया था, वह दर असल रण्डी थी!' यदि ऐसा मैं जानता तो कभी, भूलकर भी, उसके हवाले तुम्हें न करता। उस स्त्री ने अपने को बिहार के एक००० परगने की रानी बतलाया था, पर जब मैं तुम्हें बिदा करने के कुछ दिनों बाद उस परगने में गया और वहां जाकर मैंने उस रानी का पता लगाया,–जिसने कि अपना नाम मुझे चन्द्रमुखी बतलाया था,–तो मुझे कुछ भी पता न लगा। तब मैंने यह समझा कि, 'तुम्हारी या मेरी किस्मत शायद फूटगई और तुम किसी खोटी औरत के पल्ले पड़गई!' इसके बाद भी, इधर-उधर, जहां जहां, कि मैं गया-आया, बराबर तुम्हारा पता लगाता रहा; पर सब बेकार हुआ! हां, इतना पाप मेरा अवश्य है कि मैंने देवोत्तर-सम्पत्ति पर हाथ डाला था और उसकी एवज़ में उस शैतान औरत से दोहज़ार रुपये भी लिए थे, जिसे अब मैंने तुम्हारे पिता के सामने भी मंजूर किया है और इस समय तुम्हारे आगे भी सकारता हूं; इसमें चाहे जो कुछ तुम समझो! अब यहां पर मैं यह बात भी साबित कर दूंगा और इस पर खुद तुम्हारे मुंह से "हां" कहला लूंगा कि, 'तुम्हें उस औरत के हवाले करने में मेरी कोई बदनीयती नहीं थी और मैं यह नहीं जानता था कि, 'वह औरत रण्डी थी!' यदि तुम्हारी तरफ़ से मेरी नीयत ख़राब होती तो मैं तुम्हें बिदा करते समय तुमसे न तो तुम्हारा कोई हाल ही कहता और न तुम्हारे पते-ठिकाने-वाला तावीज़ ही तुम्हारे हाथ धरता। शायद तुम्हें यह बात याद होगी कि मैंने तुम्हें राजकन्या बतलाया था और इसीलिये एक रानी के हवाले किया था। मैंने उस समय एक चांदी का तावीज़, जो कि अंगूठे के बराबर मोटा था और जिसकी शक्ल ढोलक की सी थी, तुम्हारे गले में डालदिया था। इसके अलावे एक चांदी की तख़्ती भी तुम्हें दी थी, जो कि चार अंगुल लम्बी और उतनी ही चौड़ी भी थी। उस समय मैंने तुमसे यह बात भी शायद जरूर कही थी कि 'जब तुम सयानी होना तब इस ढोलक की सकल वाले यन्त्र को तोड़कर अपना सच्चा हाल

जान लेना; क्योंकि इसके भीतर तुम्हारा पूरा पूरा हाल भोजपत्र पर लिखकर मैंने रख दिया है ।' अब तुम खुद ही इन्साफ़ करो और यह बतलाओ कि मैंने जानबूझ कर तुम्हारे साथ क्या बुराई की ? यदि मेरी नीयत बुरी होती और मैं तुम्हारे साथ बुराई करना चाहता होता तो तुम्हारा हाल पूरापूरा लिखकर उस तावीज़ में क्यों रख देता, और सयानी होने पर उसकी मदद से अपना कुल हाल जान लेने के वास्ते तुम्हें सलाह क्यों देता ? मैं यह जानता था कि तुम एक राजा की लड़की हो, इसलिये मुझ सरीखे कङ्गाल के घर तुम्हारे दिन कैसे कटेंगे ! इसलिये जब एक रानी ने तुम्हें अपनी बेटी की तरह लाड़-प्यार के साथ रखना मञ्जूर किया, तब मैंने खुशी से तुम्हें उसे सौंप दिया । इसके बाद जब बहुत कुछ खोज-ढूंढ़ करने पर भी तुम्हारा कुछ पता न लगा और तुम्हारे पिता ने तुम्हारे बारे में मुझसे पूछा, तो लाचार होकर डर के मारे मैंने उनसे यह कह दिया कि, 'आपकी लड़की चन्द्रप्रभा मर गई !' यह बात मैंने बेशक सरासर झूठ ही कही थी, क्योंकि सिवाय इसके, उसवक्त तुम्हारे बारे में मैं और क्या कह सकता था ? देखो, एकतो मैंने देवता की सम्पत्ति (तुम) को दूसरे के हवाले किया था, और दूसरे उस सम्पत्ति पर (तुमपर) दो हज़ार रुपए घूंस के लिए थे; इनके अलावे जबकि तुम्हारा मुझे कुछ पता ही नहीं लगा था, तब फिर मैं सिवाय झूठ बोलने के, और कर ही क्या सकता था ? चन्द्रप्रभा ! मैं पापी तो अवश्य हूं और मेरे पापों का दण्ड भी मुझे श्रीजगदीश ने दे दिया है, जिसे तुम इस समय अपनी आंखों से देख भी रही हो,—परन्तु फिर भी इतना मैं श्रीजगन्नाथजी की साक्षी देकर कह सकता हूं कि, 'तुम्हें उस स्त्री के हवाले करने के समय मेरे दिल में कोई बुरा खयाल न था, और मैंने जान बूझकर तुम्हें किसी रण्डी के हवाले नहीं किया था ।' मैं अभी तुम्हारे पिताजी से मिला था; उनसे तुम्हारी सारी कहानी मैंने सुनी थी; जिसे सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, परन्तु फिर भी इस बात की मुझे बड़ी खुशी हुई कि मैंने जो तुम्हें वह तावीज दिया था,—जिसमें कि तुम्हारा सारा हाल लिखा हुआ था,—उसने तुम्हारे साथ बहुत बड़ी भलाई की; क्यों कि यदि मैंने तुम्हें उस पर्चे को न दिया होता तो तुम न तो अपना पूरापूरा हाल ही जान सक्ती और न अपना धर्म ही किसी तरह

बचा सकती। बस, इससे बढ़कर और कौन सी ऐसी बात है, जिसे मैं इस समय अपनी सफाई के बाबत तुम्हारे आगे पेश करूं ?"

त्र्यम्बक की साफ़, सच्ची और खरी बातें,—जो उसने खुले दिल से कही थी,—सुनकर कुसुम सचमुच बहुत ही खुश हुई, उसके दिल का सारा मलाल जाता रहा और उसने बड़ी सादगी के साथ त्र्यम्बक से कहा,—"बेशक, इस समय आपने जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल सही है; पर फिर भी मैं तो यही कहूंगी कि, देवोत्तर सम्पत्ति दूसरे को देडालनी या उसे किसीके हाथ बेंच डालना बहुत ही बुरा है।"

त्र्यम्बक ने कहा,—"यह कौन कहता है कि बुरा नहीं है ? बुरा क्या-इसे तो अब मैं बहुत ही बुरा समझता हूं; और इसके बारे में तो मैं अभी तुमसे यह कही आया हूं कि, 'इतना पाप मेरा अवश्य है कि मैंने देवोत्तर-सम्पत्तिपर हाथ डाला था और उसकी एवज़ में उस शैतान औरत से दो हज़ार रुपए लिए थे।' और यह बात भी मैं अभी तुमसे कह आया हूं कि, 'मैं तो अवश्य ही पापी हूं और मेरे पापों का दण्ड मुझे श्रीजगदीश ने दे भी दिया है; जिसे तुम इस समय अपनी आंखों से देख भी रही हो।' इसके अलावे, जब कि मैंने श्रीजगन्नाथजी को साक्षी देकर तुम्हारे आगे इस बात की कसम भी खाई है कि, 'तुम्हें उस स्त्री के हवाले करने के समय मेरे दिल में कोई बुरा ख़याल न था, और मैंने जान बूझ कर तुम्हें किसी रण्डी के हवाले नहीं किया था,' तब फिर तुम उन बातों को अब नाहक क्यों दोहराती हो ? हां, मैंने घोर पाप किया है, मैं पापी हूं, मैं अपराधी हूं, और मैं इस समय तुम्हारे शरण में आया हूं, इसलिए अब यदि तुम मुनासिब समझो तो अपने शरण में आए हुए एक दीन हीन पापी का (मेरा) सारा अपराध क्षमा करो और सच्चे जी से इसे (मुझे) मांफ़ी दे दो। तुम यही समझ लो कि तुम्हारी किस्मत में भी यही लिखा था और मुझे भी यही कर्मभोग (अपने बदन के कोढ़ की ओर इशारा कर के) भोगना बदा था; इसलिये जो कुछ होगया है, वह तो अब लौट कर आसकता ही नहीं, तो फिर नाहक अफ़सोस करने से क्या हासिल होगा ! ऐसी

मैं भी तुम अपने भाग्य को सराहो कि मेरे किए हुए तब्बी और तावीज की मदद से तुम अपने सारे हाल का जान सकी और

अपना धर्म बचा सकी। ”

त्र्यम्बक की बातों से कुसुमकुमारी की आंखों से चौधारें आंसू बहने लगगए थे, बसन्त की आंखें भी नम होगई थी, और वह पण्डा (त्र्यम्बक) भी बहुत उदास हुआ था। थोड़ीदेर के बाद कुसुम खुद-बखुद शान्त हुई और उसने त्र्यम्बक की ओर देख बड़ी दिलेरी के साथ कहा,—"पण्डाजी! बेशक, आपकी बातों से इस वक्त मैं निहायत खुश हुई हूं, और इस बात को तो मैं शुरू ही से मानती आती हूं कि, 'मेरे लिये आपका खयाल कोई बुरा न था और आपने अपने जान मुझे एक रानी के ही सुपुर्द किया था।' क्योंकि अगर आप मुझसे कुछ दुश्मनी रखते होते तो मुझे वह तख्ती और तावीज़ क्यों देते और उनके ज़रिये से अपने हाल जानलेने की मुझसे ताकीद ही क्यों करते! इसलिये आपके इतने उपकार को मैं शुरू ही से मानती आती हूं और इस उपकार के बदले में आज मैं आपके साथ यह सलूक करती हूं कि आपके आज्ञानुसार आपको सच्चे जी से क्षमा करती हूं और साथ ही श्रीजगदीश से भी यह बिनती करती हूं कि वे भी अब आपके सब अपराधों को क्षमा करके आप पर अपनी दया दृष्टि करें। ”

यह सुनतेही वह पण्डा कुसुम के पैरों पर गिरा ही चाहता था कि कुसुम तेज़ी के साथ उठकर पीछे हट गई और बोली,—"पण्डाजी, अब आप शान्त होइए, स्वस्थ होकर बैठिए और इतने उतावले न होइए। आप हमारे पितृकुल के पूज्य पण्डा हैं, इस लिये आप मेरे भी पूजनीय हैं; इसके अलावे जब मैं छः महीने की थी, तबसे सात बरसलों आपने मुझे पाला-पोसा था, इस नाते से भी आप मेरे पिता के समान हैं; इस लिए अब आप पिछली कुल बातों को भूल जाइए। आप ज़रा स्वस्थ होकर बैठिए, तो मैं और भी कुछ बातें आपसे पूछूं। ”

कुसुम की बातें सुनकर वह पण्डा बालकों की नाईं ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा और कुसुम तथा बसन्त के बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर आधे घण्टे के बाद चुप हुआ और कहने लगा,—"बेटी, चन्द्रप्रभा! तू मानुषी नहीं, बरन साक्षात् देवी है। तब तो तुझमें इतनी सहनशीलता और नम्रता भरी हुई है! अतएव तू सचमुच देवी है; तू श्रीजगदीश की प्यारी सन्तान है और तू मुक्तिमती

क्षमा है; इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरी बाईं बगल वाला चक्र है। ”

यह एक ऐसी बात इस मौके पर त्र्यम्बक ने कही कि जिसे सुन कुसुम का खयाल किसी दूसरी तरफ़ खिंच गया और कुछ देर तक वह सिर झुकाए हुई कुछ सोचती रही । इसके बाद उसने अपना सिर उठाकर त्र्यम्बक की ओर देखा और यों कहा,—“पण्डाजी, मैं आपसे यह पूछा चाहती हूं कि यह “देवदासी” प्रथा कबसे चली और किसके द्वारा चलाई गई ? ”

त्र्यम्बक,—“इस विषय में मैं केवल इतना ही जानता और कह सकता हूं कि यह प्रथा बहुत पुरानी है। बस, इसके अलावे यह मैं नहीं जानता कि यह कबसे चली या किसके द्वारा चलाई गई। ”

कुसुम,—“अच्छा, आप यह बतला सकते हैं कि अब आप इसे अच्छी समझते हैं, या बुरी ? ”

त्र्यम्बक,—“श्रीजगदीश ने मुझे घोर दण्ड देकर मेरी आंखें खोलदी हैं, इस लिए देश, काल और पात्र के अनुसार अब मैं इस प्रथा को इस घोर कलिकाल में प्रचलित रखना ठीक नहीं समझता चाहे यह चाल कभी चलाई गई हो, और चाहे इसके चलाने में कोई अच्छी बात सोची गई हो, पर अब जैसा विपरीत समय आपहुंचा है, उसे देखकर मैं यही उचित समझता हूं कि अब यह प्रथा बन्द की जानी चाहिए। ” (१)

कुसुम,—“यह बड़ी खुशी की बात है कि अब आपने इस चाल को बुरी समझा है। ”

त्र्यम्बक,—“क्यों न समझूं, जब कि मैं इसका दण्ड भोग रहा हूं। मुझे आशा है कि तुम्हारे परिणाम को देख कर तुम्हारे पिता राजा कर्णसिंह ऐसे उत्तेजित हुए हैं कि, वे इस प्रथा को बिना बन्द कराए, कभी चैन न लेंगे। मैं भी यही चाहता हूं कि अब इस घोर कलिकाल मे यह सत्यानाशिनी प्रथा बन्द होजाय तो अच्छा

---

(१) केवल श्रीजगदीश ही नहीं, वरन दक्षिण भारत में भी यह देवदासी प्रथा किसी ज़माने में बड़े ज़ोरशोर से ज़ारी थी, और अब भी बिल्कुल बन्द नहीं हुई है सरकार यदि इस प्रथा को बन्द [illegible] ओं का बड़ा उपकार हो

हो ; क्योंकि धर्म की व्यवस्था देश, काल और पात्र के अनुसार ही की जाती है, इसीलिए शास्त्रों में प्रत्येक युग में धर्म की भिन्न भिन्न व्यवस्थाएं कीगई हैं।"

इसके बाद कुसुम ने त्र्यम्बक के साथ इस देवदासी प्रथा पर उसी प्रकार घोर तर्क-वितर्क किया, जैसा कि उसने अपने बाप के साथ किया था। कुसुम का यह 'तर्कवाद' एकबेर लिखा जाचुका है, इसलिये फिर दुबारे उसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। इस पुस्तक के पढ़नेवालों को चाहिए कि यदि उनकी इच्छा हो तो वे कुसुम के उस 'तर्कवाद' को फिर एक बार दुहराकर पढ़ डालें।

निदान, कुसुम के विलक्षण और अद्भुत तर्कवाद को सुनकर वह पण्डा बहुत ही चकित और प्रसन्न हुआ। उसने कुछ कहने के लिये ज़बान खोली ही थी कि कुसुम ने कहा,—"क्यों, पण्डाजी ! भला, यह तो बताइए कि किसीको अपने बेटा-बेटी पर क्या अधिकार है कि वह उन (बेटी-बेटों) का जो चाहे, सो करडाले?"

इस विचित्र बात को सुनकर वह पण्डा हंसा और कहने लगा,—"वाह, यह तो बड़ा बढ़िया प्रश्न है! बल्कि तुम्हारे समान कोई कोई ऐसा भी प्रश्न कर सकते हैं कि,—'किसीको बेटा-बेटी पैदा करने का ही क्या अधिकार है !!!' मगर ख़ैर, सुनो,—जैसा अपने लड़कों पर उनके माता-पिता का पूरा पूरा अधिकार है, वैसेही लड़कों का भी अपने माता-पिता की सम्पत्ति पर पूरा पूरा अधिकार है। पिता स्वयं ही आत्मज-रूप से प्रगट होता है, (१) इसीलिये पुत्र को 'आत्मज' और कन्या को 'आत्मजा' कहते हैं। यह सारा संसार परमात्मा की विभूति है; इसमें जो कुछ है, वह सब परमेश्वर का ही है; इतने पर भी जो वस्तु परमेश्वर से मांगकर पाई जाती है, वह यदि उसी परमेश्वर को,—"त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये"—कहकर समर्पण करदी जाय, तो, इसमें अपराध, पाप, या दोष क्या है ? सभीको यह अधिकार है कि वह परमेश्वर को सच्ची भक्तिभावना से 'सर्वस्व-समर्पण' करदे; तब राजा-कर्णसिंह ने जो श्रीजगदीश से प्रार्थना करके तुम्हें पाया और तुम्हें श्रीजगदीश की वस्तु समझकर भक्तिभाव से तुमको श्रीजगन्नाथजी

(१) वै जायते पुत्र इति वेदानुशासनम्

के अर्पण कर दिया तो इसमें उन्होंने अनुचित क्या किया ? परन्तु हां, बात यह है कि,—देश, काल और पात्र का विचार करके ही धर्माचरण करना चाहिए। बस, इस बात पर तुम्हारे पिता ने कुछ भी ध्यान न दिया, यही उनका अपराध है। उन्हें उचित था कि जैसे उन्होंने तुम्हें जगदीश को भेंट किया था, वैसे सदा तुमपर ध्यान रखते; यदि ऐसा वे करते तो तुम्हारी यह दशा कदापि न होने पाती और मैंभी इस महा उग्र दण्ड का भागी न बनता। अस्तु, क्या किया जाय,—जो भवितव्य है, वह बिना हुए, नहीं रहता।"

यह बात सुनकर कुछ देर तक कुसुम चुप रही, फिर उसने कहा,—"आपका यह कहना सच है कि, 'होनी हुए बिन रहती नहीं है।' परन्तु फिर भी जी नहीं मानता और यह कहना ही पड़ता है कि, 'जैसे यह संसार बड़ा विलक्षण है, वैसे ही इसके बनानेवाला परमेश्वर भी बड़ा ही विलक्षण है!!! क्यों कि उसने तो सब बोझ संसारी जीवों पर लाद कर अपना छुटकारा किया कि, 'जो जैसा करै, वह वैसा पावै,' पर उस (ईश्वर) से यह कोई नहीं पूछता कि, 'भगवन्! फिर तुमने इस प्रपञ्च को रचा ही क्यों?' हाय! रचे तो सब कुछ ईश्वर, और फलभोग करैं, बेचारे जीव !!! यह कैसा तमाशा! यह कैसा अन्धेर और यह कैसा न्याय है !!!"

अब हम यहां पर यह लिखते हैं कि कुसुम के इस विलक्षण और अद्भुत तर्कवाद को सुनकर वह पण्डा बहुत ही चकित हुआ और बोला,—"चन्द्रप्रभा! तू श्रीजगदीश की ख़ास सम्पत्ति है, इसका एक प्रमाण मुझे और भी मिला! वह यह है कि यदि तुझे श्रीजगदीश ने अङ्गीकार न किया होता तो तू अपनी बाईं बगल में श्रीजगदीश के चक्र की छाप लेकर माता के पेट से क्यों पैदा होती और तेरी ऐसी विमल और प्रखर बुद्धि ही कैसे होती? इसलिये मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि तुझे श्रीजगदीश ने अवश्य ही अङ्गीकार किया और अपना प्रसाद (तुझे) पूर्व जन्म के कर्मानुसार श्रीयुत बाबू बसन्त-कुमार को दिया। ये बातें तो अवश्य ही होनेवाली थीं, जो अन्त में हुईं भी; परन्तु इस बीच में, मैंने जो, बिना अच्छी तरह जांच किए, तुझे एक वेश्या के हाथ बेच डाला और देवोत्तर-सम्पत्ति पर हस्तक्षेप करने के अलावे कन्या विक्रय का भी महापापकिया, इसका दण्ड मुझे हाथों हाथ मिला! परन्तु किया क्या जाता क्योंकि

अपने अपने कर्मों के अनुसार, मुझे या तुझे, जो कुछ फल भोगने पड़े थे, वे आखिर भोगे क्योंकर जाते ? जहां तक मैंने इन बातों पर विचार किया है, मुझे यही सिद्धान्त जान पड़ा है कि यह जगत् कर्ममय है और अपने अपने कर्मानुसार जीव जन्म-जन्मान्तरों में नाना प्रकार के कर्मभोग भोगा करते हैं। इन कर्मभोगों में बहुत से लोग प्राक्तन-जन्म-संस्कार-वश परस्पर मिलजाते हैं और इसी प्रकार इस कर्ममय जगत में अपने अपने सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्मों का फल भोगा करते हैं। यह कर्मभोग सनातन से चला आ रहा है और 'धारावाही न्याय' के अनुसार बराबर अनन्तकाल-पर्यन्त चलता रहेगा। इन कर्मबन्धनों से वे ही छुटकारा पासकते हैं, जो निष्कामकर्म करें,—अर्थात् इस संसार में रहकर जो कुछ कर्म वे करें, उनमें न तो आसक्त हों, और न उनके फल की आकांक्षा रक्खें; वरन जो कुछ वे करें, उसका फल परमेश्वर को समर्पित करदें। ऐसे निष्ठावान जो कर्मयोगी हैं, उन्हींका उद्धार इस कर्ममय जगत से होसकता है, दूसरे का कदापि नहीं होसकता।"

त्र्यम्बक के अद्भुत पाण्डित्यपूर्ण इस कर्मवाद को सुनकर कुसुम-कुमारी दङ्ग होगई और देर तक उसकी ओर निहारती रही!

कुसुम के चित्त की उस समय जैसी अवस्था थी, उस पर त्र्यम्बक ने अच्छी तरह ध्यान दिया और यों कहा,—"चन्द्रप्रभा! जगदीश्वर की कृपा से तू अत्यन्त बुद्धिमती पैदा हुई है, इसलिये मैं यहां पर इस कर्ममय जगत् के कर्मों की विलक्षणता का कुछ दृष्टान्त तुझे देता हूं; उसे तू ध्यान-पूर्वक सुन और उसपर भलीभांति विचार कर। यदि तू मेरे दिए हुए दृष्टान्त पर अच्छी तरह ध्यान देगी, तो तुझे यह बात भलीभांति विदित होजायगी कि, 'यह कर्ममय संसार बड़ा विलक्षण है और इसमें न कोई किसी का शत्रु है, न मित्र, और न उदासीन;' बस, गुसाईं तुलसीदासजी ने बहुत ही सही कहा है कि, 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस किया सो तस फल चाखा।' और कविवर वृन्द ने भी क्या अच्छा कहा है कि,—'को दुख, को सुख देत है, देत कर्म झकझोर। उरझै सुरझै आपुही, धुजा पवन के जोर'॥"

इतना कहकर थोड़ी देर के लिये वह (त्र्यम्बक) ठहर गया और फिर यों कहने लगा, 'अब तू मेरे दृष्टान्तों पर जरा ध्यान

तो दे! सुन,—तेरे पिता निःसन्तान थे, और उन्हें सन्तान की बड़ी चाहना थी; ऐसी अवस्था में लोगों के बहुत कुछ कहने-सुनने पर उन्होंने श्रीजगदीश से यह प्रार्थना की थी कि, 'यदि मुझे कोई सन्तति होगी, तो उसे मैं आपके चरणारविन्दों में भेट करदूंगा।' इस पर तुझे खूब ध्यान से यह बात बिचारनी चाहिये कि तेरे पिता की यह प्रार्थना सच्चे हृदय की थी, जिसे श्रीजगदीश ने स्वीकार किया, जिसके प्रमाणस्वरूप श्रीजगदीश के चक्र की छाप अपने बाम अङ्ग में लेकर तू पैदा हुई! इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि, 'श्रीजगदीश ने तेरे पिता की प्रार्थना स्वीकार कर तुझे अपनी बामाङ्गिनी बनाया था, इसमें प्रमाण वही चक्र की छाप है। फिर इसके बाद देवोत्तर-सम्पत्ति जानकर भी मैंने चुन्नी पिशाची के फेर में फंसकर तुझे उसके हाथ बेचडाला, इसमें दो प्रकार के पाप मैंने किए,—अर्थात् एक तो देवोत्तर-सम्पत्ति पर हाथ चलाना पाप हुई है, उसपर कन्या का विक्रय करना तो और भी महापाप है; इन दोनों पापों के कारण मुझे श्रीजगदीश ने यह दण्ड दिया कि तेरे एवज़ में चुन्नी से जो दोहज़ार रुपए मुझे मिले थे, उन्हें चोर चुरा लेगए और उन रुपयों की "हाय" में मेरा खून ऐसा गरम हुआ कि सारे बदन से कोढ़ फूट निकला। इस प्रकार का दण्ड मैंने अपने कर्म के फलस्वरूप पाया; उस पर तुर्रा यह कि मैं निस्सन्तान हूं और इस संसार में मेरे आगे-पीछे, सिवाय जगदीश के, और कोई नहीं है! यद्यपि तू श्रीजगदीश की चक्रछाप पाकर उनकी बामाङ्गिनी हुई थी, परन्तु किसी प्राक्तनकर्म के अनुसार तुझे वेश्या के घर इतने दिनों तक रहना भी बदा था; परन्तु तू श्रीजगदीश की निजसम्पत्ति थी, इसलिये वेश्यावृत्ति करने से बची और बसन्तकुमार के साथ विवाह करके सती-साध्वी-पतिव्रताओं की पंक्ति में मिलगई। इधर तेरा तो तेरे कर्मानुसार यह परिणाम हुआ और उधर तेरे पिता ने श्रीजगदीश की कृपा से पुत्र का मुख देखा! इतने कर्म-जञ्जालों में घूमने या घुमाए जाने पर भी तूने अपनी सहोदरा भगिनी को स्वयम् अपनी सौत बनाया!!! अब इधर ध्यान दे,—कुंवर मोतीसिंह या भैरोसिंह का जो कुछ परिणाम हुआ, तथा पिशाची चुन्नी की जो कुछ गति हुई, वह बात तुझसे छिपी हुई नहीं है। मोतीसिंह तेरे कौन थे यह तू जानती ही है और उनकी दौलत पाकर उसे तूने • का

दे डाली, यह भी तुझे मालूम ही है। तूने मोतीसिंह की सम्पत्ति उन्हें पुनः दे देनी चाही थी, पर इसका जो कुछ नतीजा हुआ, वह तुझसे छिपा नहीं है, यदि मोतीसिंह के भाग्य में वह सम्पत्ति भोगनी बदी होती, तो वह उनके हाथ से निकल ही क्यों जाती? जिस पिशाची चुन्नी ने बड़ी बेरहमी के साथ मोतीसिंह को मार कर उनकी सारी दौलत हथियाली थी, 'फिर से ओकर उसी पिशाची चुन्नी की तावेदारी करना और उससे अपने खून का बदला न लेना'—मोतीसिंह के अद्भुत कर्मभोग का पता बतलाता है या नहीं? अपने सगे भाई के ब्याह की मजलिस में नाचने जाना और अपने खास पति के ब्याह की महफिल में दिल खोलकर अपने बाप-भाइयों के सामने नाचना, तुझे किस कर्म के भोग का पता बतलाता है? बसन्तकुमार के साथ तेरी कब की जान-पहिचान या रिश्तेदारी थी? उस नाव के उलटने पर केवल तुही कैसे जीती बची और बसन्तकुमार के हाथों तुही क्यों काल के गाल से निकाली जा सकी? यह भी होसकता था कि तेरे बदले में बसन्तकुमार उस नाव पर के डूबे हुए किसी और ही मनुष्य को निकालता? अस्तु, इस संसार में आंख पसार कर देखने से तुझे इस तरह के एक नहीं, करोड़ों दृष्टान्त नित्य ही दिखलाई देंगे; उनपर यदि तू खूब ध्यान देकर विचार करेगी; तो तुझे यह बात भली भांति विदित हो जायगी कि, 'इस कर्ममय संसार में मनुष्य अपने सञ्चित, प्रारब्ध और क्रियमाण, इन त्रिविध कर्मों के फलों को निरन्तर भोगा करता है, और उस कर्मफल के भोग कराने में उसके बहुत से वे सहायक भी समय पर आ जुटते हैं, जिनके साथ उसका कोई न कोई प्राक्तन सम्बन्ध रहता है। मेरी इन सब बातों का निचोड़ यह है कि, 'जैसी हो होतव्यता, वैसी उपजै बुद्धि। होनहार हिरदै बसै, बिसरि जाय सब सुद्धि॥' इसलिये इस संसार में आकर, 'हारिए न हिम्मत बिसारिए न हरिनाम, जाही बिधि राखै राम ताही बिधि रहिए'।"

पण्डाजी की अद्भुत बातें सुनकर कुसुम सन्नाटे में आगई और देरतक सिर झुकाए हुई मन ही मन वह कुछ सोचती रही; इसके बाद उसने ज्यातक की ओर देखा और कहा,—"पण्डाजी, आप के अद्भुत किन्तु सच्चे उपदेश को सुनकर मेरी आंखें खुल गईं

और सचमुच आज मेरे दिल का कांटा निकल गया! आपने जो कुछ कहा, वह अक्षर अक्षर सत्य है और लोग अपने अपने कर्मों का ही फल भोगा करते हैं। इसमें दूसरे लोग निमित्तमात्र तो अवश्य होते हैं, परन्तु अपनी करनी का फल अपने ही को भोगना पड़ता है; और कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि जो लोग निमित्त-मात्र होते हैं, वे भी उस कर्म के फल के भागी बनजाते हैं; क्योंकि संसर्गी को भी कुछ न कुछ कर्मफल का भोग भोगना ही पड़ता है।"

त्र्यम्बक ने कहा,—"और देख, इस समय मैं तुझे एक और विचित्र बात सुनाता हूं, जिस किश्ती की ठोकर खाकर तेरी नाव डूबी थी, उस किश्ती पर मैं सवार था और प्रातःकाल का समय हुआ जानकर आपही आप कुछ गा रहा था। मैंने उस नाव पर, जो कि पलक मारते-मारते उलट गई थी, कई लोगोंके साथ तुझे भी देखा था; पर यह किसे खबर थी कि तू उस काल के झपेटे से बच जायगी और तेरे साथ इस तरह मेरी मुलाकात होगी! हां, यह ठीक है कि उस समय मैंने तुझे पहिचाना न था।" (१)

कुसुम ने कहा,—"उस समय तो मेरा ध्यान आपके गाने की ओर नहीं गया था, पर मैंने आपके गले की सी आवाज़ कभी सुनी है और शायद आपके गले से निकला हुआ एक करुणा से भरा कवित्त भी कभी सुना है; किन्तु कब सुना है, यह बात मुझे इस समय याद नहीं आती।" (२)

पण्डाजी ने कहा,—"यह होसकता है कि तूने कभी मेरे गले की आवाज सुनी हो; क्योंकि मैं अक्सर आरे भी आया करता था, परन्तु इस समय मैं भी यह नहीं बतला सकता कि तूने मेरी कौनसी आवाज कब सुनी थी, या कौनसा कवित्त किस समय सुना था!"

कुसुम,—"ख़ैर, इसे जाने दीजिए और यह बतलाइए कि आप आरे भी अक्सर आया करते हैं?"

त्र्यम्बक,—"हां, यहां मेरे कुछ थोड़े से यजमान हैं, इसलिये

---

(१) इस उपन्यास के पहिले परिच्छेद में जिन उदासीन बाबाजी की ध्रुपद का हाल लिखा गया है, वे ये पण्डाजी ही थे।

(२) ओर परिच्छेद देखो

मैं प्रायः यहां आया करता हूं। ”

कुसुम,—“तो क्या, आपने यहां पर कभी चुन्नी को या मुझे नहीं देखा था ? ”

त्र्यम्बक,—“नहीं, कभी नहीं; क्योंकि न तो मैं वेश्यागामी ही हूं और न मैंने यहांकी रण्डियों के देखने का ही कभी इरादा किया था। मतलब यह कि फिर मैंने चुन्नी की सूरत कभी न देखी और न तुम्हीं को देखा। ”

कुसुमकुमारी ने कहा,—“ख़ैर, ये सब बातें तो हो ही चुकीं, पर अब यह बतलाइए कि श्रीजगदीश को जो कुछ भेंट-पूजा चढ़ती है, उसे कौन लेता है ? ”

त्र्यम्बक ने कहा,—“ भेंट-पूजा कई तरह की होती हैं, उनमें जो रुपए-पैसे, गहने-कपड़े, ज़र-जवाहिर चढ़ते हैं, उनमें से कुछ तो श्रीजगदीश के भण्डार में जाते हैं, कुछ वर्तमान पुजारी लेलेते हैं और कुछ उन पण्डों के हाथ लगते हैं, जिनका यजमान वह भेंट-पूजा चढ़ाता है। इसके अलावे यदि कोई स्थावर, अर्थात् 'भूसम्पत्ति' चढ़ाई जातीहै, तो वह बिल्कुल श्रीजगदीश के भण्डार के कब्ज़े में ही रहती है। और जो कन्याएं चढ़ाई जाती हैं, वे उन पण्डों की होती हैं, जिनके यजमान उन्हें चढ़ाते हैं। उन कन्याओं पर पण्डों का पूरा पूरा अधिकार होता है और वे उन कन्याओं के साथ यथेच्छ व्यवहार कर सकते हैं। ”

कुसुम ने कहा,—“क्या आप कृपाकर मुझे यह बतलावेंगे कि उन कन्याओं के साथ पण्डे कैसे कैसे बर्ताव करते हैं ? ”

त्र्यम्बक,—“बर्ताव की बातें अब तुमसे मैं क्या कहूं ? वास्तव में उन बेचारी कन्याओं के साथ बड़ा अत्याचार किया जाता है और उन (कन्याओं) का चरित्र निर्मल नहीं रहने पाता ! कोई कन्या पण्डे की भोग्या बनती हैं, कोई सयानी होने पर स्वाधीन होकर वेश्यावृत्ति करने लग जाती हैं, कोई किसीके घर बैठ जाती हैं, कोई किसीसे विवाह करलेती हैं, कोई पण्डाओं के द्वारा लोगोंको प्रसादस्वरूप दे डाली जाती हैं और कोई किसी न किसी के हाथ बेच दी जाती हैं। ऐसे ऐसे सैकड़ों तरह के अत्याचार उन अनाथ कन्याओं पर हुआ करते हैं, जिन्हें देखकर और स्वयम् दण्ड पाकर अब मैं जी से यह बात चाहता हूं कि इस

घोर कलिकाल में अब देवताओं के निमित्त कन्याओं का चढ़ाया जाना एक दम से बन्द कर दिया जाय तो अच्छा हो।"

पण्डाजी की बातों से कुसुम बहुत ही प्रसन्न हुई और कहने लगी,—"मैं आपको धन्यवाद देती हूं कि अब आपने बेचारी कन्याओं की दुर्दशा देखकर उनपर तर्स खाया! श्रीजगदीश करें, वह दिन जल्द आवे, जब इन आपदाओं से अभागिन कन्याओं को छुटकारा मिले।"

त्र्यम्बक ने कहा,—"बेटी, चन्द्रप्रभा! यह तू निश्चय जान कि अब जैसा काल चला आरहा है, उससे यही निश्चय होता है कि, 'अब इस "देवदासी" प्रथा के एक दम से मिटजाने में कोई सन्देह नहीं है।' तेरे पिता ऐसे उत्तेजित और क्रुद्ध हुए हैं कि, 'वे इस चाल के बन्द कराने में कोई बात उठा न रक्खेंगे।' तेरा और अपना परिणाम देखकर मुझे यही विश्वास होने लगा है कि, 'अब श्रीजगदीश भी इस प्रकारकी,—अर्थात कुमारी कन्याओं की—भेंट लेना और उन पर घोर पैशाचिक अत्याचार होने देना नहीं चाहते। तू विश्वास कर कि, 'अब यह अन्धेर बहुत दिनों तक न चलसकैगा, और थोड़े ही दिनों मे इसका नामोनिशान मिट जायगा!।' ख़ैर, मैं तुझसे मिल लिया, तूने अपनी सुशीलता और उदारता से मुझे क्षमा भी कर दिया; इसलिये अब मैं तुझसे विदा होता हूं और जगदीश्वर से प्रार्थना करता हूं कि, 'वे तुझे अपनी निज सम्पत्ति जान कर सदैव तुझ पर दयादृष्टि बनाए रक्खें।"

कुसुमकुमारी ने कहा,—"अब आप कहां जांयगे?"

त्र्यम्बक ने कहा,—"मुझे कोई आगे-पीछे तो है ही नहीं, कि जिसकी ममता मुझे बांध सकेगी; इस लिये तेरे दुःखदायी परिणाम को देखकर और अपने यजमान या तेरे पिता राजा कर्णसिंह की बेतरह फटकार खाकर मुझे ऐसी ग्लानि हुई है कि अब मैं अपना काला मुंह किसीको भी नहीं दिखलाया चाहता, बस, अब मैं काशी जाऊंगा और अपनी ज़िन्दगी के बाक़ी के दिन वहीं बिताऊंगा।"

पण्डाजी की बातें सुनकर कुसुम बहुत ही उदास हुई और कहने लगी, "पण्डाजी! जो कुछ होगया है उस पर अब आप ध्यान न दीजिए और श्रीजगदीश की सेवा करके अपने जीवन के

बिना हाज़िर; क्यों कि श्रीजगन्नाथ का धाम भी काशी से कुछ कम नहीं है। "

त्र्यम्बक ने कहा,—"तेरा कहना ठीक है, किन्तु जो कुछ मैंने सोच रक्खा है, अब मैं वही करूंगा; इसलिये इस बारे में अधिक कहना-सुनना अब व्यर्थ है। मैं केवल तुझसे माफ़ी मांगने आया था, उसे बड़ी उदारता के साथ तूने दे दिया; इसलिये मैं तुझे रोम-रोम से आशीर्वाद देकर अब बिदा होता हूं और आज ही काशी की ओर प्रस्थान करता हूं। "

इतना कहकर वह पण्डा उठा और तेज़ी के साथ बाग़ से बाहर हो गया! कुसुम ने उसे बहुत रोकना चाहा, बसन्त भी उसे लौटा लाने के लिये कुछ दूर तक दौड़ा गया, पर फिर वह नहीं ही फिरा और चला ही गया! जाती बार वह गुलाब के पास फिर नहीं गया था।

इसी परिच्छेद में हम इतना और भी लिख देना चाहते हैं कि दो महीने के बाद कुसुम ने यह सुना कि, 'वह पण्डा (त्र्यम्बक) परलोक सिधार गया!'

इस खबर को सुनकर सचमुच कुसुम बहुत ही उदास हुई थी, और उसने त्र्यम्बक की परलोकगत-आत्मा को शान्ति प्रदान करने के लिये श्रीजगदीश्वर से बार बार प्रार्थना की थी।

यह घटना ऐसी हुई थी कि जिसने कुसुम को कुछ दिनों तक फिर उदास बना दिया और भैरोसिंह का शोक उसके लिये मानों नया होगया!

एक तो जबसे वह अपने बाप से बिदा होकर आई थी, उसके चित्त की वृत्ति दूसरी ही होगई थी, उस पर पण्डा का परिणाम देखकर तो वह और भी उदास होगई थी। उसके चेहरे का रङ्ग फीका पड़गया था, उसका शरीर दुबलाया जाता था, उसने अच्छा अच्छा गहना-कपड़ा पहिरना-ओढ़ना छोड़ दिया था और उसके सिंगार-पटार आदि सारे शौक़ न जाने किधर सिधार गए थे। वह सदा अकेले में बैठी हुई रोया करती थी और किसीका साथ उसे अच्छा नहीं लगता था।

चालीसवां परिच्छेद.

वैराग्य.

" निःस्नेहो याति निर्वाणं, स्नेहोऽनर्थस्य कारणम् ।
निःस्नेहेन प्रदीपेन, यदेतत्प्रकटीकृतम् ॥"

(श्रीदामोदरदेवः)

लेकिन, हां ! एक बसन्त के सामने वह अपने को हर तरह से सम्हाले रहती और हँस-हँस-कर बातें करने से अपने को खुश ज़ाहिर किया करती थी; पर उसके दिल की भट्ठी रात दिन सुलगा ही करती थी ! वह बहुत देर तक बसन्त को भी अपने पास नहीं बैठाती थी और थोड़ी देर इधर-उधर की, और मन बहलाने की बातें करके, उसे बरज़ोरी बिदा कर देती थी।

यदि कभी बसन्त के आने में देर होती, या किसी दिन वह न आता,—पर ऐसा बहुत ही कम होता था,—तो वह घबरा जाती थी और नौकरो के पुल बांधकर उसे बुलवालेती थी । कभी कभी वह खुद भी घर जाकर अपनी बहिन गुलाबदेई को देख और उसका सिंगार कर आती थी ।

यहां तक उसने जीते जी अपने को मिट्टी में मिला रक्खा था कि जबसे बसन्त की शादी हुई थी, तबसे उसने बसन्त के साथ एक भी रात नहीं बिताई थी ! यदि इस बात पर कभी बसन्तकुमार उलझता था, तो वह हँसकर और यों कहकर बात उड़ा देती थी कि, 'गुलाब से बढ़कर भी क्या किसी (दूसरे) कुसुम (पुष्प) में रंगत और खुशबू है !!! '

लेकिन, ऐसा क्यों हुआ ? अर्थात कुसुम के चित्त की ऐसी अवस्था क्यों होगई ? क्या इसे भी प्रेमी पाठकों को समझाना होगा ! ज़रा आपलोग ध्यान तो दीजिए कि कुसुम किस घराने की लड़की थी और अब वह किस दर्जे को पहुंच गई थी ! तो जिसे ऐसी दशा में आने का ज्ञान होजाय, उसके चित्त की और कैसी अवस्था होसकती है ? इससे तो कहीं अच्छा होता यदि वह अपना पिछला हाल ही न जानती ।

इकतालीसवां परिच्छेद.

मनकी बात.

" अनिर्दयोपभोगस्य, रूपस्य मृदुनः कथम् ।
कठिनं खलु ते चेतः, शिरीषस्येव बन्धनम् ॥ "

(साहित्यरत्नाकरे.)

एक दिन अपनी उदासी की तरंगों में गोते खाती हुई कुसुम बाग़ के एक कमरे में पलंग पर पड़ी हुई थी कि एकाएक बसन्तकुमार ने वहां पहुंचकर आवाज़ दी,—" प्यारी, कुसुम !"

कुसुम,—(चिहुंक, और अपने तईं सम्हाल कर) "कौन? प्यारे मेरे ! " यह कहकर वह उठ बैठी और अंगड़ाई लेने, जम्हाई लेने और रूमाल से आंखें मलने के बाद बोली,—"आओ, प्यारे ! क्यों? कल कहां थे ? यहां मानो तुम्हारा रोज़ का आना है ? एँ ! "

बसन्त उसी पलंग पर बैठ गया और बोला,—" प्यारी ! कई उलझनों से कल आ न सका। "

कुसुम,—"ठीक है, पर तुम क्या यह नहीं जानते कि मेरे प्राण तुम्हीं हो; सो तुम्हें एक नज़र देखे बिना, मैं क्योंकर जीऊंगी ? सच है, आखिर तो मैं रंडी ही न हूं ! "

बसन्त,—(उसे गले लगाकर) "हाय, हाय ! मैं अपना सिर पीट डालूंगा, अगर तुम फिर ऐसी बात ज़बान पर लाओगी ! प्यारी ! क्या तुम्हें देखे बिना, मैं नहीं तड़पता ? पर यह कांटा तो तुमने आप ही बोया है ! "

कुसुम,—"क्या, क्या ? "

बसन्त,—"शादी क्यों कर दी ? "

कुसुम,—"इसीलिये कि जिसमें समाज में तुम घर गृहस्थी-वाले होकर सुख से रहो और तुम्हारा वंश चले, जिससे तुम्हारे पितर-लोग तृप्त हों। "

बसन्त,—"सो सब ठीक है मगर क्या तुम यह नहीं जानती हो कि समा खी तुम्हारे का सा नहीं होता "

कुसुम,—"क्या मेरी बहिन तुम्हें आने को मना करती है?"

बसन्त,—"मना करना तो अच्छा भी होता, पर वह ऐसे ऐसे ताने मारती है कि क्या कहूं!"

कुसुम,—(ज़रा कलेजा मसोस कर) "ख़ैर, तो,—और कुछ तो मैं चाहती नहीं,—यदि छिनभर का तुम्हारा यहां आना भी उसे नागवार हो तो, प्यारे! न आया करो! मैंने पहिले ही अपने सुख को तिलाञ्जलि देकर तुम्हारा व्याह कर दिया है, इसलिये अब उसी को सुखी करना चाहिए, जिसका हाथ मैंने तुम्हें पकड़ा दिया है।"

बसन्तकुमार सिर नीचा किए हुए चुपचाप सुनता रहा, पर बोला कुछ भी नहीं।

कुसुम ने फिर कहा,—"सुनो, प्यारे! मैं और तो कुछ चाहती ही नहीं, पर क्या करूं? जो छिन भर भी तुम्हें न देखूं, तो मेरा मन न जाने क्यों, जल-हीन मीन की तरह तड़पने लगता है!"

बसन्त,—"प्यारी! मैं क्या तुम्हे जी-जान से नहीं चाहता? हाय! तुम्हारे प्यार से मैं हज़ार जन्म लेने पर भी उरिन नहीं हो सकता! अच्छा, अब जैसे होगा, बिना एकबार रोज़ आए, न रहूंगा। हाय! तुम्हीने तो इस बात की क़सम देदी है कि, 'मेरा कोई भी हाल उससे न ज़ाहिर किया जाय,' तो अब मैं करूं क्या? मैं समझता हूं कि यदि तुम्हारा सारा रहस्य उससे कहा जाय तो वह तुम्हें अपनी सगी बहिन जानकर तुम्हारी वैसी ही सेवा करे, जैसी कि छोटी बहिन बड़ी बहिन की किया करती है, और तब ऐसा भी हो सकता है कि, तुम्हारा सारा रहस्य उस पर प्रगट कर दिया जाय और तुम-दोनों मिलकर एक साथ ही रहो; तब तो फिर ऐसे सुख से दिन कटें कि जिसका नाम!"

कुसुम,—'ठीक है, पर मैं ऐसा करना नहीं चाहती। हां! यदि तुम अपनी चतुराई से मेरी बहिन को ख़ुश न कर सको और उससे यहां आने का हुक्म न हासिल कर सको, तो, प्यारे! न आया करो!"

इतना कहते-कहते कुसुम की आंखें डबडबा आईं! उसने अपने तईं बहुत सम्हाला, पर आख़िर वह भी तो स्त्री ही थी! बसन्त-कुमार की भी बुरी गत हुई और उसकी आंखें भी आंसू गिराने लगीं।

बयालीसवां परिच्छेद.

अगाध प्रेम

" इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन,
कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधा,
कान्ते कथं घटितवानुपलेन चेतः ॥"

(शृङ्गारशतके)

फिर तो थोड़ी देर तक उन दोनों ने एक दूसरे के गले से लगकर खूब ही आंसू बहाया और इसमें ऐसा सुख पाया कि जिसका अनुभव भुक्तभोगी पाठक और प्यारी पढ़नेवालियां ही कर सकती हैं !

दो घंटे पीछे, कुसुम ने कुछ जलपान कराकर बरज़ोरी बसन्तकुमार को बाग़ से विदा किया !

एक विचित्र घटना के हो जाने से कुसुम के अगाध प्रेम की एक और बानगी देखिए,—

बसन्तकुमार की स्त्री गुलाबदेई अपने पिता के यहां गई हुई थी । उसके जाने पर बसन्त के हज़ार कहने पर भी कुसुम घर में एक दिन भी आकर न रही । बस, वह जो बाग़ में रहने लगी थी, सो वहीं रही । हां ! इतना अवश्य हुआ कि तब बसन्त भी रात दिन बाग़ ही में, कुसुम के पास ही रहने लगा था ।

किन्तु कुसुम की चित्तवृत्ति बड़ी ही विलक्षण हो गई थी ! यद्यपि बसन्त उसके हृदय या उसके प्रेम की गंभीरता की थाह रत्तीभर भी नहीं पा सकता था, और यद्यपि कुसुम के प्यार में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा था, तो भी वह (कुसुम) बसन्तकुमार का ब्याह कराके एक प्रकार से संसार और भोगविलास से अपने मन को खैंच बैठी थी । यद्यपि कभी कभी उसके इस स्वभाव के कारण बसन्त उससे झगड़ बैठता था, पर उस (कुसुम) का सच्चा प्यार ऐसा था कि, वह (प्यार) बिना कुसुम के कुछ कहे ही, बसन्त के झगड़े को निबटा देता था !

जैसे लोग अपने भाव के अनुसार, देवता की प्रतिमा बनवा कर उसे पूजते हैं, वैसे ही कुसुम बसन्तकुमार की एक 'क़द-आदम' तस्वीर एक अच्छे मुसव्विर से बनवा कर और बाग़ के एक कमरे में उसे एक संगमर्मर की चौकी पर रखकर रात-दिन उसे निहारा करती और फूलों के गजरे से सजा करती थी!

सचमुच, बसन्तकुमार बहुत सुन्दर और सुडौल आदमी था और उसकी सुन्दरता रूपगर्विता तरुणी के मानभञ्जन करने की मानों दिव्यौषधि थी!

उसका सुन्दर रंग प्रफुल्ल-मल्लिका सा गोर, शरीर बलिष्ठ, कोमल और अनतिस्थूल; ललाट प्रशस्त और सूक्ष्म, परिष्कृत, सुवासित, कुंचित-कृष्णकेशजाल से मंडित; भ्रूलता-युगल सूक्ष्मघन, कार्मुकाकार और दूरायत तथा निविड़ कृष्ण; नासिका उन्नत और नुकीली; बिंबाधर रक्तवर्ण, पतले और सुकोमल; नेत्र आकर्णायलम्बी, नुकीले, तथा स्निग्ध-कटाक्षमय; ग्रीवा दीर्घ और पुष्ट; तथा अन्यान्य अंग पारिपाट्यमय और साँचे के ढले से सुडौल, गोल-मटोल थे!

वह हाथ की छड़ी घुमाते घुमाते बाग़ में पहुंचा। कमरे का द्वार भीतर से बंद था, जो धक्का देते ही खुल गया। आरामगृह सुन्दरता से सजा था, बड़ी बड़ी तसवीरें, शीशे, आइने, झाड़, फानूस, हांडी, दीवारगीर आदि आराइशों से चारों ओर से कमरा भरा-पूरा था। ज़मीन में ऊनी कार्पेट और ग़लीचे का फ़र्श और ही शोभा देता था! उसपर उत्तमता से इधर-उधर डैस्क, मेज़, कुर्सी, मूढ़े, टेबुल, आलमारी और पलंग और ही छटा झलका रहे थे! घर खूब ऊंचा, लंबा-चौड़ा और प्रशस्त तथा सुहावना था! चांदी के पाए के पलंग पर मखमली गद्दी-तकिए ज़रदोज़ी काम के, रसिकों के चित्त को उधर ही खींचे लेते थे! उसी कमरे में, सब सुखद सामग्री के अलावे, एक और भी निरुपम नंदनवन का अपूर्व 'स्वर्गीय-कुसुम' सुशोभित था, पर वह सजीव पदार्थ था! उसी केलिमंदिर में दक्खिन-द्वार के सामने एक परम सुन्दरी आईने के आगे बैठकर बालों में कंघी फेर रही थी! उसके पीछे उदासी की दूब लम्बधाली दासी खवासी में लग रही थी! दोनों मौज की बातें कर रही थीं! द्वार खुलते ही

बस! जिसस जिसकी आंखें लड़ गई हैं और प्रीत की रस

कुसुम — तो यहां पड़े पड़े निहारा करो!"

बसन्त ने हंसकर कहा,—"हम भावुक हैं, इसलिये बिना समझे कोई काम नहीं करते!"

कुसुम के भी अधरों में हंसी नाचने लगी, उसने सिर हिलाकर कहा,—"जी हां! ठीक है! आपका भाव आजकल किस 'दर' का है?"

इसी समय दासी ने तम्बाकू भरकर हुक्का आगे ला धरा और उसका नल बसन्तकुमार के मुंह से लगा दिया।

इसी जगह हम कुसुम के नखसिख का वर्णन करना उचित समझते हैं। सुनिए,—वह एक स्वच्छ कुसुम्भी रंग की बनारसी साड़ी पहिरे थी। साड़ी का एक कोना कमर से दोनों भुजाओं के नीचे तक फैला था। पीठ खुली, पर कसीली चोली कसी थी। बसन्तानिल इसी उन्नत उरोज के बसनाञ्चल के संग क्रीड़ा करता था! वह कभी वस्त्र उड़ाकर, कभी चिपकाकर उन्नत उरोजों की दूनी शोभा कर देता था! साड़ीके भीतर से चंपकसमान अंग के रूप-लावण्य की विभा फूट फूट कर बाहर निकलती तथा अपूर्व रस का स्वाद चखाती थी!

बसन्त धूम्रपान करते करते अपूर्व भाव से उस अनुपम रूप-माधुरी की छटा से अपने नयन शीतल, मन मुग्ध, और प्राण परितृप्त कर रहा था! केशविन्यास, सोलहशृङ्गार, अङ्गपरिष्कार और बसन की बहार से बन ठन कर कुसुम बसन्त के बगल में आकर बैठ गई!

बसन्त ने स्नेह से उसे गले लगाकर कहा,—"कुसुम! तुम्हारे गंभीर हृदय की थाह न मिली!"

कुसुम ने कहा,—"चलो, रहने दो!"

बसन्त,—"आज मेरे भाग्य का क्या पूछना है! भला, इतने दिनों बाद तुमने जोगिन का भेस तो छोड़ा!"

कुसुम,—(उस बात का जवाब न देकर) "प्यारे! तीन महीने हो गए, अब मेरी बहिन को लेआओ।"

बसन्त,—"अभी ऐसी जल्दी क्या है?"

कुसुम — "ये टाल-बाल की बातें जाने दो, और अब जाकर उसे ले आओ"

वसन्त,—"मेरी तो विवाह करने की इच्छा ही न थी, केवल तुम्हींने ज़िद करके मेरे गले में यह फांसी लगाई ! ख़ैर जो हुआ सो हुआ, पर अब उसके बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है; क्योंकि उसके आने पर फिर तुम मुझे पलभर भी अपने पास न रहने दोगी और जोगिन का भेस लोगी ! "

कुसुम,—"मगर, जो मैं कहूंगी, उसे तुम झख मारोगे और करोगे ! बस, उसे जाकर अब ले आओ । "

वसन्त,—"पर उधर तो मेरा जाना नहीं होसकता ! "

कुसुम,—"क्यों नहीं होसकता ? "

वसन्त,—"बहुत सा बखेड़ा करना पड़ेगा । "

कुसुम,—"तुम कैसी बखेड़े की बातें करते हो ?"

कहते ही में कुसुम के मुख पर कुछ कोप का चिन्ह दिखाई दिया, और उसके उस भाव को जानकर वसन्त ने हँसकर कहा,—"बस ! नाराज़ होगईं न ! ! ! "

कुसुम,—"क्यों न होऊं ? "

वसन्त,—"अच्छा ! उसे बुलाने में तुम्हें क्या सुख होगा ?"

कुसुम,—"तुम्हें देखकर मुझे जो कुछ हर्ष होता है, अपनी सगी बहिन को देखकर भी वही आनंद होगा । "

वसन्त,—"प्रिये ! तुम्हारा अतुल प्रेम मैं नहीं समझ सकता, किन्तु वह कमबख़्त तो तुम्हारे नाम से बहुत ही चिढ़ती है और मुझे तुम्हारे पास आने नहीं देती ? "

कुसुम,—"न सही, पर उसे अब ले आना चाहिए । "

वसन्त,—"इसमें भी तुम्हारी कुछ ज़बर्दस्ती है क्या ? "

कुसुम,—"हां ! है तो, तुम मेरा हठ नहीं जानते ! "

वसन्त,—"बस, इसीलिये इतना कोप ! ! !"

कुसुम ने धीरे से गंभीर-भाव-पूर्वक कहा,—"क्यों, ये क्या दिल्लगी की बातें हैं ?"

वसन्त,—"अच्छा बिगड़ो मत, उसे बुला लूंगा । "

कुसुम,—"कब ? "

वसन्त,—"इसी मास में, कई दिन के बाद । "

कुसुम,—"बस, ठीक हुआ न ? "

वसन्त,—"ठीक हुआ "

तैंतालीसवां परिच्छेद,

प्रेम का विनिमय.

" भवतु विदित व्यर्थालापैरलं प्रिय गम्यताम्,
नतुरपि न ते दोषोऽस्माकं विधिस्तु पराङ्मुखः।
तव यदि तथारूढं प्रेम प्रपन्नमिमां दशा,
प्रकृतितरले का नः पीडा गते हतजीविते ॥"

(भदन्तधर्मकीर्त्तेः)

"ना ! सो न होगा, मैं न जाने दूंगी;"—यह कहकर एक स्थिर-सौदामिनी सी ललना ने वसन्तकुमार का हाथ थाम लिया !

वसन्त,—"छिः! प्यारी! तुम्हें ऐसा करना चाहिए? ठहरो, मैं अभी आऊंगा।"

वह वसन्तकुमार की विवाहिता स्त्री गुलाबदेई थी ! वह गुलाब-विनिन्दित गुलाब होने पर भी गुलाब के स्वर्गीय काँटे से कँटीले स्वभाव को न छोड़ सकी थी ! जब वह ऐन-मैन गुलाब ही थी, तो फिर उसके रूप का क्या कहना है ! तथापि रूपाभिमानिनी सुन्दरियों के परखने के लिये हम गुलाब की छवि कलम से खींच देते हैं,—

वह कोमल-नाज़ुक छोटा-सा क़द, वह चंपक-समान गौरवर्ण, वह शशधर-विनिन्दित मुखमंडल, वह आगुल्फ-प्रलंब कुंचित केश, वह तिलपुष्पाभ नासिका, वह सीप से सुहावने कर्णकुहर, वह गुलाब की पत्ती से गुलाबी गोल गाल, वह आकर्णविलंबित नयन-कमल, वह सरल कटाक्ष, वह कम-नीय कंबुकंठ, वह बिंब के से सुधामधुर ओष्ठाधर, वह कमल-कलिका-कलित कुच-कुंद-कुड्मल,—ये एक एक अंग पञ्चबाण के पञ्चबाण पर स्थान देते थे ! रक्ताम्बर में से नोली कसीली चोली गोली सी आकर लगती थी ! अंग अंग में अदूषण भूषण सहज लावण्य के दूषणप्राय थे !

वह मनोहारिणी भृकुटी चढ़ाकर बोली,—"तुम क्यों वहां जाते हो?"

वसन्त —"क्यों जाता हूं- यह क्या तुम नहीं जानती ? मैं उसके समीप कितनी भारी कृतज्ञता के भार से दबा हूं यह कहां तक कहूं ? "

गुलाब,—"बस, बस! अब मैं समझी! तुम उसका सर्वस्व क्यों नहीं फेर देते ?"

बसन्त,—"वह क्या लेती है ?"

गुलाब,—"तब फिर तुम्हारा दोष या कृतघ्नता कैसी ?"

बसन्त,—"मेरा दोष क्यों नहीं ? मैं इस जन्म में उसे या उसकी कृतज्ञता को कभी भूल सकता हूं ? वह जो अपना सर्वस्व मुझे दे बैठी है, उसका क्या यही बदला है ? ज़रा सोचो तो प्यारी! कि यदि वह हठकर के यह व्याह न कराती तो फिर तुम्हीं कहांसे आतीं ?"

गुलाब,—"तब फिर तुमने मुझसे व्याह क्यों किया, जो उसीके पास जाना था !"

बसन्त,—"तो इसमें तुम्हें दुःख क्या है ? कुसुम तो तुम्हारे लिये सब कुछ छोड़ बैठी है, तिस पर भी वह मुझे रात भर या आधी रात तक भी अपने पास नहीं रहने देती। अब मैं जाता हूं, तो, दो चार इधर उधर की बातें करके वह मुझे घर बिदा करदेती है, देर तक ठहरने भी नहीं देती ! हाय! उसपर क्या तुम्हें दुःख होता और उस बेचारी पर डाह होती है ?"

गुलाब,—"नहीं ! मुझसे यह सूल नहीं सहा जाता !"

बसन्त,—"किन्तु यह डाह तुम्हारी अनुचित है !"

गुलाब,—"मन नहीं मानता तो क्या करूं ?"

बसन्त,—"देखो, प्यारी ! तुम अभी कुसुम को चीन्हतीं नहीं ! उसका मन बहुत ऊंचा है ! जब तुम नैहर थीं, तब बारबार वह तुम्हारे बुलाने के लिये मुझसे छेड़छाड़ किया करती थी और उसीने बरजोरी मुझे भेजकर तुम्हें बुलाया भी है। देखो, अब भी, जब किसी दिन वहां मुझे कुछ भी देर होती है, तो वह अनेक छल, कौशल, अनुरोध, उपरोध करके मुझे बिदा करदेती है, और देर तक नहीं रहने देती। वह सोचती है कि, 'जिसमें गुलाब को किसी तरह का कष्ट न हो।' यह सब जान-बूझ-कर भी तुम उससे जलती हो ! भला, उसे एक बार देखने जाना भी मुझे उचित नहीं है ?"

गुलाब और भी भीगी रस्सी की भांति ऐंठ गई ! उसमें और और गुणों के साथ क्रोध भी इतना था कि राम ही रक्षक ! उसने झुंझलाकर कहा "जीहां ! मैं उसके कामों से भी समझती हूं और तुम्हारे मुख से भी सुनती हूं कि वह मुझपर दया दर

करती है, पर फिर भी मेरा मन नहीं मानता! भला, वह रंडी होकर मेरे लिये इतनी उदारता क्यों खर्च करती है? यह तो नहीं समझ पड़ता! वह रंडी हो, या कोई हो, स्त्री तो है! जब मैं ही उसके पास तुम्हें भेजने में राज़ी नहीं होती, तो वह तुम्हें मेरे पास भेजकर कैसे सुखी होती होगी? खैर, जो हो, पर मुझे उसका विश्वास नहीं है!"

यहां पर हमारे पाठकों को समझ रखना चाहिए कि गुलाब को कुसुम और बसन्त के प्रेम वा बिवाह का, या कुसुम की जीवनी का कुछ भी रहस्य नहीं मालूम था, और न वह यही जानती थी कि,- 'कुसुम मेरी सगी बहिन है।'

बसन्त ने कहा,—"उसने तो अभी तक तुम्हारे साथ अविश्वास का कोई काम ही नहीं किया है?"

गुलाब,—"कोई न कोई उसका खोटा मतलब अवश्य होगा!"

बसन्त,—"कुछ भी नहीं है।"

गुलाब,—"तब वह क्यों इतना चाव करती है?"

बसन्त,—"उसका मन! वह मुझसे और तुमसे भी प्रेम करती है! वह 'स्वर्गीय-कुसुम' है!"

गुलाब,—"ऐसा मन तो देवताओं का भी नहीं होता!"

बसन्त,—"यह तो तुमने बहुत ही ठीक कहा; ऐसा मन तो देवताओं का भी नहीं होता!"

गुलाब,—"तो, अब तो मैं तुम्हें न जाने दूंगी।"

बसन्त,—"जो कुछ हो, पर मैं तो ज़रा जाता हूं।"

गुलाब,—"तो मैं अब क्या कहूं!"

बसन्त,—"प्रिये! वह ये सब बातें सुनकर मन में क्या कहेगी?"

गुलाब,—"कहा करे! इस डर से क्या कोई स्त्री अपना पति छोड़ देगी?"

बसन्त,—"मैं छोड़ने को कहता हूं, या कौनसी बात हो रही है?"

गुलाब,—"और नहीं तो क्या? अब उसके पास जाना क्या अच्छी बात है? मेरे पीहर के कितने लोग कितनी तरह की बातें कहते हैं, जिन्हें सुन-सुन-कर मुझे कितना दुःख होता है, इसे तुम क्या जानो!"

यह बात गुलाबदेई ने कुछ झूठ नहीं कही था बात यह थी कि

गुलाब के पिता राजा कर्णसिंह और माता कुंवर अनूपसिंह तो अपनी बहिन कुसुम के सारे रहस्य को अच्छी तरह जान गए थे, पर अनूपसिंह की स्त्री कुसुम के बारे में कुछ भी नहीं जानती थी, इसलिये वह गुलाब को बराबर यह ताना मारा करती थी कि, 'मेरे नन्दोईजी (अर्थात बसन्तकुमार) तो रण्डी के भँडुवे हैं ! ! !' इत्यादि । बस इन्हीं बातों पर लक्ष्य करके गुलाब ने यह बात बसन्त से कही थी, जिसके कहते कहते उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे थे !

यह देखकर बसन्त ने कहा,—"वाह रोने क्यों लगीं ?"

गुलाब,—"मेरे भाग्य में रोना ही लिखा है, तो क्यों न रोऊं ! तुम उसके पास क्यों जाते हो ? "

बसन्त,—"हाय, तुम न समझो तो मैं कैसे तुम्हें समझाऊं ?"

गुलाब,—"अजी, मैं सब समझ-बूझ चुकी, मुझे अब समझाना-बुझाना क्या ? और सुनो तो सही,—जो उसे तुम्हारी इतनी चाह है, तो वहीं आकर तुम्हें क्यों नहीं देख जाया करती ? "

बसन्त,—"वह रोज़-रोज़ यहां नहीं आना चाहती; पर जब आती है, तब तुम्हें कितना प्यार करती है ? "

गुलाब,—"मैं उसके प्यार को हाथ जोड़ती हूं, क्योंकि सौत और सांप का प्यार एक सा है । "

बसन्त,—"खैर, जो हो, अब तो मैं जाता हूं । "

गुलाब,—"आज न जाने से, मानो काम न चलेगा ! "

बसन्त,—"उसने बहुत कुछ कहा है इसलिये न जाने से वह मन में कष्ट पावैगी ।"

गुलाब,—"पर अब तो कौन हरामज़ादी तुम्हें जाने देती है ! क्योंकि अगर तुम आज जाओगे तो खून-खराबी होगी ! "

"हाय आज मेरे कहीं चौथे चंद्रमा तो नहीं हैं ? "—यह कहकर बसन्तकुमार ने सोचा कि, 'अब बात बहुत बढ़ गई है, आगे और भी मात्रा बढ़ जायगी; इसलिये वह बिना कुछ जवाब दिए ही, धीरे-धीरे चल दिया !

गुलाब ने ताव-पेच खाकर मन में सोचा,—'रांड का कैसा चाव है ? इसे बिना मिटाए काम न चलेगा ! "

यों बकती-झकती, और मन मसोसती हुई कमरे के भीतर जाकर उसने दर्वाजा बन्द कर लिया ।

चौवालीसवां परिच्छेद.

हृदय-बलि.

"कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा यान्ति कदाचिदेव॥"

(भर्तृहरिः)

रात के आठ बज गए थे, सुन्दर सुगन्ध से चारों ओर महमह होरहा था और दूज का चांद आकाश के मुखमंडल में श्वेत दांत की भांति शोभा देरहा था। ऐसे समय वसन्तकुमार कुसुमकुमारी के बाग में पहुंचा! कुसुम उस समय उदासी से सेज पर पड़ी-पड़ी कुछ सोच-बिचार कर रही थी, और उसका कमल सा मुखड़ा कुम्हिलाया हुआ था!

वसन्त ने उसके पास बैठ, उसके गालों पर हाथ फेरते फेरते कहा,—"प्यारी कुसुम! आज तुम इस तरह क्यों उदासी से लेटी हुई हो?"

इतना सुनतेही कुसुम के मुख पर मृदुमुस्कान की छटा छिटकी और उसका फीका चेहरा कुछ चम-चम कर उठा! मानो घनी मेघराशि में चंचल चपला चमक उठी! पर आज उसकी उस हँसी मे वह लालित्य, वह माधुर्य, वह मनोहारिणी शक्ति, और वह हृदयग्राही भाव न था! न जाने, वह किस तरह की सूखी धारा थी और वह किस तरह का हृदयहीन भाव था!

उसने उठ और वसन्त का हाथ पकड़ कर कहा,—"ऐं! कुछ भी तो नहीं! बैठो, प्यारे! मज़े मे बैठो!" यों कहकर वह फिर लेट गई।

उसका भाव देखकर वसन्त ने आप ही आप लंबी सांस ली।

वह कुसुम के सिरहाने सरक कर दोनों हाथों से उसका गाल छू छू कर चुंबन करते करते बोला,—"क्यों प्यारी! शरीर कैसा है?"

कुसुम ने प्रेम से उसका मुख चूम कर कहा,—"कुछ तो नहीं; अच्छा तो है।"

बसन्त प्यासे-नैनों से उस सुन्दर लेकिन फीके खिले लेकिन कुम्हिलाए; सरस, लेकिन सूखे चेहरे को देखता ही रह गया! उसका मन कुसुम के सोसनी दुपट्टे, नन्ही सी नथ, बिजली से कर्णफूल, झनझनाते हुए छड़े, चन्द्रवत् मुखचन्द्रिका, और अमृतमय मंद मुसकान में चक्कर खाने लगा!

छिन भर के अनन्तर, कुसुम को चुपचाप पड़ी देखकर उसने कहा,—" कहो न! क्या हुआ है?"

कुसुम,—" कुछ तो नहीं!"

बसंत,—" कुछ नहीं?"

कुसुम,—" हां! कुछ भी नहीं।"

कुसुम स्थिर दृष्टि से कुछ देर तक बसन्त का मुख देखती रह गई! फिर करवट लेकर धीरे से उसने एक लंबी सांस ली, किन्तु उसकी आहट बसन्त को न लगी! कुसुम ने थोड़ी देर तक करवट न फेरी, उतनी ही देर में उसकी आखों से दो-चार बूंद आंसू पलंग पर गिर पड़े, पर, 'प्यारा कहीं देख न ले,' यह सोचकर वह तुरन्त अपना मन मार कर उठ बैठी!

फिर उसने दासी से हुक्का लाने के लिए कहा और आप नन्हीं नन्हीं कोमल अंगुलियों से बीन बजाने लगी और ईमन का लहरा छेड़कर बोली,—" प्यारे! जरा ठेका तो दो!"

यह सुन बसन्त ने बायां लेलिया! हाय! उस बेचारे को यह क्या ख़बर थी कि आज कुसुम के सुकुमार कलेजे में कैसा उथार-भाटा मचा हुआ है!

उस समय वह कोकिल-सरीखे कंठ से गाने लगी,—

(राग ईमन)

" राखूं नैनों के तारे, प्रान प्यारे, आरे, आरे! ॥ टेक ॥
तन मन प्रान दियो जेहि, सो, यो, प्रेम नेम हिय हारे ॥
बिधि है, बाद साध क्यों पूरै, रोवैं नैन सितारे।
आत्महीन मन दीन बिकल अति, प्रान जात पगधारे ॥
जदपि समागम सुजन-सनेही, सो नहिं कियो सपारे।
ताके मुख सों तऊ सुखी ह्वै, मन मुद लहे अपारे ॥
कौन मेरो, मैं काकी होऊं, पीतम मोहि बिसारे।
रसिक किसोरी प्रेम फांस तें बचे प्रान मनियारे ॥ "

बसन्त,—" भई, वाह ! यह तो नई तरहदारी की गीत निकाली ! किन्तु प्यारी ! आज तुम्हारे मन मे क्या समाई हुई है, सो कुछ समझ नहीं पड़ता ! "

कुसुम,—" सच कहना ! "

किन्तु यदि बसन्त ध्यानपूर्वक गाने के समय कुसुम के भाव को देखता तो समझता कि, 'आज प्यारी कुसुम के हृदय मे कोटि-कोटि चिता धधक रही हैं !'

कुसुम ने बाजा बंद कर दिया और घबरा कर बसन्त की गोद में अपना सिर रख देर तक वह आंख फाड़-फाड़-कर उस (बसन्त) के मुख की ओर देखती रही ! मानो देखने से और भी देखने की लालसा बढ़ती जाती थी ! रह-रह-कर उसकी आंखों मे आंसू भर-भर आते. पर वह उन्हें पी जाती थी। यद्यपि बसन्त ने अभी तक कुसुम के भाव पर भरपूर ध्यान नहीं दिया था, पर इतना वह अवश्य समझता था कि, 'आज प्यारी कुसुम का चित्त, न जाने क्यों, डामाडोल होरहा है ! '

कुसुम ने हंसकर कहा,—"जाओ, बहुत रात बीती; अब घर जाओ। मुझे भी नींद आती है। "

बसन्त,—"नींद तो आती नहीं, न रात ही बहुत गई है, पर मुझे टालने के लिये तुम्हारा यह सब ढंग है ! "

कुसुम ने कष्ट से एक लंबी सांस लेकर कहा,—"नहीं, सो बात नहीं है। बहिन गुलाब तुम्हारी बाट जोहती होगी। "

बसन्त,—"पर, नहीं; आज तो बंदा यहीं रहेगा ! "

कुसुम,—"नही, अब जाओ; पर मुझे भूल न जाना ! "

यद्यपि बसन्त नहीं उठता था, पर बरज़ोरी कुसुम ने उसे उठाकर कलेजे से लगाया और बड़े कष्ट से अपने मन को सम्हाल कर एक बेर सिर से पैर तक अपने प्यारे को देख लिया ! मुख चूमा, गले लगाया और फिर निहारा ! ! !

बसन्त ने मुस्कुरा कर गाढ़ालिंगन करके कहा,—" पगली की भांति यों आंखे फाड़-फाड़-कर आज क्यो देख रही हो ? "

कुसुम ने बड़े कष्ट से उमड़ते हुए आंसुओं के वेग को रोक, कहा, "क्या न देखूं ? "

बसन्त ने परिहास से कहा, 'तो थोडी देर और यों ही

सामने मैं खड़ा रहूं; खूब मन भरकर देख लो ! "

कुसुम,—"हां ! हां ! ज़रा खड़े रहो ! "

बसन्त हंसते-हंसते सचमुच उसके सामने खड़ा रहा और कुसुम पलक-विहीन नयनों से उसकी ओर देखती रही !

उसके रङ्ग-ढङ्ग देखकर बसन्तकुमार ने उसके मन के असली भाव को न समझा और हंसकर कहा,—" प्यारी ! तुम्हारी इस अदा पर मुझे एक ग़ज़ल याद आया है !"

कुसुम,—" ऐसा ! तो उसे भी सुनादो ।"

यह सुन बसन्त वह ग़ज़ल पढ़ने लगा,—

" हरवक्त तेरी सूरत, ऐजान सामने है ।
हर लहज़ा सामने है, हर आन सामने है ॥
दिल चाक चाक करके, मुझसे यः पूछते हैं ।
दिल है अगर्चे तेरा, पहचान सामने है ॥
वादा किया हो पूरा, अच्छा क़सम तो खाओ ।
रक्खो तो हाथ इस पर, 'यह जान' सामने है ॥
मुझसा न होगा कोई, दोजान रखने वाला ।
एक जान घर में मेरे, एक जान सामने है ॥"

यह सुन और हंसकर कुसुम ने बसन्तकुमार को अपने कलेजे से लगाकर उसका मुहं चूम लिया । फिर थोड़ी देर पीछे बसन्त उससे बिदा होकर घर गया और धीरे धीरे उसके पैर की आहट मिट गई ! जब तक वह दिखाई दिया, कुसुम बाग़ की रविश पर खड़ी खड़ी उसे देखती रही; फिर उसके दूर जाने पर वह कमरे में चली आई और तड़प कर और तकिये पर सिर धर कर बहुत देर तक रोती रही; इसके बाद बसन्त की तस्वीर के सामने बैठ कर देर तक उसे निहारती रही; अनन्तर उसने तस्वीर में अपने हृदय, माथे और नेत्रों को लगाया, उसे चूम लिया, उस पर आंखें फेरीं और फिर देखा ! फिर उठ कर वह घबराहट के साथ कुछ लिखने लगी ! अनेक बार आंसू से कागज़ भीज गया, पर फिर भी वह लिखने लगी ! कई बार कागज़ के बिगड़ जाने से उसके लिखने में बाधा पड़ी, पर अन्त को उसने लिखकर एक चिट्ठी पूरी की । उस समय रात के दो बजे थे !

पैंतालीसवां परिच्छेद.

विषपान.
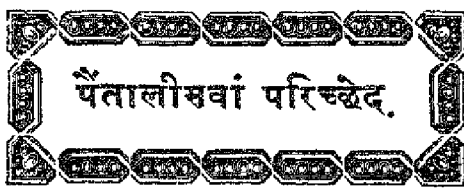
"मृत्योर्बिभेषि किं मूढ, भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति, कुरु यत्नमजन्मनि॥"

(वैराग्यप्रदीपे.)

चिट्ठी पूरी करके कुसुम ने उसे लिफ़ाफ़े में बन्द किया और उसके ऊपर लिखा, 'प्राणाधार बसन्तकुमार!' इतना लिखते लिखते—हाय! बेचारी कुसुम की जो दशा हुई, उसे लिखते कलम की भी छाती चार टूक हुई जाती है!

कुसुम ने चिट्ठी अपने पलंग पर रखकर आलमारी में से एक छोटी सी संदूक निकाली फिर उसे खोलकर उसके भीतर से एक सोने की डिबिया निकाली; उसमें से एक सफ़ेद-सफ़ेद सी "डली" निकाल कर आंचल में बांधली! फिर संदूक जहां की तहां रख, आलमारी का ताला बंद कर, बसन्तकुमार की तस्वीर के सामने जा, पछाड़ खाकर वह गिर पड़ी! एक घंटे तक वह उसी भांति वहीं पड़ी-पड़ी रोती रही, फिर उसने उठकर अपने प्यारे की तस्वीर को अपने कलेजे से लगाया और एक लंबी सांस ली। इसके बाद अपने आंचल से उसी डली को निकाल कर अपने मुंह में डाल लिया!!!

कुसुम जानती थी कि, 'अब इस पिछली रात के समय में मेरे चरित्रों का देखनेवाला कौन है!' पर नहीं, उसकी प्यारी नमक हलाल दासी हुलासी उसकी उसदिन की उदासी से मन ही मन दुखी होकर उस रात को जागती थी और उसके रंगढंग पर आंख लगाए हुई थी; सो वह कमरे के बाहर की झिलमिल में से उसकी सारी कर्तूत निहार रही थी! इतनी देरतक तो वह अल्हड़ दासी चुपचाप खड़ी खड़ी कुसुम की अद्भुत लीला देखती रही, पर जब कुसुम ने उस डली को अपने मुंह में डाल लिया तब हुलासी चुपकी न रह सकी और घबराकर "हाय हाय" करती हुई कमरे के भीतर

जाने की कोशिश करने लगी; किन्तु सब उपाय व्यर्थ हुआ, क्योंकि कुसुम ने बसन्त के जाने पर हुलासी को बिदा करके भीतर से कमरे के दर्वाज़े बन्द कर लिए थे !

फिर तो हुलासी ने चुपचाप,—जिसमें कुसुम आहट न पावे,—कई प्यादों को जगा और उन्हें कुछ समझा बुझाकर धीरे से एक ओर के दर्वाज़े के कब्ज़े का पेंच खोलकर राह बना ली और दबे पैर भीतर जाकर क्या देखा कि, 'जिस कोठरी में बसन्तकुमार की तस्वीर रक्खी थी, वहीं, उसी तस्वीर के नीचे, कुसुम बेसुध पड़ी है ! हाय ! बेचारी हुलासी का इसमें क्या दोष था ? वह क्या जानती थी कि, 'कुसुम ज़हर खा लेगी !'

निदान, हुलासी ने यह दशा देख अपना सिर पीट लिया, पर वह हैरान थी, कि, 'बीबी ने न जाने क्या खालिया । और क्यों खा लिया !!!'

आख़िर, चट उसने एक आदमी के हाथ कुसुम की सेज पर पड़ी हुई उस चिट्ठी को बसन्त के पास भेजा और यह भी कहला दिया कि, 'जहां तक हो सके, जल्द आइए, क्योंकि बीबी ने न जाने सफ़ेद-सफ़ेद क्या खा लिया है !' इसके बाद उसने दूसरे आदमी को समझा-बुझा-कर बैदजी के बुलाने के लिये दौड़ाया ।

हुलासी ने कुसुम को बहुत पुकारा, और उसके मुहँ पर गुलाबजल का बहुतेरा छींटा भी मारा, पर सब व्यर्थ हुआ, क्योंकि कुसुम !—हा !!! आगे नहीं लिखा जाता !!!

यहांपर एक बात कुछ खटकती है, वह यह है कि, 'ज्योंहीं कुसुम ने अपने मुहँ में संखिया की डली डाली थी, त्योंहीं हुलासी घबराकर कमरे के अन्दर जाने के लिये उपाय करने लगी थी; इसमें—अर्थात् कमरे के दर्वाज़े का कब्ज़ा खोलकर उस (कमरे) के अन्दर जाने में हुलासी को जादे से जादे आधे घंटे का समय लगा होगा, परन्तु क्या इतनी ही (थोड़ी) देर में कुसुम बेहोश होगई थी, जो हुलासी के इतने पुकारने या गुलाबजल के छींटे खाने से भी कुछ न बोली ! कौन जाने, इसमें क्या बात थी ! सम्भव है कि, 'कुसुम उस समय तक होश-हवास में रही हो;' और यह जानकर उसने सन्नाटा खैंचा हो कि, 'जिसमें मुझे ज़हर खाने का भेद अपने मुहँसे ज़ाहिर न करना पड़े ।' अस्तु जो कुछ बात हुई हो इसे नारायण ही जान सकते हैं

छियालीसवां परिच्छेद

कुसुम की ख़बर !

" विकृन्तनीव मर्माणि, देहं शोषयनीव मे ।
दहतीवान्तरात्मानं, क्रूरः शोकाग्निरुत्थितः ॥"

(करुणाकरे)

चार बजे रात को प्यादे ने जाकर वसन्तकुमार को आवाज़ दी! पहिली ही आवाज में वह चिहुंक कर उठ बैठा और बोला,—" कौन है ? "

प्यादे ने जल्द उसे आने के लिये कहा, जिसे सुन वह घबराया हुआ नीचे उतर आया और बोला,—" कहो क्या है ? "

प्यादे ने कहा,—"यह चीठी लीजिए; इसे हुलासी ने दी है, और आपको जल्द बुलाया है! नहीं मालूम कि बीबीजी ने क्या खा लिया है!!

" ऐं ! हा !! राम !!! " इतना कहते-कहते तलमला-कर वसन्त-कुमार वहीं गिरने लगा, पर उस प्यादे ने थाम लिया ! यदि उस प्यादे ने उसे थाम न लिया होता तो आज उसने अपने को बहुत जल्द कुसुम के पास पहुंचा दिया होता ! "

निदान, वैद्य बुलाने की ताकीद करके वसन्त ने प्यादे को बिदा किया और आप चिट्ठी लिए हुए अपने शयन-मन्दिर में गया ।

प्यादे के हल्ला मचाने से गुलाब की भी नींद उचट गई थी, पर उसने प्यादे की बातें कुछ भी नहीं सुनी थीं: सो वसन्त के हाथ में चिट्ठी देखते ही वह जल-भुन-कर ख़ाक होगई और ऐंठ कर बोली,— "क्यों, बुलावे की चिट्ठी आई है, क्या ? "

वसन्त उस बात का कुछ जवाब न देकर और एक कुर्सी पर बैठ कर रोशनी के सहारे पत्र पढ़ने लगा । किन्तु यह क्या ! चिट्ठी पूरी होते-होते उसने ज़ोर से, 'हा ! प्यारी ! कुसुम !!!' यों कहकर अपने कलेजे में ज़ोर से एक मुक्का मारा और कुरसी से गिरकर वह बेसुध होगया ! उसकी यह दशा देख गुलाब फिर स्थिर न रह सका, और झपट कर वसन्त के मुखड़े पर गुलाबजल छिड़कने और पखा झलने लगी । थोड़ी देर में वसन्त को होश हुआ तब वह उठा और उस चिट्ठी को गुलाब के सामने फेंककर उसने यों कहा

राक्षसी, गुलाब ! ले ! आज तेरी मनोकामना पूरी हुई ! अब तू ढोल बजा और सोहर गा ! बस, मेरी-तेरी यही आखिरी भेंट है ! तू निश्चय जान कि, चाहे बसन्त के बिना कुसुम ठहर भी सके, पर कुसुम के बिना बसन्त पल भर भी संसार में नहीं रह सकता !!!"

यों कहकर पागलों की तरह रोता-पीटता, बकता-झकता और झपटता-दौड़ता बसन्तकुमार बाग़ में पहुंचा । उस समय सुबह की सफ़ेदी चारों ओर फैल गई थी और वैद्यराजजी कुसुम को बराबर 'उलटी' करा रहे थे ! बेचारी गुलाब यह हाल देखकर सन्नाटे में आगई ! इस समय उसके कलेजे में बसन्तकुमार का तीखा ताना ज़रा भी नहीं लगा, वरन वह बहुत ही घबराहट के साथ कुसुम का पत्र उठाकर कांपती हुई पढ़ने लगी ! पत्र की पंक्तियां ज्यों-ज्यों कम होती जाती थीं, त्यों त्यों गुलाब के कलेजे के टुकड़े हुए जाते थे ! सारा ख़त पढ़ लेने पर वह,—" हा ! बहिन, कुसुम ! " इतना कहकर छाती पीट-कर रोने लगी !

लौंडियों ने चारों ओर से घिरकर उसे बहुत समझाया, पर आज गुलाब के कंटीले दिल ने वह चोट खाई थी कि जिसकी उपमा संसार में हई नहीं ! हम यह बात दृढ़ता से कह सकते हैं कि गुलाब को शायद बसन्तकुमार के भी मरजाने का उतना दुःख न होता, जितना कि कुसुम के ख़त पढ़ने से हुआ ! घंटों तक वह छाती पीटती, सिर पटकती, पछाड़ें खाती और ज़ोर ज़ोर से चिल्ला चिल्ला कर रोती रही । फिर जब रोने-धोने से वह ज़रा शान्त हुई, तब चट गाड़ी मँगवा कर कुसुम को देखने बाग़ चली !

यहां पर इतना और समझ लेना चाहिए कि, घर से बाग़ तक भीतर ही भीतर जो सुरंग गई थी, उसका हाल गुलाबदेई अभी तक नहीं जानती थी; क्योंकि उसके आने पर बसन्त और कुसुम,—इन दोनों ही ने सुरंग के रास्ते से आना-जाना बंद कर दिया था । हां, यदि कभी ऐसा ही काम पड़ता, तो कुसुम सुरंग के रास्ते से अपने आने कि ख़बर चुपचाप बसन्त के पास भेज देती, तब वह गुलाब को घर में दूसरी जगह टहला कर लेजाता और इस अर्से में कुसुम आजाती; और यदि कभी बसन्तकुमार सुरंग की राह से बाग़ में जाता, तो गुलाब की आंख बचा कर जाता था; पर ऐसा शायद ही कभी होता था ।
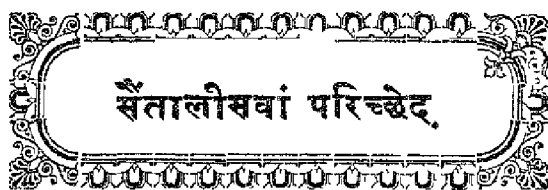
सैंतालीसवां परिच्छेद.

कुसुम का पत्र.

"व्रजामि लोकान्तरमद्य नाथ,
न मामलं शोचितुमर्हसि त्वम् ॥
भवान्तरे नौ भविता ध्रुवं यः,
समागमः शोक-वियोग-शून्यः ॥"

(प्रणयपारिजाते)

"हे प्राणपति, बसन्त ! लो, प्यारे ! आज मैं तुमसे आजन्म के लिये बिदा होती हूं और तुम्हें अपनी ही कसम देजाती हूं कि, 'यदि तुमने मुझे ज़रा भी प्यार किया हो, तो मेरे लिये रत्ती भर भी तुम उदास मत होना, ेर जीते जी ऐसी कोई बात भूलकर भी न कर गुज़रना, जिसमें ारी बहिन गुलाब का जी दूखै ।

"प्यारे ! संसार में यदि सचमुच किसीका जीना, मरने से ड़ोर दर्जे बुरा होता है, तो वह वेश्याओं का ! यद्यपि मैं ईश्वर के नुग्रह से रंडियों के नाक़िस पेशे से बेलाग बची रही, पर तो भी ग में कहाई तो रंडी ही न ! और जन्मभर खाया तो रंडी हो का ान्य न ? तो फिर ऐसे जीने से मुझ-सरीखी अधम-नारी के लिये रजाना ही बहुत अच्छा है ।

"प्राणनाथ ! यहां पर तुम यह बात मुझसे पूछ सकते हौ कि, तो ऐसी नासमझी करनी थी तो फिर मेरे साथ विवाह क्यों कया ?' इसका जवाब मैं यह देती हूं, सुनो,—हरिहरक्षेत्र की स घटना से तुम्हारे ऊपर मेरा सच्चा प्रेम हुआ और तब मैंने अपने न, मन, धन, यौवन, प्राण आदि सब कुछ तुम्हारे कदमों पर .छावर कर दिए; किन्तु फिर भी अपना असली हाल जान कर रे चित्त की दशा कुछ ऐसी हो रही थी कि जब मैं अपने पहिले ल पर ग़ौर करती तो बावली सी हो जाती और यही जी चाहता क, क्योंकर अपने तईं झटपट्ट इस दुनिया से दूर कर पर उस

समय आत्महत्या को मैं महापाप समझती थी; बस यही कारण था कि इतने दिनों तक मैं किसी न किसी तरह जीती रही।

"प्राणधन! यदि मैं चाहती तो तुम्हारे साथ अपनी ज़िन्दगी,—सुख से, या दुख से,—किसी न किसी तरह बिता ही देती; परन्तु एक दिन एकाएक मेरा ध्यान अपनी दशा, अपनी दौलत, और हिन्दूसमाज की ओर गया! मैंने सोचा कि मुझे या मेरी सन्तान को हिन्दूसमाज की गोद में कभी स्थान मिल ही नहीं सकता! हाय! यह बात सोचते ही मेरे रोम-रोम में बिच्छू डंक मारने लगे! यद्यपि मेरे पिता मुझे फिर से ग्रहण करने के लिये तयार थे, पर हिन्दूसमाज की चाल देखकर मैंने अपने पिता को नीचा दिखाना नहीं चाहा और अपनी अवस्था पर सन्तोष किया। फिर मैंने यह सोचा कि,—'प्यारे! मेरे लिये तुम भी अपने समाज से गिरकर रसातल में चले जाओगे और यह दौलत भी अन्त को योंहीं बर्बाद हो जायगी!' बस यही सब सोच समझ कर मैंने संसार, समाज और अपने सुख को तिलाञ्जुलि देकर तुम्हारा विवाह अपनी सगी बहिन के साथ कर दिया। अब यदि जगदीश्वर की दया होगी तो तुम अपने समाज में कायम रहकर बेटे-बेटियों का भी सुख उठाओगे और इस दौलत को भी अच्छे अच्छे कामों में लगाओगे।

"जीवनधन! केवल इतना ही नहीं, वरन भैरोसिंह की भयानक जीवनी और त्र्यम्बक के भयङ्कर परिणाम ने मेरे कलेजे को और भी भरपूर मथडाला, और अपने पिता से मिल कर तो मैं एक प्रकार से मरही चुकी! तो जब कि मेरी दशा ऐसी शोचनीय हो उठी,—तो प्यारे! अब तुम्हीं बतलाओ कि ऐसी दशा में फिर कै दिन जीने की इच्छा होसकती है और ऐसी अवस्था में आत्महत्या का कहां तक ख़याल रह सकता है?

"जीवनप्राण! एक बात और है, वह भी सुन लो,—भला अब मैं मरती बार तुमसे क्यों कपट रक्खूं? सुनो,—मेरे साथ जो तुम्हारी चुपचाप शादी हुई थी, इस बात को,—और मैं दर-असल कौन हूं और गुलाब मेरी कौन है, इस बात को,—अर्थात इन दोनों बातों को गुलाब पर न ज़ाहिर करने की मैंने तुमसे सख्त ताक़ीद करदी थी, और तुमने भी आज तक इन रहस्यों का रत्ती भर हाल भी उससे नहीं कहाथा; पर अब तुम उससे सारा भेद खोलकर कह देना और यह भी कह

देना कि तेरी सहोदरा बहिन कुसुम मरती बार तुझे बहुत बहुत आसीस देगई है! खैर तो इतने दिनों तक मैंने उससे ये सब बातें क्यों छिपाईं? इसीलिये कि, 'यदि गुलाब मेरा असली भेद और मेरी तुम्हारी-शादी का हाल न जानेगी तो मुझे एक मामूली रण्डी समझ कर बराबर मुझसे डाह किया करेगी और इस डाह का नतीजा यह होगा कि धीरे धीरे तुम उसके प्रेम में फँस कर मुझे छोड़ दोगे, तो मैं सुख से मर सकूंगी! धन्यवाद है जगदीश्वर को कि उस दयामय की परम दया से मेरे असल मतलब को तुमने न समझ कर मेरा हाल गुलाब से कुछ न कहा और मेरे विचार के अनुसार गुलाब ने मुझे सचमुच अधम वेश्या जानकर मुझ पर अपनी घृणा प्रगट की; इससे मेरा मनचीता होगया! मैं इस बात को बखूबी समझती हूं कि यदि गुलाब मेरा सारा रहस्य जान लेती तो यह निश्चय था कि तब वह मुझसे उसी तरह पेश आती, जैसे छोटी बहिन बड़ी बहिन के साथ पेश आती है! परन्तु प्राणधन! यह बात मुझे मजूर न थी,—अर्थात मैं इस अधम-दशा को पहुंच कर फिर इस संसार मे रहना नहीं चाहती थी। यदि यों मैं संसार से चल बसती तो, प्यारे! तुम मेरे लिये बहुत ही दुखी होते, इसीलिये मैंने तुम्हारी शादी कर दी। अब तुम मेरी जगह गुलाब को समझना और तुम्हे मैं लाख लाख कसम दिलाती हूं कि मेरे लिये सोच न करना।

"प्राणप्यारे! तुम्हें सुखी देखकर मैं मरती हूं, यही मेरे लिये अनन्त सुख है! मैं ईश्वर से बिनती करती हूं कि वह दयामय तुम-दोनो का सदा मंगल करै और दीर्घजीवी होकर तुम-दोनो आपस के सच्चे प्रेमसागर में डूबे रहो। प्यारे! तुम्हारा सुख देखकर मैं परलोक में भी सुखी होऊंगी, और यह बात मैं ज़ोर देकर कहती हूं कि मेरा-तुम्हारा मिलाप परलोक में ज़रूर होगा और यदि दूसरा जन्म लेना पड़े तो मैं उस जन्म में भी तुम्हारी ही अर्द्धांगिनी बनूंगी।

"जीवनसर्वस्व! तो आज ही मैंने ऐसा क्यों किया? इसका एक कारण है, सुनो,—जब मैंने यह बात भली भांति जानली कि, 'गुलाब तुम्हें मेरे पास आने देने की रवादार नहीं है,' तब मैंने अपने कूच की ठहराई! क्योंकि यही मैं चाहती ही थी। इसका सबब यह था कि जब तक मेरे पास तुम्हारा आना भली भांति न

छूटता, मैं अपनी इच्छा से कभी मर ही नहीं सकती थी।

"प्राणपति! रात को एक बजे यह पत्र लिखकर और अपने पलंग पर तुम्हारे लिये इसे छोड़कर और भीतर से कमरे के सब दर्वाजे बंद कर मैंने संखिया खा ली है! यद्यपि मैंने महापाप किया है, पर मैं क्या करती? लाचार थी; क्योंकि इसके अलावे वेश्याओं के पाप का और कौनसा प्रायश्चित्त हो सकता है! अस्तु, प्यारे! चाहे जो कुछ हो, किन्तु मुझे तुम अपनी बिना दाम की दासी जानकर मेरे सब अपराधों को क्षमा करना; क्योंकि यदि तुम सच्चे जी से मुझे क्षमा करदोगे, तो मेरी सद्गति होजायगी और परलोक में भी मुझे सुख मिलेगा।

"बस, प्यारे! अन्त में तुमसे मेरी यही विनती है कि मेरा अग्निसंस्कार आदि क्रियाकर्म तुम स्वयं न कर ब्राह्मण के हाथ से करवादेना। इसका सबब यह है कि मेरा असली हाल या मेरा तुम्हारा संबंध तो कोई जानता ही नहीं इसलिये मेरे संस्कार आदि करने से लोग तुम्हें बहुत ही हेय समझेंगे। मेरे काम-काज में भी बहुत कुछ खर्च-वर्च करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अन्त में मेरा एक यह भी अनुरोध है कि यों तो मेरे मरने की बात छिपी न रहेगी और मेरे पिता भी यह हाल सुन ही लेंगे पर भी तुम उनसे मेरे परिणाम का हाल मत कहलाना, क्योंकि मेरा हाल सुन कर उन्हें बहुत ही दुःख होगा।

"प्यारे, प्यारे! तुम मुझे अपने जी से बिल्कुल भुला देना, मेरे लिये ज़रा भी उदास न होना, मुझसे परलोक में मिलने की आशा बराबर बनाए रखना, और मेरे सारे अपराधों को क्षमा करना। मेरा यह पत्र मेरी प्यारी बहिन गुलाबदेई को यदि न दिखलाओ तो अच्छा हो, क्योंकि संभव है कि शायद वह मेरे गुप्त रहस्य का हाल जानकर उदास हो! बस अब विदा!!! प्यारे, विदा, विदा!!! हा!—

तुम्हारी प्राणप्यारी,

कुसुमकुमारी"

अड़तालीसवां परिच्छेद.

हमारा वक्तव्य
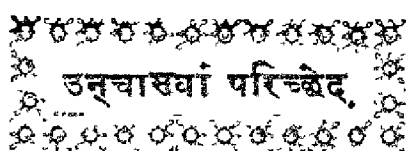
" अयमविचारितचारुतया, संसारो भाति रमणीयः ।
अत्र पुनः परमार्थदृशा, न किमपि सारमणीयः ॥"
(संसारशर्वरी.)

हमारे पाठकों को विदित हो कि, उस दिन, जिस दिन, कि, यह घटना घटीथी, कुसुम सुरंग के रास्ते से आकर और सुरंग के भीतर ही से गुलाब और बसन्त का झगड़ा सुनकर लौट गई थी । वह झगड़ा बसन्त कुमार के साथ गुलाब का कुसुम के पास जाने के लिये था, जैसा कि ऊपर हम लिख भी आए हैं । इसीसे उस दिन कुसुम बहुत ही उदास थी और उसी दिन उसने विष खाकर अपना ख़ातमा कर डालने का निश्चय किया था ! ! !

यह बात पाठकों को समझ लेनी चाहिए कि जिस दिन कुसुम ने अपना असली हाल जाना था, उसी दिन से वह संसार से किनारा कर बैठी थी; परन्तु बसन्तकुमार के उपकार के बदले चुकाने के लिये उसने अपने तईं फिर संसार में फंसाया और बसन्तकुमार को सच्चे जी से प्यार किया । उस प्यार का सच्चा बदला उसने बसन्तकुमार से भी पाया और सांसारिक सुख का भोग कुछ दिनों तक भोगकर अपने को धन्य माना; परन्तु कुछ दिनों तक भोगविलास करने के बाद फिर उसके चित्त ने पलटा खाया और उसने अपने मन ही मन यह निश्चय किया कि, ' अपने प्यारे का विवाह कर और सारी दौलत ठिकाने लगा, अपने को इस संसार से अलग करदूं ।' इसके बाद जब उसने अपनी एक क्वांरी बहिन का होना सुना, तब तो वह बहुत ही प्रसन्न हुई और उसने अपनी सगी बहिन के साथ अपने प्राणप्यारे का ब्याह कराकर अपने को संसार से अलग करने का निश्चय किया; परन्तु अन्त में हुआ क्या ? इसका हाल पाठकों को आगे चलकर आप ही आप विदित होजायगा
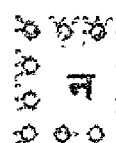
उन्चासवां परिच्छेद.

निराशा.

"आशा हि जीवलोकस्य, जीवनं जगतीतले।
सा नास्ति यदि किं तस्य, जीवनं जगतीतले॥"

(विवेकचूडामणौ.)

नई दुनियां के नए जीव अमेरिकावालों ने एक ऐसी युक्ति निकाली है कि जिससे कांटेवाले वृक्षों के कांटे दूर हो जाते हैं; अर्थात वहांके भूमिविद्या-विशारद लोग कटीले पौधों की कलम ऐसी खाद देकर लगाते हैं कि फिर उन पेड़ों में कांटे नहीं निकलते! इससे यह बात निश्चय है कि कांटा भी दूर होसकता है, तो फिर कुसुम की इस चिट्ठी या विषपान की घटना से यदि कटीली गुलाब के स्वभावरूपी पौधे से कटीलापन एक दम से दूर होजाय तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं है।

जिस समय वसन्तकुमार की अब-तब की हालत होरही थी, उस समय उसकी प्यारी कुसुम की क्या दशा हुई थी, इसे हमारे पाठकलोग शायद अभी न भूले होंगे! किन्तु कुसुम की उस दशा से आज वसन्त की दशा कड़ोर दर्जे खराब होरही थी! वह पागलों की तरह दौड़ा हुआ बाग में आया, और वैद्यजी से,—'कुसुम के बचने की कोई आशा नहीं है,' यह सुनकर कटे-पेड़ की तरह ज़मीन में धड़ाम से गिर कर बेहोश होगया! कहां तो एक कुसुम ही के लिये इतनी तरद्दुद थी, कहां अब वसन्त के लिये भी दौड़-धूप होने लगी! वैद्यजी के अनेक यत्न करने पर वसन्त को होश तो हुआ,—पर वह बाई के झोंक में कभी अर्र-बर्र बकता, कभी उठ कर कुए में गिरने दौड़ता, कभी पत्थर पर सिर पटकना चाहता, कभी छुरी लेकर गले या कलेजे में मारना चाहता, या कभी दूसरों के मारने के लिये दौड़ता था; परन्तु कई लोग उसकी रखवाली में मुस्तैद थे, इसलिये वह कोई पागलपने के काम नहीं करने पाता था।

बाग में आकर गुलाब ने कुसुम और वसन्त की दुर्दशा देखी और मदन ही को इस सारी विपत्ति की जड़ समझ कर उसने अपने

इस पाप के प्रायश्चित्त करने की क़सम खाई !

उसने बसन्तकुमार को एक जंगलेदार कोठरी में कई आदमियों की हिफ़ाज़त में बंद किया और कुसुम की सेवा में वह स्वयं दासी की भांति लग पड़ी !

यद्यपि वैद्यजी ने कुसुम के बचने की कोई आशा गुलाब को नहीं दी थी, और यद्यपि कुसुम के मरने पर बसन्त के भी बचने की कोई आशा नहीं की जासकती थी; तौ भी वह (गुलाब) अपनी जान लड़ाकर कुसुम और बसन्त की ऐसी सेवा टहल करने लगी थी कि जैसी सेवा शायद कुसुम की बसन्त से, या बसन्त की कुसुम से भी न होसकती; क्योंकि गुलाब ने यह बात मन ही मन सोच रक्खी थी कि,—'जब तक इन दोनो के प्राण शरीर से सम्बन्ध रखते हैं, तब तक तो इन दोनों की सेवा करके मैं अपने पाप का प्रायश्चित करलूं, क्योंकि फिर तो इन दोनो के मरने पर मुझे भी अपने तईं इस दुनियां से मिटा ही देना होगा !' यही सोच-समझ-कर गुलाबदेई जी-जान से उन दोनो की सेवा-टहल करने लगी थी। देखें, जगदीश्वर को गुलाब की सेवा, या कुसुम-बसन्त की दशा पर कुछ दया आती है या नहीं ?

कुसुमकुमारी की चिट्ठी को लिखावट पढ़कर गुलाब बड़ी भूलभुलैयां में पड़गई थी ! क्योंकि उसे अपनी किसी सहोदरा भगिनी के मौजूद रहने का कोई हाल मालूम नहीं था और वह यह भी नहीं जानती थी कि, 'मेरी कोई बहिन कभी श्रीजगदीश को चढ़ाई गई थी !' इसके अलावे त्र्यम्बक का नाम जो कुसुम की चिट्ठी में आया था, उसका रहस्य भी वह नहीं जानती थी। यद्यपि अपने पिता के गण्डा त्र्यम्बक को वह जानती थी, पर उस (त्र्यम्बक) से कुसुम का क्या सम्बन्ध था, यह बात कुछ भी नहीं समझी थी। इन बातों के अलावे 'भैरोसिंह' के नाम से भी वह एक दम अनजान थी। फिर एक वेश्या (कुसुम) के साथ अपने पति (बसन्तकुमार) के ब्याह करने की बात पढ़कर तो वह और भी घबरा गई थी; परन्तु इतना उसने अवश्य समझ लिया था कि कुसुम हो न हो मेरी बहिन जरूर होगी

पचासवां परिच्छेद.

एक प्रश्न.

"असारे खलु संसारे सारं यत्तद्ब्रवीम्यहम्।
संयोग एव नित्यं स्यान्न वियोगः कदाचन॥"

(साहित्यमञ्जरी)

महाकवि कालिदास ने कहा है कि,—"भिन्नरुचिर्हि लोकः"—अर्थात्,—'सभी लोगों की रुचि एकसी नहीं होती।' ठीक है, इसे हम भी मानते हैं; और इसी लिये हम यहां पर कुछ कहा चाहते हैं।

हमारे पाठकों में भी बहुतेरे लोग संयोगान्त के, और कुछ लोग वियोगान्त के अनुरागी होंगे, इसलिये दोनों प्रकार की रुचिवाले प्रसन्न हों, यह समझ कर यहां पर हम पहिले वियोगान्त-रुचि-वालों से यह कहते हैं कि,—"बस, अब आपलोग इस उपन्यास को यहीं तक पढ़कर रख दीजिए और समझ लीजिए कि,—'कुसुम मरगई, पागल बसन्त भी मरगया और उन दोनों के मरने पर कमबख्त गुलाब ने भी अपनी जान देकर अपने पाप, अर्थात सपत्नीबध और पतिहत्या का प्रायश्चित्त करडाला!' फिर पीछे क्या हुआ? वही, जो लावारिसों की बेबूझ दौलत का होना है!!; अर्थात्, 'मांस के टुकड़े पर चील्हझपट्टे की भांति अरोसी-परोसी, अपने-पराए, वारिस-लावारिस आदि लोगोंने मनमानी लूट-खसोट मचाई; पर जैसे चीलों को मार-भगा-कर पक्षिराज गिद्ध अपना ही अधिकार जमाता है, वैसे ही सब लुटेरों को दूर करके लावारिस सम्पत्ति पर राजा ने अपना कबज़ा किया और यों देखते-देखते एक नई फुलवारी, जिसमें बसन्त की आमद से कुसुम की कली अभी खिली भी नहीं थी, और गुलाब की कली चटकी भी नहीं थी कि एकाएक आकाश से अकाल के उल्कापात से वह जल-भुन कर खाक-स्याह होगई!'"

क्यों साहब! वियोगान्त के प्रेमियों! अब तो आप खुश हुए न? किन्तु ज़रा आप हमारे सामने तो तशरीफ़ शरीफ़ लाइए क्योंकि

हम देखा चाहते हैं कि आपका वज्रहृदय दधीचि' के किस अङ्ग के हाड़ से विधाता ने गढ़ा है! हा, खेद! भला हम आपसे यह पूछते हैं कि कुसुम या बसन्त ने धर्म, कर्म, संसार, समाज, लोक, परलोक, देश, बिदेश, या किसी बियोगान्तप्रेमी व्यक्तिविशेष का क्या बिगाड़ा है कि ये दोनों यों संसार से निकाल बाहर किए जायं, और जिन अर्थपिशाच नरराक्षसों से धर्म, कर्म, संसार, समाज, देश, विदेश, और व्यक्तिविशेष का सत्यानाश होरहा है, वे दुराचारी लोग मूछों पर ताव फेरते हुए दूसरे मार्कण्डेय बनकर दीर्घजीवी हों? हा, धिक!!!

इसलिये वियोगान्त के प्रेमियों से हमारा यह प्रश्न है कि,—"आप बतलावें कि, 'वियोगान्त वर्णना' किस या कैसे स्थल-विशेष में वर्त्तनी चाहिए?' यदि आपलोग कृपाकर इस निगूढ़ तत्त्व को हमारे हृदय में प्रवेश कराने में समर्थ होंगे, तो आगे से हम आप ही के बतलाए हुए मार्ग को ग्रहण करेंगे; किन्तु जब तक आप-लोगों का मत हमारे जी में न धँसेगा, तब तक हमारा ही मत हमको माननीय रहेगा!

बस, प्यारे, वियोगान्त के प्रेमियों! आप अब इसे पढ़ना बस कीजिए,—

और प्राणप्यारे, संयोगियों, या संयोगान्त-वर्णना के प्रेमियो! आप लोग क्यों उदास होने लगे? घबराइए मत, कुसुम, या बसन्त का कुछ भी नहीं होसकता; क्योंकि जब बसन्त साक्षात् ईश्वर का दूसरा रूप है,—"ऋतूनां कुसुमाकरः"—तब फिर नाम के नाते से क्या कुसुम और बसन्त का विनाश कभी होसकता है? कभी नहीं! तो फ़िर यह भी निश्चय ही जानिए कि तब गुलाब की बाड़ी भी खिलेगी, पर नई दुनियांवालों की नई युक्ति से अब उसमें कांटे नहीं निकलेंगे!!!

इक्यावनवां परिच्छेद.

आशा.

" आशा दुःखनिवारिणी, सुखकरी, सौभाग्यसम्पत्करी,
नानाख्यानसुखानुभूतिजननी शश्वद्दिनं दालया।
सर्वत्रैव जयावहा, सुरुचिरा, रम्या, गुरूणां गुरुः,
सा श्रेष्ठा, परदेवता, भुवि नृणां, दिव्यातिदिव्यौषधिः ॥"

(नीतिरत्नावली.)

वसन्तकुमार जब भयानक रूप से घायल हुआ था, तब उसके चंगे होने तक कुसुम ने उसकी कैसी सेवा की थी, यह बात हमारे पाठक लोग शायद अभीतक न भूले होंगे! इसलिये उन्हें हम केवल इतना ही कहकर समझा देना चाहते हैं कि, 'जैसी सेवा कुसुम ने वसन्त की की थी, उससे कहीं बढ़कर गुलाब कुसुम की सेवा करने लगी!' उसने खाना, पीना, सोना, आराम करना, आदि सारे सुख छोड़ और अपने शरीर और जान को मिट्टी में मिलाकर कुसुम की ऐसी सेवा की कि धीरे धीरे उसके बचने की आशा हुई! ज्यों ज्यों कुसुम के अच्छे होने के लक्षण दिखलाई देने, त्यों-त्यों गुलाब और भी मुस्तैदी के साथ उसकी सेवा करती; और बड़ा मज़ा तो यह था कि अभी तक गुलाब ने कुसुम की रहस्य से भरी हुई जीवनी का कुछ भी तत्त्व नहीं जाना था, बरन कुसुम के खत से वह और भी हैरान होगई थी, पर फिर भी उसने जी-जान से ऐसी सेवा कुसुम की की कि जैसी मा बेटियों की, या बहिन बहिनों की करती है!

शाबाश मन, गुलाब! जगदीश्वर तेरी सेवा की मज़ूरी तुझे ज़रूर देगा! यहां पर एक बात और भी बड़े अचम्भे की थी; अर्थात् ज्यों-ज्यों कुसुम अच्छी होने लगी, त्यों-त्यों वसन्त का भी पागलपन घटने लगा!

आठवें दिन कुसुम ने भरपूर होशहवाश में आकर आंखें खोलीं और धीमी आवाज़ से यों कहा,—" मैं कहां हूं?"

गुलाब कुसुम की बोली सुनकर बहुत ही खुश हुई, उसने ईश्वर को धन्यवाद देकर कहा — " बहिन ' तुम अपने बाग ही में तो हो?"

कुसुम,—(कुछ सोचती हुई) "तुम कौन हो ?"

गुलाब,—"तुम्हारी लौंडी, गुलाब !"

कुसुम ऐसा जवाब सुनकर सन्नाटे में आगई! फिर जरा ठहर कर बोली,—"बहिन, गुलाबदेई !"

गुलाब,—"हां ! जीजी !"

कुसुम,—"मैं तेरी जीजी कैसे हुई ?"

गुलाब,—"यह तो तुम्हीं जानो !"

कुसुम,—"आखिर तूभी तो कुछ बता ?"

गुलाब,—"तुम बड़ी हो, इसलिये जीजी हो।"

कुसुम,—"अह ! यह तो एक दुनियां का दस्तूर है कि छोटी सौत अपनी बड़ी सौत को "जीजी" कहा करती है।"

गुलाब,—"लेकिन, मैंने तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी है; उसमें तो तुमने मुझे अपनी सगी बहिन बतलाया है ?"

कुसुम,—"क्या वह चीठी तैने पढ़ी है ?"

गुलाब,—"हां, जीजी !"

कुसुम,—"उस चीठी से तू क्या समझी ?"

गुलाब,—"समझी तो मैं कुछभी नहीं; पर इतना मैंने निश्चय कर लिया कि,—'जब कि तुम मुझे अपनी छोटी बहिन बतला रही हो,'—तो मैं ज़रूर ही तुम्हारी सगी बहिन होऊंगी।"

कुसुम,—"तैने उस चीठी के रहस्य की बातें उनसे नहीं पूछीं ?"

गुलाब,—"नहीं।"

हा ! बेचारी कुसुम ने गुलाब से ऐसा मीठा जवाब कभी नहीं पाया था ! यदि पाए होती तो वह संखिया ही क्यों खाती !

उसने फिर पूछा,—"वे कहां हैं ?"

इतने ही में बसन्त आ, और "प्यारी, प्यारी ! कुसुम !" इतना कह उसके पैताने बेहोश होकर गिर पड़ा !

कुसुम भी,—"हाय, यह क्या हुआ ?" कह कर उठने लगी पर कमज़ोरी और दुःख के सबब से खाट पर गिरकर बेहोश होगई।

गुलाब ने चट बसन्तकुमार को होश में लाकर वहांसे दूर हटाय और कुसुम को भी होश कराया।

उसी दिन एक और विचित्र घटना हुई

बावनवां परिच्छेद,

भाई का पत्र,

"वृत्तान्तं यत्त्वयाऽऽख्यातं, तात हे! रोमहर्षणम्।
श्रुतं तद्वैर्यविध्यापि, विचित्रमिदमद्भुतम्॥"

(पद्मपुराणे)

बिहार से कुसुम और गुलाब के सगे भाई अनूपसिंह का भेजा हुआ एक सवार आ पहुंचा। बसन्तकुमार की तबीयत बहुत बीमार थी, इसलिये सवार ने चिट्ठी ज़नाने में गुलाबदेई के पास भेजदी। वह चिट्ठी गुलाब देई के नाम की थी, इसलिये उसने वह चिट्ठी खोल कर पढ़ी और आपही आप कह उठी,—"हाय! अफ़सोस!!!"

उस चिट्ठी में क्या लिखा था, उसे भी सुन लीजिए,—

अनूपसिंह ने गुलाब को यों लिखा था,—

"प्यारी बहिन गुलाब,

"पूज्यपाद श्रीपिताजी के बचने की कोई आशा नहीं है, वे तुम्हें देखा चाहते हैं; इसलिये जहांतक होसके, तुम जल्द आओ। एक बात तुमसे और कहने की है;—वह यह है कि जीजी कुसुमकुमारी तुम्हारी और हमारी सहोदरा बहिन है। इस बारे में शायद तुम कुछ भी न जानती होगी, इसलिये इस विचित्र बात को सुनकर चिहुंकना मत। बात यह है कि इस रहस्य की सारी बातें या तो तुम मेरे जीजाजी (बसन्तकुमार) से पूछ लेना, या यहां आकर मुझसे सुनना। बस, तुम अभी इतना ही जान रक्खो कि, 'जीजी कुसुमकुमारी तुम्हारी और हमारी सगी बड़ी बहिन हैं।' उन्हें श्रीपिताजी ने बड़े आग्रह से बुलाया है, इसलिये तुम जीजी कुसुम-कुमारी को अपने साथ ज़रूर लेती आना, इसमें गफ़लत ज़रा न करना; क्योंकि श्रीपिताजी की ऐसी ही आज्ञा है।

तुम्हारा प्यारा भाई,

अनूप"
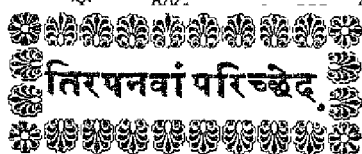
तिरपनवां परिच्छेद.

यात्रा.

"मनोऽनुकूला सुखदप्रभावा,
स्वास्थ्यप्रदा बुद्धिविवेकदात्री।
विनोदपूर्णा नयनाभिरामा,
यात्रार्थदात्री जयकारिणी च॥"

(वैद्यमहोत्सवे)

अब, बतलाइए, पाठक! ऐसी अवस्था में बेचारी गुलाब क्या करती? बसन्तकुमार तो इस समय ख़ासा बसन्त बन रहा था और कुसुम की यह दशा थी; तो अब बेचारी गुलाब क्या करती, और इस बारे में किस से सलाह लेती? एक तो गुलाब कुसुम की रहस्यमयी जीवनी का तत्व जानने के लिये योंहीं घबरा रही थी, दूसरे अनूपसिंह के पत्र ने तो उसे और भी हैरान कर दिया था! अब न तो गुलाब यह हाल ही कुसुम से कह सकती थी, और न उस प्यादे ही को बिना-समझे-बूझे बिदा कर सकती थी! सोचिए तो, पाठक! यह कैसा नाज़ुक मामला था!

निदान, पहिले तो गुलाब ने वैद्यजी के साथ—उन्हें कोई गुप्त भेद न बतलाकर—इस बात की सलाह की कि,—'यदि कुसुम और बसन्त हवा बदलने के लिये बाहर ले जाए जांय तो कैसा?' इसपर पहिले तो वैद्यजी ने मना किया, पर जब गुलाब ने बहुत हठ किया और यह कहा कि,—'आपको भी साथ चलना होगा और पूरा मेहनताना मिलेगा;' तब तो वैद्यजी राज़ी होगए! फिर गुलाब ने अकेले मे बसन्तकुमार को बुलाकर उसे अनूपसिंह की चिट्ठी दिखलाई और यह पूछा कि, "अब क्या करना चाहिए?"

बड़े भाग्य की बात थी कि आज बसन्तकुमार कुछ होश-हवास में था; उसपर यह और भी आश्चर्य की बात हुई कि उस पत्र ने उसके साथ धन्वन्तरि का काम किया। जिसके पढ़ते ही एक दम से उसका सारा पागलपन जाता रहा और उसने गुलाब का

पैर पकड़ कर कहा,—" मेरी प्यारी ! तुम देवी हो; क्योंकि मैंने तुम्हारे ही पुण्य से कुसुम को फिर से पाया है; इसलिये अब जो कुछ उचित जान पड़े, वह करो ।"

इन बातों से गुलाब की आंखों मे प्रेम के आंसू भर आए और उसने अपना पैर खैंच कर कहा,—"प्यारे ! मेरे लिये तो अब पहिले जीजी (कुसुम) हैं, और इनके पीछे तुम हो ।"

फिर तो घर का पूरा-पूरा इन्तज़ाम करके तीसरे दिन गुलाबदेई कुसुम और बसन्त को साथ ले, बिहार—अपने मायके चली। इनके साथ दाई, चाकर, सिपाही, प्यादे, रसोईदार आदि सब मिलाकर कोई तीस-चालीस आदमी चले और रास्ते में किसी बात की तकलीफ़ न हो, इसका पूरा पूरा इन्तज़ाम कर लिया गया। अनूपसिंह का प्यादा पहिले से ही बिदा कर दिया गया था कि वह जाकर पेश्तर ही सबके आने की ख़बर देदे ।

कुसुम तो पालकी पर सफ़र कर रही थी और बसन्तकुमार के साथ गुलाब रथ पर सवार होकर कुसुम की पालकी के पीछे पीछे चली थी।

यद्यपि कुसुम ने अभी तक यह नहीं जाना था कि, 'हम लोग कहां जारहे हैं,' पर बाहर के हवा-पानी से वह बहुत जल्द अच्छी होने लगी थी। यहां तक कि तीन-चार दिन के ही सफ़र में वह आपसे उठने और चहलक़दमी करने लायक होगई थी।

यहांपर इतना और भी लिख देना हम उचित समझते हैं कि इस सफ़र में बसन्तकुमार अपने होश-हवास में ही रहा और धीरे धीरे उसका सारा पागलपन जाता रहा। इसी बीच मे उसने गुलाबदेई से कुसुम का सारा जीवन-चरित, जिसमें भैरोसिंह का, त्र्यम्बक का और निज का हाल भी शामिल था, या जो कुछ हाल इस उपन्यास में लिखा जा चुका है, सब सुना दिया। जिसे सुन कर गुलाब बहुत ही चकित हुई और उसने यह जान लिया कि, 'वास्तव मे कुसुम मेरी बड़ी और सहोदरा बहिन है!'

गुलाब ने कहा,—" हाय, तो तुमने पहिले ये सब बातें क्यों नहीं मुझ पर ज़ाहिर कीं ? यदि मैं यह हाल जान लेती तो अपनी बड़ी बहिन से ऐसी डाह क्यों करती ? "

इसका कुछ जवाब न देकर बसन्त ने एक लंबी सांस लेकर अपना माथा ठोंका और कहा, "होनी हुए बिना टलती नहीं है"
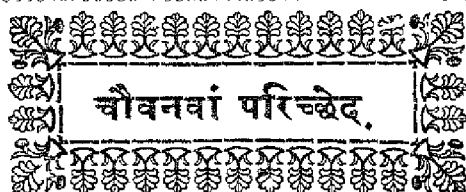
चौवनवां परिच्छेद.

विचित्रलीला.

"अहो महच्चित्रमिदं, यदाचरितमद्भुतम्।
स्मारं स्मारं तदेवाहं, हृष्यामि च पुनः पुनः॥"

(महाभारते)

जब बिहार पहुंचने में एक दिन बाक़ी रह गया, तब गुलाबदेई ने चालाकी से कुसुम की सेज पर अनूपसिंह-वाला वह पत्र, जिसका हाल ऊपर लिखा जाचुका है, डाल दिया और आप आड़ में बैठ कर देखने लगी कि, 'कुसुम इसे पढ़कर क्या रंग लाती है!' गुलाब की इस चालाकी में बसन्त भी शामिल था और वह भी गुलाब के साथ आड़ में बैठकर कुसुम के चेहरे का उतार-चढ़ाव देख रहा था!

आख़िर, कुसुम की नज़र उस चिट्ठी पर पड़ गई और उसने उस ख़त को ग़ौर से दो-तीन बेर पढ़ा! पढ़कर उसने एक लंबी सांस ली और मन ही मन यह समझ लिया कि, 'इसी लिये यह सफ़र कीगई है और बीमार समझ कर आज तक मुझसे यह बात छिपाई गई है!'

कुसुम इस बारे में कुछ और सोच-बिचार करती, पर चट बसन्त और गुलाबदेई,—ये दोनो उसके सामने पहुंच गए। दोनों के हाथ में एक एक भयानक छुरा था, और दोनो ही ने अपने अपने कलेजे पर उसकी नोक रखली थी!

यह विचित्र तमाशा देखकर कुसुम बहुत ही घबरा गई और चकपकाकर वह उठा ही चाहती थी कि गुलाब ने कहा,—"बस, जीजी! अगर अपनी जगह से तुम ज़रा भी हिलीं तो यह छुरा हम-दोनों के कलेजे के पार ही पहुंच जायगा!"

कुसुम,—"बहिन, गुलाबदेई! यह कैसा स्वांग है? मैंने क्या अपराध किया है?"

र ने कहा सुनो प्यारी जो कुछ गुलाब कहे

उसे तुम झटपट मान लो; नहीं तो हम-दोनों अभी अपने अपने कलेजे में छुरा मार मरेंगे ! "

कुसुम,—(हैरान होकर) "प्यारी, गुलाब ! तू क्या कहती है !"

इतने ही में हुलास्सी ने गंगाजली लाकर कुसुम के सामने धरदी और गुलाब बोली,—"बस, जीजी ! अगर दोदो जानें लेनी तुम्हें मञ्जूर न हों तो, बहिन ! गङ्गाजली उठाकर, जो मैं कहूं, उसके करने की तुम क़सम खाओ । "

कुसुम,—(मुस्कुराकर और बसन्त की ओर देखकर) "क्यों साहब ! यह क्या नाव-वाला बदला मुझसे लिया जाता है ? "

बसन्त,—"जीहां, हुजूर! अब आया आपकी समझ के बीच में ?"

कुसुम,—(गङ्गाजली उठाकर गुलाब से) "बोल, री गुलाब ! तू कहती चल और मैं क़सम खाती चलूं; जिसमें यह बखेड़ा जल्द तय होजाय । "

गुलाब,—"एक तो यह कि अब कभी भी तुम किसी तरह की भी "आत्महत्या" करने का इरादा न करोगी ।"

कुसुम,—(क़सम खाकर) "और बोल ? "

गुलाब,—"दूसरे यह कि मुझे सदा अपनी लौंडी की भांति ही समझोगी और कभी मेरी नालायकी पर ध्यान न दोगी । "

कुसुम,—(क़सम खाकर) "ख़ैर, और बोल । "

गुलाब,—"तीसरे यह कि अब मुझे कभी भी जीते दम तक न भूलोगी और जब मैं नैहर न जाऊंगी तब रात दिन एक ही जगह रहोगी, अर्थात् एक ही घर में साथ ही रहोगी । "

कुसुम,—(क़सम खाकर) "अच्छा, और बोल ।"

यह सुन गुलाब छुरा दूर फेंककर कुसुम के पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली,—"बस, अब कुछ नहीं !"

यह देख कुसुम ने गुलाब को उठाकर गले से लगाया और बड़ी मुहब्बत के साथ उसके गालों को चूम लिया ।

अब बसन्तकुमार की पारी आई और उसने भी छुरा तानकर गुलाब से कहा,—"प्यारी ! अब एक बात की तुम भी क़सम खाओ, नहीं तो मैं अभी अपना ढेर किए देता हूं ! "

गुलाब,—(गङ्गाजली उठाकर) "जल्द कहो । "

बसन्त,—"अब तुम अपने जानते में कभी भी ऐसा कोई काम

न करना कि जिसमें प्यारी कुसुम का ज़रा भी जी दुखै।"

गुलाब,—(क़सम खाकर) और कहो ?"

यह सुनकर बसन्त ने छुरा दूर फेंक दिया और गुलाब को गले लगाकर कहा,—"बस, प्यारो ! बस।"

कुसुम को भी दिल्लगी की सूझी, इसलिये उसने भी झपटकर छुरा उठा लिया और बसन्त से कहा,—"बस अगर मेरी जान प्यारी हो तो तुम भी एक क़सम खाओ।"

गुलाब,—"मगर, जीजी ! तुम तो अभी आत्महत्या न करने की क़सम खाचुकी हो न ?"

कुसुम,—"गुलाब ! तू ज़रा चुपचाप रह। (बसन्त से) मेरी क़सम के भरोसे न रहना, इसलिये यदि तुम क़सम न खाओगे तो — — — —"

बसन्त,—(उसे रोक और गङ्गाजली उठाकर) "कहो, प्यारी ! कहो ! तुमसे हम हर तरह हारे हैं !"

कुसुम,—"यह कि जैसा तुम मुझे प्यार करते हो, वैसा ही गुलाब से भी प्रेम का बर्त्ताव करना और कभी भूल कर भी ऐसी कोई बात न कर बैठना, कि जिसमें, गुलाब का जी दुखी हो ! यदि कभी तुमने गुलाब को नाराज़ किया तो समझ रखना कि, बस, कुसुम की उम्र पूरी होगई ! फिर मैं क़सम का ज़रा भी ख़याल न करूंगी और अपनी जान देदूंगी।"

बसन्त,—(क़सम खाकर) "और फ़र्माओ ?"

कुसुम,—"बस, आज यहीं तक !"

बसन्त,—"क्यों ? यहीं तक क्यों ? कुछ और आगे बढ़ो !"

कुसुम,—"क्या मैं तुम्हारे तावे हूं कि तुम्हारा हुक्म मान लूंगी !"

बसन्त,—"जी, नहीं ! ताबेदार तो बन्दा है ! ! !"

यह सुन और बसन्त के गले में बाहें डालकर बड़ी मुहब्बत के साथ कुसुम ने उसके गालों को चूम लिया और कहा,—"क्यों, प्यारे ! मेरी बातों से तुम नाराज़ तो नहीं हुए ? सच कहो, तुम्हें मेरी क़सम; नाराज़ तो नहीं हुए ?"

बसन्त ने कुसुम के गालों को बार बार चूमते हुए कहा,—"नहीं, प्यारी ! भला मैं तुमसे कभी नाराज़ हो सकता हूं !"

क्यों प्यारे पाठकों कहिए ? सुख इसमें है या में ?

पचपनवां परिच्छेद.

पितृवियोग.

"लोकान्तरे गतोसि त्वं, तातेदानीं हताऽस्म्यहम्।
किं करोमि क्व गच्छामि, को मां शान्तिं प्रदास्यति॥"

(पद्मपुराणे.)

निदान! वह दिन गुलाब की चालाकी से बड़े मज़े में बीता और दूसरे दिन जाकर दोनों बहिनें अपने पिता से मिलीं। अनूपसिंह और उसकी स्त्री ने कुसुम को उसी खातिर से अपने घर में उतारा, जिस खातिर से कि गुलाब को उतारा था।

राजा कर्णसिंह ने कुसुम को बड़े स्नेह से अपने पास बैठाकर उसका सिर सूंघा और देरतक वे उसके साथ बातें करते रहे। उसी अवसर में कुसुम की ज़बानी उन्होंने त्र्यम्बक का हाल भी सुना था।

उन्होंने कुसुम से कहा कि,—"बेटी! मैं तो अब इस संसार से कूच करता हूँ, पर यह 'भविष्यवाणी' मैं कहे जाता हूं कि, 'अब देवताओं को कन्याएं न चढ़ाई जायंगी'।"

यह सुनकर कुसुम को बड़ी खुशी हुई।

राजा कर्णसिंह कुसुम की जीवनी सुनकर जैसे दुखी हुए थे, यह बात हम कह आए हैं; बस, उसी शोक में गलते गलते वे इस दशा को पहुंचगए थे! उनकी यह हालत देखकर उनसे गुलाब ने कुसुम के ज़हर खाने का हाल नहीं कहा था। हां, अनूपसिंह से यह हाल कह दिया गया था।

दो रोज़ बाद राजा कर्णसिंह ने इस असार संसार को छोड़ दिया। उनकी इस मृत्यु से गुलाब को जितना शोक हुआ था, कुसुम को उससे कम शोक न हुआ; वरन इसका (कुसुम) का शोक और भी बढ़गया था, जब उसने अपनी हालत और अपनी माता को याद किया था; अस्तु।

उनके क्रिया-कर्म से छुट्टी पाने पर अनूपसिंह ने कुसुम को एक दानपत्र दिया जिसमें कर्णसिंह कुसुम को अपनी बेटी स्वीकार

करके सौ रुपए महीने की आमदनी का एक गांव उसके नाम लिख गए थे !

यह बात भी अनूपसिंह ने कुसुम को समझा दी थी कि, 'अबसे हम बराबर सच्चे जी से तुमसे बहिन का सा बर्त्ताव रक्खेंगे !'

इस पर कुसुम ने बहुत से उज्र पेश किए ! पर अन्त में सबकी यही राय ठहरी कि, 'कुसुम के साथ जो कुछ बर्त्ताव रक्खा जाय, वह गुप्त रीति पर,' क्योंकि इसके ज़ाहिर करने की अब कोई आवश्यकता नहीं है !'

यद्यपि पिता के शोक से कुसुम बहुत ही दुखी हुई थी, परन्तु उसकी छोटी सी भाभज ने अपनी दोनो ननदों को ऐसे प्यार से रक्खा और उन दोनों के साथ ऐसे मज़े में दिन बिताना शुरू किया कि कुसुम के जी से पितृशोक की ज्वाला धीरे धीरे ठंढी होने लगी। यहां पर इतना और समझ लेना चाहिए कि अनूपसिंह की स्त्री पर भी कुसुम की जीवनी का सारा रहस्य प्रगट कर दिया गया था।

पहिले तो कुसुम ने पिता के दान लेने से इनकार किया, पर जब अनूपसिंह बहुत ही उदास होने लगे तो उसे चुपचाप वह दान लेही लेना पड़ा; पर कुछ दिनों के बाद उस इलाके को कुसुम ने गुलाबदेई के नाम लिख दिया !

बसन्तकुमार तो मासिक श्राद्ध होने पर आरे लौट आया था, पर गुलाबदेई और कुसुमकुमारी को अनूपसिंह ने बड़े आग्रह से अपने यहा रख लिया था। ये दोनों साल भर तक वहीं रही, और कर्णसिंह के वार्षिक श्राद्ध हो जाने के बाद आरे आईं। हां ! इतना अवश्य होता था कि महीने, दूसरे महीने, बसन्तकुमार सुसरार जाकर अपनी दोनों प्यारी स्त्रियों से मिल आया करता था।

इसी बीच में एक दिन अनूपसिंह ने कुसुम पर वह बात भी ज़ाहिर करदी थी कि, 'मैंने उस दिन छिपकर वे सारी बातें सुन ली थीं, जो कि बाबूजी (कर्णसिंह) के साथ तुम्हारी हुई थी।'

निदान, कर्णसिंह का वार्षिक श्राद्ध होने पर दोनों बहिनें आरे लौट आई थीं और एक ही घर में साथ ही रहन लगी थीं
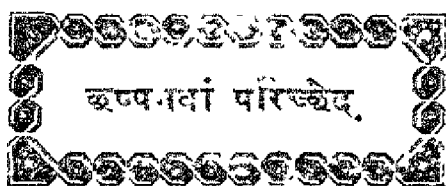
आनन्द.

"आनन्दस्तु निरात्मनो नयनयोरन्तःसुधाभ्यञ्जनं,
प्रस्तारः प्रणयस्य मन्मथतरोः पुष्पं प्ररोहो रतेः।
आलानं हृदयद्विपस्य विषयारण्येषु सञ्चारिणो,
दम्पत्योरिह लभ्यते सुकृतिनः संसारसारः सुतः॥"

(नीतिमञ्जरी)

वे दोनों बहिनें फिर जैसे सुख के साथ रहने लगी थीं; उसे हम किस भांति लिख कर समझावें! बस, यही कहना बहुत होगा कि कुसुम रात दिन गुलाब को संवारा करती और गुलाब रात दिन कुसुम की पलकों पर गुड़िया की तरह खेला करती थी। यहां तक कि गुलाब रात को भी कुसुम का साथ न छोड़ती और दोनों ही बहिन बसन्त के दक्षिण और वाम अंग की शोभा बढ़ाती थीं!

अब वे दोनों जहां रहतीं, साथ ही रहतीं; दोनों का खाना, पीना, नहाना, धोना, सोना, जागना, और खेल-खिलवाड़ साथ ही साथ होता! गुलाब ने भी अब सब रंग का हाल जान लिया था, और हुलासी पर भी यह हाल ज़ाहिर कर दिया गया था, सो अब सब यदि जातीं, तो साथ ही बाग़ को भी जातीं, अर्थात् दोनों का कभी छिन भर भी वियोग न होता!

इस समय अपने बाग़ में बसन्त के साथ कुसुम और गुलाब अठखेलियां कर रहीं, और गा-बजा रही हैं। आज बसन्त के आनन्द की सीमा नहीं है, क्योंकि उसने प्राण से बढ़ कर दोनों चाहनेवालियों को पाया है; जिससे उसका सांसारिक सुख 'स्वर्गीय-सुख' से भी बढ़ गया है! अब गुलाब कुसुम से ज़रा भी डाह नहीं करती— और कुसुम? वह तो गुलाब को प्राण से भी बढ़कर चाहने लगी है,—अर्थात् गुलाब को कुसुम उतनाही चाहती है, जितना कि बड़ी बहिन अपनी प्यारी छोटी बहिन को प्यार कर सकती है। और

...मार! वह भी अब दोनों को बराबर ही प्यार करने लगा है

सत्तावनवां परिच्छेद.
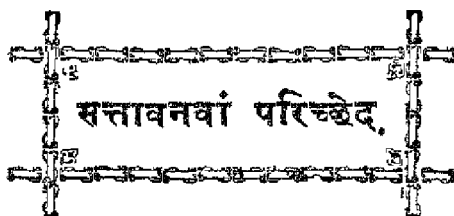
"मधुरेण समापयेत्."

"सदनं मधुरं, वदनं मधुरम्,
वचनं मधुरं, रचनं मधुरम् ।
चरितं मधुरं, भरितं मधुरम्,
सकलं मधुरं, सकलं मधुरम् ॥"
(माधुरीविलासे.)

कुसुम दालान में बैठी हुई है और दो तीन लड़के-लड़कियों ने उसे घेर रक्खा है! अब तक गुलाबदेई को तीन लड़के हुए हैं, उनमें दो बेटे है और एक बेटी । सबसे बड़ा बेटा छः बरस का है, उसका नाम मदन है; उससे छोटी लड़की चार बरस की है, नाम उसका चमेली है; और सबसे छोटे लड़के का नाम प्रद्युम्न है, यह अभी कुल ढाई बरस का है।

कुसुम ने जो प्रतिज्ञा की थी कि,—'मुझे कोई बाल-बच्चे न होंगे;' यह सच हुआ. क्योंकि उसे कोई संतति हुई ही नहीं, और न अब होने की कोई आशा ही थी! क्योंकि कुसुम यह चाहती ही न थी, और जब तक एक समझदार औरत लड़का होना न चाहे, तब तक उसे संतान हो ही नहीं सकती!

किन्तु कदाचित कुसुम अपने पेट के भी बच्चों को इतना प्यार न करती, जितना कि वह गुलाब के बच्चों को जी-जान से चाहती थी। और सच तो यह है कि इन बच्चों को जितना कुसुम प्यार करती, उतना इन्हें न गुलाब ही चाहती और न बसन्त-कुमार ही!!!

दो पहर के समय खाने-पीने से छुट्टी पाकर कुसुम दालान में बैठी हुई थी और तीनो लड़के उससे अपनी-अपनी फ़र्याद कर रहे थे,

मदन ने कहा, "देखो मा! मुझे चाचो ने मारा है"

कुसुम.—(मुस्कुराकर) "हां ! क्यों मारा ? "

मदन,—"मैंने थाली में से एक लड्डू उठा लिया. इसलिये; और लड्डू भी छीन लिया ! "

कुसुम,—"क्यों, री ! गुलाब ! तैंने बच्चे को मारा क्यों ? और लड्डू क्यों छीन लिया ? "

गुलाब ने कोठे के अन्दर से जवाब दिया,—" जीजी ! लड्डू अमनियां धरे थे इसने जूठे हाथ से छू लिया ! "

कुसुम,—"फिर, छू लिया तो छू लिया, तैंने मारा क्यों ? खबरदार मेरे बच्चों को उंगली लगावेगी तो हाथ धर कर तोड़ दूंगी ! "

गुलाब,—(दबी जुबान) " जीजी ! तुमने लड़कों को बड़ा सिर चढ़ाया है, ये ज़रा नहीं डरते ! "

कुसुम.—"चल, रहने दे. चुपचाप रह ! "

मदन,—"मां मुझे लड्डू दो। "

कुसुम,—"अच्छा। "

मदन —"मैं दो लड्डू लूंगा। "

चमेली भी कुसुम का कंधा पकड़ कर झूमती हुई बोली,—"मैं चाल लड्डू लूंगी।"

कुसुम,—"तू चार लड्डू लेगी ? "

चमेली,—"हां ! "

कुसुम,—(उसका गाल चूमकर) "पर, निगोड़ी ! चार लड्डू धरेगी कहां ? "

इस पर चमेली ने कुसुम के मुहं में उंगली डाल दी।

छोटे साहब प्रद्युम्नजी बोले,—"मैं छब लूंगा। "

कुसुम,—(खिलखिलाकर) "तू सब लेगा ? "

प्रद्युम्न,—"हां ! "

कुसुम,—"बस, सभोंमें समझदार और चतुरा तूही है ! "

फिर उसने गुलाब को पुकार कर कहा "लड्डू की रकाबी

दोनो हाथों में दो लड्डू उठा लिए, चमेली चार लेने के लिये थाली ही पर गिरपड़ी, प्रद्युम्न ने चमेली को ढकेलकर थाली पर अपना अधिकार जमाना चाहा! उस पर दोनों की गुत्थम-गुत्था होगई! मदन ने छोटे भाई को, चमेली से कमज़ोर जान कर भाई की मदद की, दो चार धौल-धप्पड़ जड़े भी, पर कुसुम ने बीच-बचाव करके सभोंको अलग किया और सबके आगे गिनती मे बराबर लड्डू रख दिए!

अब दू .रा उत्पात शुरू हुआ। एक लड्डू तोड कर उसमें से ज़रासा जबान पर रक्खा था कि वह अच्छा न लगा, सो वह पैरों से कुचल कर दूसरे लड्डू का चूर किया गया! उसके बाद तीसरा, फिर चौथा! योंही एक एक करके सब लड्डू मीस-मास डाले गए! उनमें से कुछ तो ज़मीन में बिखेरे गए कुछ सारे बदन में पोते गए, कुछ कुसुम के सारे बदन में उबटने की भांति लेपे गए और कुछ फिर से नन्हें नन्हें हाथों से बांधे जाने लगे, पर बंधे नहीं!

चमेली ने एक टुकरा लड्डू लेकर कुसुम के मुह में ठूंसना चाहा, पर उसे ढकेल कर प्रद्युम्न ने तो कुसुम के मुंह मे एक टुकरा डाल ही दिया! इस आनंद मे बैठी हुई कुसुम स्वर्ग का अपार सुख लूट रही थी, कि इतने ही में बसन्तकुमार ने वहीं पहुंचकर और इस बाललीला पर मुग्ध होकर कुसुम से कहा,—"खूब! तुमने तो अच्छी बन्दर-ज्योंनार मचा रक्खी है!"

कुसुम,—(मुस्कुराकर) "आओ तुम भी हमारा साथ दो।"

बसन्त कुसुम के पास आकर बैठ गया, और चट मदन ने उसके मुहं में लड्डू डालना चाहा, पर बसन्त ने उसे डांटकर अपना मुहं फेर लिया! इतने ही में झट कुसुम ने एक टुकरा लड्डू बसन्त के मुहं मे डाल और त्योरी बदल कर कहा,—"खबर्दार! जो मेरे बच्चों को कभी डांटा है, तो अच्छा न होगा!"

यह सुन मदन ताली बजा कर नाचने लगा, और बसन्त ने मन ही मन कुसुम के स्वर्गीय स्वभाव को सराहा!

इतने ही में गुलाब भी वहीं पहुंच गई और यह तमाशा देखकर बेतहाशा खिलखिला उठी, फिर बोली,—" जीजी! आज उबटना तो खूब लगाया है!"

कुसुम—(उस बात का कुछ जवाब न देकर) गुलाब! जरा

सुन तो सही।"

यह सुनकर गुलाब पास आई। बस झट कुसुम ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर अपनी गोद में उसे लिटा लिया और लड़कों की ओर इशारा किया! जब तक लड़के उस पर टूटें, इतने ही में बसन्त-कुमार ने एक टूक लड्डू उसके मुहं में ठूंसकर एक कहकहा लगाया! उसे हंसता देख सब लड़के ताली पीट पीट कर हंसने और नाचने लगे! फिर सभोंने लड्डू के चूरचूर्रों में से बटोर-बटोर कर गुलाब के ऊपर खूब ही बरसाया! बेचारी गुलाब मन ही मन कुसुम की बड़ाई करती, ऊपर से भुनभुनाती, नाक-भौं सिकोड़ती, लड़कों को झिड़कती और खुद कुसुम की झिड़की भी खाती जाती थी! राम राम करके उसने कुसुम से अपना पीछा छुड़ाया!

यह तो एक दिन का हाल हमने लिखा है, पर ऐसी लीला तो रोज़ ही हुआ करती थी! यह तो नेम था कि, दिन को, या रात को, जब कुसुम खाने बैठती, तब लड़कों को पास बैठा लेती थी। उस समय बड़ा आनंद होता था! कोई मुंह मे गस्सा डालकर थाली में उगल देता, कोई सामग्री उठा कर थाली के बाहर धरती मे गिराता, कोई ज़मीन में फेंके हुए पदार्थ को उठा कर फिर थाली में रखता! किसीकी नाक बह कर थाली में टपकती, कोई थाली ही में लार बहाता, कोई खाते खाते थूक सरकने से खांसते खांसते थाली ही में उगल देता. कोई अपने मुहं का निवाला निकाल कर कुसुम के मुहं में देता, और कोई कुसुम के मुहं मे अंगुली डाल उसके निवाले को निकाल अपने मुंह में डाल लेता! कोई साथ सारे बदन में लीपापोती करता और कोई कुसुम को सिर से पैर तक जूठे से नहला देता था!

यह दशा देख बसन्त और गुलाब कुसुम पर हंसते, पर इससे जो सुख कुसुम को मिलता, उसका सपना भी कभी गुलाब या बसन्त ने नहीं देखा था!

यदि कभी ऐसा भी होता कि किसी सबब से कुसुम बच्चों के साथ बैठकर न खा सकती, या मांदी-दुखी हो जाती, तो बच्चों की बड़ी दुर्दशा होती! क्योंकि उन सभोंको अपने साथ न तो बसन्त ही बैठा कर खिलाता था, न गुलाब ही! बस, बच्चे रोते और कुसुम के बिना साथ बैठे एक तरह से भूखे ही रह जाते थे कुसुम

गुलाब को बहुत झिड़कती कि, 'बच्चों को साथ बैठा कर क्यों नहीं खिलाती !' पर गुलाब यह बात न मानती और यह कहती कि,—" जीजी ! मुझे यह सब नहीं अच्छा लगता !"

यों ही सब बच्चे रात-दिन कुसुम के गले के हार बने रहते ! कोई अपनी मां (गुलाब) को न पूछते और अपनी सच्ची चाहने वाली मां कुसुम के पास ही रात दिन रहते थे। सब उसीके साथ खाते, उसीके साथ खेलते, उसीके साथ रात को सोते, उसीको 'मां-मां' कह कर पुकारते और यही जानते कि, 'मेरी सच्ची मां कुसुम ही है !'

हम भी यही कहेंगे कि गुलाब ने केवल बच्चे जनने की पीर ही भर सही, पर बच्चों के यथार्थ सुख को यदि किसीने पाया, तो केवल कुसुम ही ने !

धन्य, कुसुम ! तू सचमुच " स्वर्गीय-कुसुम " है, देवी है और पूजी जाने योग्य है !

प्रभो ! संसार में ऐसे ही सुखी परिवार हों, तो अच्छा हो !

"मङ्गलं मङ्गलानां च,
कलत्राणां च मङ्गलम् ।
पुत्राणां मङ्गलं भूया-
द्दम्पतीनाञ्च मङ्गलम् ॥"

समाप्त ।

Printed and publ shed by C L Goswami
Shr Sudarshan Press Brindaban